महामंत्र णमोकार

वैज्ञानिक अन्वेषण

•

डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन, डी.लिट्

णमो अरिहन्ताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

केलादेवी सुमतिप्रसाद ग्रन्थमाला—पुष्प 5

महामंत्र णमोकार : वैज्ञानिक अन्वेषण

(केलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट द्वारा पुरस्कृत कृति)

डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन डी. लिट्.

सम्पादन
कुसुम जैन
सम्पादिका—णाणसायर (जैन शोध त्रैमासिकी)

यह कृति णमोकार मंत्र पर उपलब्ध कृतियों के साथ रहकर भी अपनी अस्मिता रखती है। ध्वनि-सिद्धान्त, रंग, चिकित्सा, मणिविज्ञान एवं ध्यान और योग के धरातल पर यह मंत्र क्या कहता है ? क्या घोषित करता है और कहां ठहरता है ? इस पुस्तक में देखें तथा मंत्रशक्ति और उसकी महत्ता को परखें !

- विलुप्त हो रहे प्राचीन एवं अधुनातन मौलिक साहित्य को विश्वसनीय रूप में प्रकाशित करने के लिए प्रतिबद्ध
- पाठकों की रुचि का संस्कार एवं स्तर निर्माण करने के लिए मार्गदर्शक ग्रन्थ प्रस्तुत करने के लिए समर्पित
- देशगत किंवा जातिगत आग्रहों व व्यामोह से मुक्त रहकर विश्वजनीन शाश्वत मूल्यों की प्रेरणा देने वाले चिन्तन को प्रसारित करने के लिए संकल्पशील
- स्वस्थ परम्परा और उदात्त आचार-व्यवहार को स्थापित करने के लिए एक शालीन प्रयास की ओर अग्रसर

मेघ प्रकाशन

239, दरीबाकलां, दिल्ली-110006 (भारत)
दूरभाष : 3278761
द्वारा प्रकाशित

All rights reserved in all media. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording, or otherwise, without the prior permission of
MEGH PRAKASHAN, Delhi-110006

मूल्य : 100 रुपये

संस्करण : सन् 2000
© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित
शब्द-संयोजन : विनायक कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110032
मुद्रण : अरोड़ा ऑफसेट, दिल्ली-110095

अनुक्रम

धर्म और उसकी आवश्यकता	13-17
मन्त्र और मन्त्र विज्ञान	18-31
णमोकार मंत्र की ऐतिहासिकता	32-38
मन्त्र और मातृकाएं	39-52
महामन्त्र णमोकार और ध्वनि विज्ञान	53-79
णमोकार मन्त्र और रंग विज्ञान	80-101
योग और ध्यान के सन्दर्भ में णमोकार मन्त्र	102-114
महामन्त्र णमोकार अर्थ, व्याख्या (पदक्रमानुसार)	115-135
णमोकार मन्त्र का माहात्म्य एवं प्रभाव	136-156
महामंत्र णमोकार और चिकित्सा विज्ञान	157-174
महामंत्र णमोकार—प्रश्नोत्तरी	175-232

पुरोवाक्

अध्यात्म का अर्थ है आत्मा के विषय में सोचना, चर्चा करना और उसमें उतरना। मानव इस विराट् जगत में क्रमशः अधिकाधिक उलझता चला जाता है और अपनी भीतरी चैतन्यशक्ति से पराङ्मुख होता चला जाता है। वह सुखों का स्वामी न बनकर दास बन जाता है और एक गहरी रिक्तता का अनुभव करता है। इसी रिक्तता के कारण वह जन्म-जन्मान्तर में भटकता रहता है। वह दुनिया का स्वामी होकर भी स्वयं से अपरिचित रहता है। अपने ही घर में विदेशी हो जाता है। इसी रुग्णता, रिक्तता और नासमझी का उपचार महामन्त्र णमोकार करता है और आत्मा को संसार में कैसे रहकर अपने परम लक्ष्य को कैसे प्राप्त करना है, यह सहज ज्ञान देता है। मन्त्र का अर्थ है—मन की दुर्गति से रक्षा करने वाला, मन की तृप्ति और मन का आस्फालन।

स्पष्ट है कि स्वयं भी आत्मशक्ति से परिचित होने के लिए आत्मशक्ति-प्राप्ति के उत्कृष्ट उदाहरण पंचपरमेष्ठी की शरण इस महामन्त्र से ही सम्भव हो सकती है। विशद रूप में निज की संकल्पशक्ति, इच्छाशक्ति और मानसिक ऊर्जा के विकास के लिए इस मन्त्र की साधना के अनेक रूप अपनाए जाते हैं।

यह महामन्त्र मूलतः अध्यात्मपरक है, परन्तु इसके माध्यम से सांसारिक नियमन एवं सन्तुलन भी प्राप्त किया जा सकता है। अतः सिद्धि और आन्तरिक व्यक्तित्व का साक्षात्कार ये दो रूप इस मन्त्र से प्रकट होते हैं। वस्तुतः सिद्धि तो इससे अनायास होती है, बस निजस्वरूप की प्राप्ति के लिए विशिष्ट साधना अपेक्षित होती है इसी सिद्धि और आन्तरिकता के आधार पर इस मन्त्र के दो रूप बनते हैं। पूर्ण नवकार मन्त्र सिद्धिबोधक है और मूल पंचपदी मन्त्र अध्यात्म बोधक है। सांसारिकता रहित संसार अपनी सहजता में स्वयं छूट जाता है। जीवन की अनिवार्यता में हम संसार में रहते तो हैं ही। अतः हमें उसको नियन्त्रित करना ही होगा।

प्रस्तुत कृति वस्तुतः मेरे सेवावकाश से लगभग 2 वर्ष पूर्व मेरे मानस-क्षितिज पर उभरी थी। मैंने पढ़ा, सोचा और अनुभव किया कि णमोकार मन्त्र अनन्त पारलौकिक, लौकिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का अक्षय भण्डार है, इस पर कुछ वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना अधिक समीचीन एवं श्रेयस्कर होगा।

वैज्ञानिक शब्द से मेरा आशय विज्ञानपरक न होकर अधिक मात्रा में क्रमबद्ध, तर्कसंगत एवं सप्रमाण होना रहा है। हां, जो भी सम्भव हो सका है, मैंने वैज्ञानिक मान्यताओं का भी आश्रय लिया है।

इस पुस्तक को इस दिशा में मैं अपना प्रथम प्रयास मानता हूं। मैं समय रहते इस पुस्तक में संकेतित बिन्दुओं पर विस्तार से काम करूंगा।

यह कृति प्राप्त कृतियों के साथ रहकर भी अपनी अस्मिता रखती है। णमोकार मन्त्र विश्वजनीन अनाद्यनन्त मन्त्र है। यह मन्त्र संसार का संस्कार कर उसे अध्यात्म में परिवर्तित करने की अद्वितीय क्षमता रखता है। ध्वनिसिद्धान्त, रंग-चिकित्सा, मणि-विज्ञान एवं ध्यान और योग के धरातल पर यह मन्त्र क्या कहता है, क्या घोषित करता है और कहां ठहरता है, सुधीवृन्द देखें, समझें।

मन्त्र-शक्ति और उसकी महत्ता पर भी स्वतन्त्र चर्चा है, अक्षरश: विवेचन है, परखें। एक किंचित्र कुछ भी दावा तो नहीं कर सकता, परन्तु ईमानदारी का आश्वासन तो दे ही सकता है।

एक बात और—धार्मिक उच्चता या आध्यात्मिक पराकाष्ठा सामान्य मानव मस्तिष्क की पकड़ से परे होने के कारण आश्चर्य या चमत्कार कही जाती है, यह किसी धर्म की अनिवार्यता है, अन्यथा वह धर्म नहीं होगा। पूर्णतया जागृत मूलाधार शक्ति का सहज शब्द-उद्रेक मन्त्र होता है।

आभार

इस पुस्तक के कुछ लेख 'तीर्थंकर' पत्रिका में सन् 1985-86 में प्रकाशित हुए और फिर 'णाणसायर' पत्रिका ने सभी लेखों को क्रमश: प्रकाशित किया।

श्री मेघराज जी तैजस शक्ति सम्पन्न हैं, बड़ी लगन से आपने पुस्तक छापी है। आपको शुद्ध हृदय से साधुवाद समर्पित करता हूं।

महाकवि कालीदास के शब्दों में मैं केवल इतना ही इंगित करना चाहता हूं—**"आ परितोषात् विदुषां, न साधुमन्ये प्रयोग विज्ञानम्।"**

भवदीय

13, शक्तिनगर, पल्लववरम्, मद्रास — रवीन्द्र कुमार जैन

सम्पादकीय

संसार के सभी धर्मों और जातियों में मन्त्र-विद्या अति प्राचीन विद्या है। आज विज्ञान जिन घटनाओं को असम्भव मानता है, मंत्र प्रभाव से वे प्रत्यक्ष देखी जाती है, जिनका उत्तर न विज्ञान के पास है और न ही मनोविज्ञान के पास। अनुभव का सत्य तर्क की कसौटी से ऊपर होता है। विज्ञान की पकड़ से परे होता है। महामन्त्र णमोकार अद्‌भुत अचिन्त्य प्रभावशाली मंत्र है। यह हमारी आत्म-शक्ति की पुष्टि/वृद्धि, बाहरी अशुभ शक्तियों से रक्षा और चतुर्मुखी अभ्युदय करने वाला है।

जिस प्रकार लोहे और पारस के बीच में यदि कपड़ा लगा दें तो लोहा वर्षों तक पारस के साथ रहने पर भी लोहा ही रहेगा, जब तक हमारा अज्ञान और अश्रद्धा का परदा नहीं उठेगा हम महामन्त्र के अमृत का स्पर्श नहीं कर पायेंगे। मन्त्र या आराधना के क्षेत्र में श्रद्धा और भक्ति का अत्यन्त महत्त्व है। यदि आपके कण-कण में, रोम-रोम में णमोकार मन्त्र रचा/बसा है, आपको उस पर अटल आस्था है तो वह किसी भी क्षण अपना प्रभाव दिखा सकता है?

तीर्थंकर के णमोकार विशेषांक में एक घटना छपी थी—कि जामनगर के श्री गुलाबचन्द ने इस णमोकार मन्त्र पर अटल आस्था से कैंसर जैसे रोग से भी मुक्ति प्राप्त की थी। आज के वैज्ञानिक युग में भी जब चिकित्सा विज्ञान अपनी उन्नति के चरम विकास का दावा कर रहा है। फिर भी डाक्टरों को यह कहते सुना जाता है—रोगी को अब दवा की नहीं दुआ की जरूरत है।

चिकित्सा शास्त्री डॉ. लेस्ली बेदरहेड पाश्चात्य जगत में अध्यात्म चिकित्सा के सिद्धान्तों एवं प्रयोगों को विकसित करने में अग्रणी माने जाते हैं। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "साइकोलॉजी, रिलीजन एण्ड हीलिंग" में उन्होंने सामूहिक प्रार्थना से उद्‌भूत दिव्य ऊर्जा से कितने ही मरणासन्न व्यक्तियों के स्वस्थ होने की घटनाओं का आँखों देखा विवरण प्रकाशित किया है।

णमोकार मन्त्र से लौकिक लाभ मिलने के अनेकों उदाहरण प्रतिदिन सुनने में आते हैं—किसी का शिरःशूल समाप्त हो गया, किसी के बिच्छू का जहर उतर गया, किसी को सर्पदंश से जीवनदान मिल गया, किसी को मूल-मंत्र की बाधा से मुक्ति मिल गई, किसी को धन की प्राप्ति और किसी को सन्तान-लाभ। णमोकार मन्त्र की महिमा से सम्बद्ध अनगिनत कथाएं प्राचीन ग्रन्थों में बिखरी पड़ी है? आज भी सैकड़ों संस्मरण प्रकाशित हो रहे हैं।

णमोकार मन्त्र के पाँच पदों का स्वरूप-ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इससे श्रद्धा के निर्मल और सुदृढ़ होने में सहायता मिलती है। इष्ट छत्तीसी में पंच परमेष्ठियों का स्वरूप अत्यन्त सरल सुन्दर रूप में दिया गया है—

श्री अरिहंत के 46 मूलगुण

चौंतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनन्त चतुष्टय गुण सहित, छीयालीसों पाठ॥
अतिशय रूप सुगंध तन, नांहि पसेव निहार।
प्रियहित वचन अतुल्य बल, रुधिर श्वेत आकार॥
लक्षण, सहस अरु आठ तन, समचतुष्क संठान।
वज्रवृषभनाराच जुत, ये जनमत दश जान॥
योजन शत इक में सुभिक्ष, गगन गमन मुख चार।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार॥
सब विद्या ईश्वरपनों, नांहि बढ़ें नख केश।
अनिमिषदृग छाया रहित, दश केवल के वेश॥
देव रचित हैं चार दश, अर्द्धमागधी भाष।
आपस मांहीं मित्रता निर्मल दिश आकाश॥
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी कांच समान।
चरण कमल तल कमल ह्वै, नभ तें जय जय बान॥
मंद सुगंध बयार पुनि, गंधोदक की वृष्टि।
भूमि विषै कंटक नहिं, हर्षमयी सब सृष्टि॥
धर्म चक्र आगे रहे, पुनि वसु मंगलसार।
अतिशय श्री अरिहंत के, ये चौंतीस प्रकार॥
तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र सिर पर लसें, भामंडल पिछवार॥
दिव्य ध्वनि मुखतें खिरें, पुष्टवृष्टि सुर होय।
ढारें चौसठि चमर जख, बाजें दुंदुभि जोय॥
ज्ञान अनन्त-अनन्त सुख, दरस अनन्त प्रमान।
बल अनन्त अरिहंत सो इष्ट देव पहिचान॥
जनम जरा तिरसा क्षुधा, विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिंता स्वेद॥
रागद्वेष अरु मरण युत, ये अष्टादश दोष।
नांहि होत अरिहन्त के, सो छवि लायक मोष॥

श्री सिद्ध के 8 गुण

समकित दरशन ज्ञान, अगुर लघू अवगाहना।
सूच्छम वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के॥

श्री आचार्य के 36 गुण

द्वादश तप दश धर्म जुत, पालैं पंचाचार।
षट् आवश्यक त्रिगुप्ति गुण, आचारज पद सार ।।
अनशन ऊनोदर करैं, व्रत संख्या रस छोर।
विविक्त शयन आसन धरैं, काय क्लेश सुठौर ।।
प्रायश्चित धर विनय जुत, वैयाव्रत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचार कै, धरैं ध्यान मन लाय ।।
छिमा मारदव आरजव, सत्य वचन चित पाग।
संजम तप त्यागी सरव, आकिंचन तिय त्याग ।।
समता धर वन्दन करैं, नाना थुति बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्याय जुत, कार्योत्सर्ग लगाय ।।
दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पचाचार।
गोपें मन वच काय को, गिन छत्तीस गुण सार ।।

श्री उपाध्याय के 25 गुण

चौदह पूरब को धरैं, ग्यारह अंग सुजान।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ें पढ़ावें ज्ञान ।।
प्रथमहि आचारांग गनि, दूजो सूत्रकृतांग।
ठाण अंग तीजो सुभग, चौथो समवायांग ।।
व्याख्यापण्णति पंचमो, ज्ञातृकथा षट् आन।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तःकृत दश ठान ।।
अनुत्तरण उत्पाददश है, सूत्र विपाक पिचान।
बहुरि प्रश्नव्याकरणजुत, ग्यारह अंग प्रमान ।।
उत्पाद पूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।
अस्ति नास्ति परमाद पुनि, पंचम ज्ञान प्रवाद ।।
छट्ठो कर्म प्रवाद है, सत प्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान ।।
विद्यानुवाद पूरब दशम, पूर्वकल्याण महंत।
प्राणवाद किरिया बहुल, लोकबिन्दु है अन्त ।।

श्री सर्व साधु के 28 मूल गुण

पंचमहाव्रत समिति पंच, पंचेन्द्रिय का रोध।
षट् आवश्यक साधुगुण, सात शेष अवबोध ।।

हिंसा अनृत तसकरी, अब्रह्म परिग्रह पाप।
मनवचनतैं त्यागवो, पंच महाव्रत थाप ।।
ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापनाजुत क्रिया, पाँचों समिति विधान ।।
सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत्रका रोध।
षठ आवशि मंजन तजन, शयन भूमि का शोध ।।
वस्त्र त्याग केशलोंच अरु, लघु भोजन इकबार।
दांतन मुख में ना करें, ठाड़े लेहि आहार ।।

●

साधर्मी भवि पठन को, इष्ट छतीसी ग्रन्थ।
अल्प बुद्धि बुधजन रच्यो, हितमित शिवपुर पंथ ।।

श्रद्धा के साथ आवश्यक है भावना की शुद्धि। णमोकार मन्त्र जपते समय मन में बुरे विचार, अशुभ संकल्प और विकार नहीं आने चाहिए। मन की पवित्रता से हम मन्त्र का प्रभाव शीघ्र अनुभव कर सकेंगे। मन जब पवित्र होता है तो उसे एकाग्र करना भी सहज हो जाता है।

भक्ति में शक्ति जगाने के लिए समय की नियमितता और निरन्तरता आवश्यक है। मन्त्रपाठ नियमित और निरन्तर होने से ही वह चमत्कारी फल पैदा करता है। हां, यह जरूरी है कि जप के साथ शब्द और मन का सम्बन्ध जुड़ना चाहिए। पातंजल योग दर्शन में कहा है—तज्जपस्तदर्थभावनम्—जप वही है, जिसमें अर्थभावना शब्द के अर्थ का स्मरण, अनुस्मरण, चिन्तन और साक्षात्कार हो।

जप-साधना में सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, चित्त की प्रसन्नता। जप करने का स्थान साफ, स्वच्छ होना चाहिए। आसपास का वातावरण शान्त हो, कोलाहलपूर्ण नहीं हो। जिस आसन पर या स्थान पर जप किया जाता है, वह जहां तक सम्भव हो, नियत, निश्चित होना चाहिए। स्थान को बार-बार बदलना नहीं चाहिए। सीधे जमीन पर बैठकर जाप करना उचित नहीं माना जाता। साधना, ध्यान आदि के समय भूमि और शरीर के बीच कोई आसन होना जरूरी है। सर्वधर्म कार्य सिद्ध करने के लिए दर्भासन (दाभ, कुशा) का आसन उत्तम माना जाता है। पूर्व या उत्तर दिशा में मुख करके साधना-ध्यान करना चाहिए। पद्मासन या सिद्धासन जप का सर्वोत्तम आसन है। जप के लिए ऐसा समय निश्चित करना चाहिए जब साधक शान्ति और निश्चितता के साथ बैठ सके। भाग-दौड़ का समय जप के लिए उचित नहीं होना, इससे व्यर्थ ही मानसिक तनाव और उतावली बनी रहती है। जिस कारण ध्यान में मन नहीं लगता। एकान्त में, आलस्यरहित होकर शान्त मन से मन-ही-मन जप करना चाहिए।

णमोकार मन्त्र के विषय में यह प्रसिद्धि है कि इसका आठ करोड़, आठ लाख आठ हजार, आठ सौ आठ बार जप करने से जीव को तीसरे भव में परम सुख-धाम मोक्ष की प्राप्ति होती है। पर कम-से-कम प्रतिदिन एक माला तो अवश्य ही हर किसी को जपनी चाहिए।

जैन साधना पद्धति में दो प्रकार के स्तोत्र विशेष प्रसिद्ध है एक वज्रपंजर स्तोत्र, दूसरा जिनपंजर स्तोत्र। वज्रपंजर स्तोत्र में णमोकार मन्त्र के पदों का अपने अंगों पर न्यास किया जाता है और उनके व्रजमय बनाने की भावना की जाती है। जिनपंजर स्तोत्र में चौबीस तीर्थंकरों का अंग न्यास किया जाता है।

आत्मरक्षा वज्रपञ्जर स्तोत्र

ॐ परमेष्ठिनमस्कारं सारं नवपदात्मकम्।
आत्मरक्षाकरं वज्र-पञ्चराभं स्मराम्यहम् ॥1॥
ॐ नमो अरहंताणं शिरस्कं शिरसि स्थितम्।
ॐ नमो सव्वसिद्धाणं, मुखे मुखपट वरम् ॥2॥
ॐ नमो आयरियाणं अंगरक्षाऽति शायिनी।
ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुध हस्तयोर्हृढम् ॥3॥
ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, मोचके पादयो शुभे।
एसो पंचनमु कारो, शिला वज्रमयीतले ॥4॥
सव्वपाप-प्पणासणो, वप्रो वज्रमयो वहिः।
मंगलाणं च सव्वेसिं, खादिराङ्गारखातिका ॥5॥
स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं, पढमं हवइ मंगलं।
वप्रोपरि वज्रमयं, पिधानं देहरक्षणे ॥6॥
महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रव-नाशिनी।
परमेष्ठिपदोद्भूता, कथितापूर्वसूरिभिः ॥7॥
यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठि-पदैः सदा।
तस्य न स्याद् भयं व्याधिराधिश्चापि कदाचन ॥8॥

जिनपञ्जर स्तोत्र

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अर्हद्भ्यो नमो नमः।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सिद्धेभ्यो नमो नमः ॥1॥
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं आचार्येभ्यो नमो नमः।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं उपाध्यायेभ्यो नमो नमः ॥2॥
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्री गौतमस्वामी प्रमुख सर्व साधुभ्यो नमो नमः
एष पंच नमस्कारः सर्वपापक्षयंकरः।

मंगलाणं च सर्वेषां, प्रथमं भवति मंगलं।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं जये विजये, अर्हं परमात्मने नमः।
कमलप्रभ सूरींद्र भाषितं जिनपंजरम् ॥3॥
एकभुक्तोपवासेन त्रिकालं यः पठेदिदम्।
मनोभिलषितं सर्वं, फलं स लभते ध्रुवं॥
भशायी ब्रह्मचर्य्येण, क्रोधलोभविवर्ज्जितः।
देवताग्रे पवित्रात्मा, षण्मासैर्लभते फलं ॥4॥
अर्हन् स्थापयेन्मूर्ध्नि—सिद्ध चक्षुर्ललाटके।
आचार्यश्रोत्रयोर्मध्ये, उपाध्यायन्तु नासिके ॥5॥
साधुवृंदं मुखस्याग्रे, मनःशुद्धि विधाय च।
सूर्यचंद्रनिरोधेन सुधीः सर्वार्थसिद्धये ॥6॥
दक्षिणे मदनद्वेषी वामपार्श्वे स्थितो जिनः।
अंगसंधिषु सर्वज्ञः, परमेष्ठी शिवंकरः ॥7॥
पूर्वस्यां जिनो रक्षेत् आग्नेय्यां विजितेन्द्रियः।
दक्षिणस्यां पर-ब्रह्म, नैऋत्यां च त्रिकालवित् ॥8॥
पश्चिमायां जगन्नाथो, वायव्ये परमेश्वरः।
उत्तरां तीर्थकृत्सर्वं, ईशने च निरंजनः ॥9॥
पातालं भगवान्नार्हन्नाकाशे पुरुषोत्तमः।
रोहिणी प्रमुखादेव्यो रक्षंतु सकलं कुलम् ॥10॥
ऋषभो मस्तकं रक्षेदजितोऽपि विलोचने।
संभवः कर्णयुगले, नासिकां चाभिनन्दनः ॥11॥
ओष्ठौ श्री सुमति रक्षेत्, दंतान्पद्म प्रभोविभुः।
जिह्वा सुपार्श्वदेवोऽयं, तालु चंद्रप्रभाभिधः ॥12॥
कंठं श्री सुविधिरक्षेत् हृदयं श्री सुशीतलः।
श्रेयांसो वाहुयुगलं, वासुपूज्य कर-द्वयं ॥13॥
अंगुलीं विमलो रक्षेत्, अनंतोऽसौ नखानपि।
श्री धर्मोप्युदरास्थीनि, श्री शांतिर्नाभिमंडलं ॥14॥
श्री कुंथो गुह्यकं रक्षेत्, अरो रोमकटीतले।
मल्लिरूरू पृष्टिवंशं, पिंडिकां मुनिसुव्रतः ॥15॥
पादांगुलिर्नमी रक्षेत्, श्री नेमीश्चरणं द्वयम्।
श्री पार्श्वनाथः सर्वांगं बर्द्धमानश्चिदात्मकम् ॥16॥
पृथ्वी जल तेजस्क, वाय्वाकाशमयं जगत्।
रक्षदशेषमापेभ्यो, वीतरागो निरंजनः ॥17॥

राजद्वारे श्मशाने च, संग्रामे शत्रुसंकटे।
व्याघ्रचौरादिसर्पादि, भूतप्रेत भयाश्रिते ॥18॥
अकाले मरणे प्राप्ते दारिद्रयापत्समाश्रिते।
आपुत्रत्वे महादुखे, मूर्खत्वे रोगपीडिते ॥19॥
डाकिनी शाकिनी ग्रस्ते, महाग्रहगणार्दिते।
नद्युत्तारेऽध्ववैषम्ये, व्यसने चापदि स्मरेत् ॥20॥
प्रातरेव समुत्थाय, यः पठेज्जिनपंजरं।
तस्य किंचिद्भयं नास्ति, लभते सुखसम्पदः ॥21॥
जिनपंजरनामेदं यः, स्मरत्यनुवासरम्।
कमलप्रभ राजेन्द्र, श्रीयं स लभते नरः ॥22॥
प्रातः समुत्थाय पठेत्कृतज्ञो, यः स्तोत्रमेतज्जिनपंजरस्य।
आसादयेत सः कमलप्रभाख्यं, लक्ष्मीं मनोवांछितपूरणाय ॥23॥
श्री रुद्रपल्लीय वरव्य एवगच्छे, देवप्रभाचार्यपदाब्जहंसः।
वादीन्द्रचूडामणिरेष जैनो, जीयादसौ श्री कमलप्रभाख्याः ॥24॥

प्राचीन मन्त्र शास्त्रों में आत्मरक्षा इन्द्र कवच का वर्णन मिलता है। "मंत्र-धिराज चिन्तामणि श्री णमोकार महामंत्र कल्प" आदि ग्रन्थों में इस प्रकार है—

1. ॐ णमो अरिहंताणं ह्रां हृदयं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।
2. ॐ णमो सिद्धाणं ह्रीं शिरो रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।
3. ॐ णमो आयरियाणं ह्रूं शिखां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।
4. ॐ णमो उवज्झायाणं ह्रैं एहि एहि भगवति वज्र कवचं वज्रिणि वज्रिणि रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।
5. ॐ णमो लोए सव्व साहूणं ह्रः क्षिप्र क्षिप्र साधय वज्रहस्ते शूलिनि दुष्टान् रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

णमोकार मन्त्र व्रतों का विधान भी है। जो 18 मास में 35 दिन में होता है। मन्त्र साधना के क्षेत्र में, अनुभवी साधकों से जानकारी प्राप्त कर लेना उपयोगी रहता है। णाणसायर (जैन त्रैमासिक) का णमोकार विशेषांक प्रकाशित हुआ है। जो बहुत चर्चित रहा। साधक उसे भी देखें। यदि आपकी कोई समस्या या जिज्ञासा है, तो आप निसंकोच लिख सकते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपकी हर समस्या का समाधान णमोकार मन्त्र में है, आशा है आप इस महामन्त्र की आराधना और साधना कर अपने जीवन को पावनता के उच्च शिखरों पर अग्रसर करेंगे।

भवदीया

दिल्ली, 16 अक्टूबर 1993

कुसुम जैन

सम्पादिका-णाणसायर (जैन त्रैमासिक)

धर्म और उसकी आवश्यकता

मन, वाणी और शरीर के द्वारा किया गया अहिंसात्मक एवं निर्माणकारी आचरण ही धर्म है। मन में, वचन में और क्रिया में पूर्णतया एकरूपता होने पर ही किसी विषय में स्थिरता और निर्णायकता आ सकती है। संसार के सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दुख से बचना चाहते हैं। उसी सुख प्राप्ति की होड़ा-होड़ी में मानव विश्व का सब कुछ किसी भी कीमत पर प्राप्त कर लेना चाहता है। परन्तु संसार-संग्रह का तो अन्त नहीं है। प्रायः बहुत बाद में हम यह अनुभव करते हैं कि सुख संसार को पाने में नहीं अपितु त्यागने में है। जीवन की सार्थकता निजी पवित्रता के साथ दूसरों के लिए जीने में है। यदि संसार के वैभव में सुख होता तो तीर्थंकर, चकवर्ती, नारायण और प्रतिनारायण आदि उसको तृणवत् त्यागकर वैराग्य का जीवन क्यों अपनाते? अतः स्पष्ट है कि मानव का जीव मात्र के प्रति अहिंसक एवं हितकारी आचरण ही धर्म है। विश्व के सभी धर्मों में, धर्म का सार यही है। इसी सार को अपने-अपने ढंग से सब धर्मों ने परिभाषित किया है। जैन धर्म में भी कहीं आत्मा की विशुद्धता पर बल दिया गया है और कहीं आचरण की विशुद्धता पर, भेद केवल बलाबल का है। हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो यह भेद सभी जैन-शाखाओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाएगा। धर्म बोझ नहीं है; वह जीवन की सम्पूर्ण सहजता है। निर्विकार आत्मा की सहजावस्था ऊर्ध्व-गमन है—आध्यात्मिक मूल्यों का विकास है। मानव जीवन की उत्कृष्ट अवस्था है आत्म-साक्षात्कार अर्थात् हमारा अपनी निजता में लौटना। निजता में लौटना संयम द्वारा ही संभव है। कल्पसूत्र की परिभाषा दृष्टव्य है—"संयम मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले जिससे समर्थ बनते हैं, वह कल्प कहलाता है। उस कल्प की निरुपणा करने वाले शास्त्र को 'कल्प सूत्र' कहते हैं।" हमारे शास्त्रों में धर्म को बहुविध परिभाषित किया है—यथा-'वत्थु सहावो धम्मो' अर्थात् वस्तु का स्वभाव (सहज जीवन) ही धर्म है। तत्वार्थ सूत्र में

"सम्यक्‌दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः" अर्थात् सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌-ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र्य का एकीकृत त्रिक ही मोक्षमार्ग है—धर्म है।

मानन मात्र में भावना के दो स्तर होते हैं। ऐन्द्रिक सुखों की ओर आकृष्ट करने वाले भाव—हीन भाव कहलाते हैं। इनमें तात्कालिक आकर्षण और प्रत्यक्ष सुख झलकता है/मिलता है अतः मानव इनसे प्रभावित होकर इनका अनुचर बन जाता है। दूसरे भाव आत्मिक स्तर के उच्च भाव हैं। इनमें त्वरित सुख नहीं है। धीरे-धीरे इनमें से स्थायी सुख प्राप्त होता है। ये भाव हैं—अहिंसा, दया, क्षमा, वात्सल्य, त्याग, तप, संयम एवं परसेवा। उच्च स्तरीय भावों में प्रवृत्ति कम ही होती है। ज्यों-ज्यों संसार में भोग, विलास की सामग्री का अम्बार जुटता है, त्यों-त्यों मानव की लौकिक प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है। आज गत युगों की तुलना में हमारी सभ्यता (भौतिक जिजीविषा) बहुत अधिक विकसित हो चुकी है। अनाज उत्पादन, शस्त्र निर्माण, औद्योगिक विकास, चिकित्सा विज्ञान, यातायात के साधन, दूरदर्शन आदि के आविष्कारों ने आज के मानव को इतना सुविधाजीवी बना दिया है, इतना सांसारिक और पंगु बना दिया है कि बस वह एक यन्त्र का अंश मात्र बनकर रह गया है। वह जीवन के, नये मूल्य बना नहीं पाया है और पुराने मूल्यों को हीन और अनुपयोगी समझकर छोड़ चुका है। वह त्रिशंकु की तरह अनिश्चितता में लटक रहा है। दो विश्व युद्धों ने उसके जीवन में अनास्था, निराशा और अनिश्चितता भर दी है। वह अज्ञात और अनिर्दिष्ट दिशाओं में भागा चला जा रहा है। आशय यह है कि आज का मानव जीवन मूल्यों एवं आध्यात्मिक मूल्यों की असंगति और अनिश्चितता से बड़ी तेजी से गुजर रहा है। इस प्रसंग में महाकवि भर्तृहरि का एक प्रसिद्ध पद्य उदाहरणीय है—

"अज्ञः सुखमाराध्यः, सुखतर माराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञान लव दुर्विदग्धं, ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति॥"

- नीतिशतक-3

अर्थात् मूर्ख व्यक्ति को सरलता से समझाया जा सकता है, विशेषज्ञ को संकेत मात्र से समझाया जा सकता है, किन्तु जो अर्धज्ञानी है उसे ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते हैं। स्पष्ट है कि आधुनिक मानव तृतीय विश्वयुद्ध के ज्वालामुखी पर बैठा हुआ है। कभी—किसी क्षण में वह

भस्म हो सकता है। अतः आज उसे धार्मिक जिजीविषा की-आध्यात्मिक जिजीविषा की गतयुगों की अपेक्षा अत्यधिक आवश्यकता है। इस संदर्भ में एक अत्यन्त सटीक उदाहरण दृष्टव्य है—

औरंगजेब ने अपने एक पत्र में अपने अध्यापक को लिखा है, "तुमने मेरे पिता शाहजहां से कहा था कि तुम मुझे दर्शन पढ़ाओगे। यह ठीक है, मुझे भली-भाँति याद है कि तुमने अनेक वर्षों तक मुझे वस्तुओं के सम्बन्ध में ऐसे अनेक अव्यक्त प्रश्न समझाए, जिनसे मन को कोई सन्तोष नहीं होता और जिनका मानव समाज के लिए कोई उपयोग नहीं है। ऐसी थोथी धारणाएं और खाली कल्पनाएं, जिनकी केवल यह विशेषता थी कि उन्हें समझ पाना बहुत कठिन था और भूल जाना बहुत सरल···क्या तुमने कभी मुझे यह सिखाने की चेष्टा की कि शहर पर घेरा कैसे डाला जाता है या सेना को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है? इन वस्तुओं के लिए मैं अन्य लोगों का आभारी हूं, तुम्हारा बिलकुल नहीं।" आज जो संसार इतनी संकटापन्न स्थिति में फंसा है, वह इसलिए कि वह 'शहर पर घेरा डालने' या 'सेना को व्यवस्थित करने' के विषय में सब कुछ जानता है और जीवन के मूल्यों के विषय में, दर्शन और धर्म के केन्द्रीभूत प्रश्नों के सम्बन्ध में, जिनको कि वह थोथी धारणा और कोरी कल्पनाएं कहकर एक ओर हटा देता है, बहुत कम जानता है।*

विवेक पुष्ट आस्था धर्म की रीढ़ है। हम अनेक धार्मिक तत्वों को प्रायः ठीक समझे बगैर ही उन्हें तुच्छ और अनुपादेय कहकर उपेक्षित कर देते हैं। विद्या प्राप्ति के पूर्व और विद्या प्राप्ति के समय तथा बाद में भी विनय गुण की महती आवश्यकता है। महामन्त्र णमोकार इसी नमन गुण का महामन्त्र है। उपाध्याय अमर मुनि जी ने अपनी पुस्तक 'महामन्त्र णमोकार' में लिखा है—"मनुष्य के हृदय की कोमलता, समरसता, गुण-ग्राहकता एवं भावुकता का पता तभी लग सकता है जबकि वह अपने से श्रेष्ठ एवं पवित्र महान् आत्माओं को भक्ति भाव से गद्गद् होकर नमस्कार करता है, गुणों के समक्ष अपनी अहंता को त्यागकर गुणी के चरणों में अपने आपको सर्वतोभावेन अर्पित कर देता

* 'धर्म और समाज' पृ० 5—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (हिन्दी अनुवाद)।

है।" जैन साधना पद्धति जीवत्व से प्रारम्भ होकर आत्मोपलब्धि (मोक्ष प्राप्ति) में पर्यवसित होती है। जैन साधना का मूलाधार इन्द्रिय संयम एवं मनोनियन्त्रण है। महामन्त्र इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

उक्त विवेचन द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि मानव जाति को धर्म की आवश्यकता सदा से रही है और आज की परिस्थिति में सर्वाधिक है। आज मानव जाति के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों में विघटन बढ़ता जा रहा है और सभ्यता के नित नये आडम्बरों से वह स्वयं को विवश भाव से जकड़ती जा रही है। अत: सांसारिक और आध्यात्मिक मूल्यों की इस स्थिति को केवल धर्म ही सम्हाल सकता है, वह ही सन्तुलन दे सकता है।

धर्म व्यक्ति को समाज या राष्ट्र की इकाई मानता है और उसके विकास में सामाजिक विकास का सहज आदर्श देखता है, वह प्रत्येक व्यक्ति की महानता की संभावना में विश्वास करता है। पूंजीवादी व्यवस्था अन्त:करण की स्वाधीनता और स्वाभाविक अधिकारों की बात करके शोषण करती रहती है। दूसरी ओर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में पदार्थ को प्राथमिकता देकर चेतन तत्व को उसका उपजात माना गया है और अन्त में सामाजिक व्यवस्था और विकास को ही महत्व दिया गया है, व्यक्तिगत स्वाधीनता को नहीं। यान्त्रिक भौतिकवाद में तो जीव-तत्व को भी पदार्थ के रूप में ही स्वीकार किया गया है। अत: मार्क्सवाद में समाज को बदलकर ही व्यक्ति को बदलने की प्रक्रिया है। व्यावहारिक विज्ञान और तकनीकी विज्ञान जिनके आविष्कार से मानव बुद्धि की प्रकृति पर विजय सिद्ध हुई है। इनका सामान्य मानव पर ठीक उल्टा प्रभाव पड़ा है कि इन यन्त्रों का दासानुदास बन गया है। मानव ऊर्जा का यन्त्रीकरण हो गया है। स्पष्ट है कि आज का मानव एक खोखला एवं उद्देश्यहीन जीवन जी रहा है। आत्मा की महानता का आदर्श आज लुप्त सा हो गया है। "आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्" का आदर्श आज केवल ऐतिहासिक महत्व की चीज बनकर रह गया है। यद्यपि आज संस्कृति और धर्म के नाम पर कुछ खद्योती कार्य होते हैं, पर इनसे कल्मष की जमी मोटी परतें कैसे घट-कट सकती हैं? अत: आज मानव जाति की भीतरी ताकतों को बचाने के लिए धर्म को

सर्वथा नये चैतन्य के साथ उभरना है। यदि और विलम्ब हुआ तो फिर मानव उस पाशविक धरातल पर पहुंच चुका होगा, जहां से उसे आत्मा का स्वर सुनाई ही नहीं देगा। भौतिक विकास और उपलब्धियों का पूर्ण स्वामी होकर भी मानव ने इनकी पराधीनता स्वीकार कर ली है। मानव चरित्र का ऐसा पतन इस युग की सबसे बड़ी क्षयंकरी दुर्घटना है।

धर्मरूप—मन्त्रों का प्रमुख महत्व उनकी पारलौकिकता एवं अध्यात्म-दृष्टि में है। लौकिक-मंगल की पूर्ण प्राप्ति उससे संभव है परन्तु वह गौण है। वास्तव में अति संक्षेप में—सूत्र रूप में मन्त्रों द्वारा ही किसी धर्म को समझा जाता है। जब-जब कोई धर्म लुप्त होता है तो केवल मन्त्रों की ही जिह्वास्थता शेष रहती है और हम कालान्तर में अपने अतीत से पुनः जुड़ जाते हैं। जैन महामन्त्र अनाद्यनन्त है। उसमें जैन धर्म का समस्त आचार-विचार पूर्णतया अन्तःस्यूत है □

मन्त्र और मन्त्रविज्ञान

शब्द अथवा शब्दों में संस्थापित दिव्यत्व एवं आध्यात्मिक ऊर्जा ही मन्त्र है। किसी ऋषि अथवा स्वयं ईश्वर-तीर्थंकर द्वारा अपनी तपःपूत वाणी में इन मन्त्रों की रचना की जाती है। इन मन्त्रों का प्रभाव युग-युगान्तर तक बराबर बना रहता है। मन्त्र में निहित शब्द, अर्थ और स्वयं मन्त्र साधन है। मन्त्र के द्वारा शुद्धतम आत्मोपलब्धि (मुक्ति) एवं लौकिक सिद्धियां भी प्राप्त होती हैं। मन्त्र का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक विशुद्धता ही है। मन्त्र में निहित ईश्वरीय गुणों और शक्तियों का पवित्र मन और शुद्ध वचन से मनन एवं जप करने से मानव का सभी प्रकार का त्राण होता है और उसमें अपार बल का संचय होता है। "शब्दों में सम्पुटित दिव्यता ही मन्त्र है। मन्त्र के निम्नलिखित अंग होते हैं—मन्त्र का एक अंग ऋषि होता है। जिसे इस मन्त्र के द्वारा सर्वप्रथम आत्मानुभूति हुई और जिसने जगत् को यह मन्त्र प्रदान किया। मन्त्र का द्वितीय अंग छन्द होता है जिससे उच्चारण विधि का अनुशासन होता है। मन्त्र का तृतीय अंग देवता है जो मन्त्र का अधिष्ठाता है। मन्त्र का चतुर्थ अंग बीज होता है जो मन्त्र को शक्ति प्रदान करता है। मन्त्र का पंचम अंग उसकी समग्र शक्ति होती है। यह शक्ति ही मन्त्र के शब्दों की क्षमता है। ये सभी मिलकर मानव को उपास्य देवता की प्राप्ति करवा देते हैं।"[1] मन्त्र केवल आस्था पर आधारित नहीं हैं। इनमें कोरी कपोल-कल्पना या चमत्कार उत्पन्न करने की प्रवृत्ति नहीं है। मन्त्र वास्तव में प्रवृत्ति की ओर नहीं अपितु निवृत्ति की ओर ही मानव की चित्त-वृतियों को निर्दिष्ट करते हैं। मन्त्रविज्ञान को समझकर ही मन्त्र क्षेत्र में आना चाहिए। "शब्द और चेतना के घर्षण से नई विद्युत तरंगें उत्पन्न होती हैं। मन्त्रविज्ञान इसी घार्षणिक विद्युत ऊर्जा पर आधारित है।"[2] मन्त्र से वास्तव में

1. 'कल्याण'—उपासना अंक—1974
2. 'योग से शान्ति की खोज' पृ० 30—साध्वी राजीमती

हम शक्ति बाहर से प्राप्त नहीं करते अपितु हमारी सुषुप्त अपराजेय चैतन्य शक्ति जागृत एवं सक्रिय होती है।

मन्त्र का व्युत्पत्यर्थ एवं व्याख्या :

मन्त्र शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है। इस शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से की जा सकती है और कई अर्थ भी प्राप्त किए जा सकते हैं—

मन्त्र शब्द 'मन' धातु (दिवादि गण) में ष्ट्रन (त्र) प्रत्यय तथा घञ् प्रत्यय लगाकर बनता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ होता है—जिसके द्वारा (आत्मा का आदेश) अर्थात् स्वानुभव या साक्षात्कार किया जाए वह मन्त्र है।[1]

दूसरी व्युत्पत्ति में मन् धातु का 'विचारपरक' अर्थ लगाया जा सकता है और तब अर्थ होगा—मन्त्र वह है जिसके द्वारा आत्मा की विशुद्धता पर विचार किया जाता है।

तीसरी व्युत्पत्ति में मन् धातु को सत्कारार्थ में लेकर अर्थ किया जा सकता है—मन्त्र वह है जिसके द्वारा महान् आत्माओं का सत्कार किया जाता है।

इसी प्रकार मन् को शब्द मानकर (क्रिया न मानकर) त्राणार्थ में त्र प्रत्यय जोड़कर पुल्लिङ्ग मन्त्र: शब्द बनाने से यह अर्थ प्रकट होता है कि मन्त्र वह शब्द शक्ति है जिससे मानव मन को लौकिक एवं पारलौकिक त्राण (रक्षा) मिलता है।[2]

मन्त्र वास्तव में उच्चरित किए जाने वाला शब्द मात्र नहीं है: उच्चार्यमान मन्त्र, मन्त्र नहीं है। मन्त्र में विद्यमान अनन्त एवं अपराजेय अध्यात्म शक्ति परमेष्ठी शक्ति एवं दैवी शक्ति ही मन्त्र है। अत: मन्त्र शब्द में मन्+त्र ये दो शब्द क्रमश: मनन-चिन्तन और त्राण अर्थात् रक्षा और शुभ का अर्थ देते हैं।[3] मनन द्वारा मन्त्र पाठक को

---

1. मन् धातु के अनेक अर्थ हैं—यथा—(1) आदेश ग्रहण, (2) विचार करना, (3) सम्मान करना।
2. मन् शब्द को संज्ञा मानने पर उसका अर्थ होगा—मानव-मन को जिससे त्र अर्थात् त्राण (रक्षा एवं शान्ति) मिले।
3. "वर्णात्मको न मन्त्रो, दशभुजदेहो न पञ्चवदनोऽपि।
संकल्पपूर्व कोटौ, नादोल्लासो भवेन्मन्त्र: ॥" महार्थ मंजरी—पृ० 102

पंच परमेष्ठी के महान् गुणों की अनुभूति होती है। इससे शक्तिशाली होकर वह कष्टप्रद सांसारिकता से त्राण पाने में समर्थ होता है।

मन्त्र शब्द का एक विशिष्ट अर्थ भी ध्यान देने योग्य है। मन अर्थात् चित्त की त्र अर्थात् तृप्त अवस्था अर्थात् पूर्ण अवस्था अर्थात् आत्म साक्षात्कार की परमेष्ठी तुल्य अवस्था ही मन्त्र है। वास्तव में चित् शक्ति चैतन्य की संकुचित अवस्था में चित्त बनती है और वही विकसित होकर चिति (विशुद्ध आत्मा) बनती है।* "चित्त जब बाह्य वेद्य समूह को उपसंहृत करके अन्तर्मुख होकर चिद्रूपता के साथ अभेद विमर्श सम्पादित करता है तो यही उसकी गुप्त मन्त्रणा है जिसके कारण उसे मन्त्र की अभिधा मिलती है। अतः मन्त्र देवता के विमर्श में तत्पर तथा उस देवता के साथ जिसने सामरस्य प्राप्त कर लिया है ऐसे आराधक का चित्त ही मन्त्र है, केवल विचित्र वर्ण संघटना ही नहीं।" वैदिक परम्परा के अन्तर्गत समस्त मन्त्रों को त्रितत्त्वों का संगठित रूप स्वीकार किया गया है। इन तीनों तत्त्वों के बिना किसी वस्तु और मन्त्र की रचना हो ही नहीं सकती। ये तीन तत्त्व हैं—शिव, शक्ति और अणु (आत्मा)।

> **"शिवात्मकाः शक्तिरूपाज्ञया मन्त्रास्तथाणवाः।**
> **तत्वत्रय विभागेन, वर्तन्ते ह्यमितौजसः॥"**
>
> **नेत्र तन्त्र—19**

मन्त्रों के भेद—

वैदिक परम्परा और श्रमण (जैन) परम्परा में मन्त्रों का सर्वप्रथम आधार मूलमन्त्र अथवा महामन्त्र है। महामन्त्र के गर्भ से ही अन्य मन्त्र जन्म लेते हैं। ओम् (ॐ) पर दोनों परम्पराओं की गहरी आस्था है। इसका अर्थ अपने-अपने ढंग से दोनों ने किया है। शारदातिलक, राघव भट्टीया एवं सौभाग्य भास्कर ग्रन्थों में वैदिक (शैव-वैष्णव) परम्परा के मन्त्रों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। डॉ० शिवशंकर अवस्थी ने उक्त ग्रन्थों की सहायता से मन्त्र-भेदों को विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। मन्त्रों को प्रमुख पांच वर्गों में विभाजित किया गया है—

* 'मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य' पृ० 190-191—ले० डॉ० शिवशंकर अवस्थी।

1. पुरुष मन्त्र, स्त्री मन्त्र, नपुंसक मन्त्र।
2. सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, अरि मन्त्र।
3. पिण्ड, कर्तरी, बीज, माला मन्त्र।
4. सात्विक, राजस, तामस।
5. साबर, डामर।

पुरुष मन्त्र उन्हें कहते हैं जिनका देवता पुरुष होता है।[1] पुरुष देवता के मन्त्र सौर कहलाते हैं और स्त्री देवता से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्र सौम्य। जिन मन्त्रों का देवता स्त्री होती है उन्हें विद्या कहते हैं। सामान्यतया तो सभी को मन्त्र ही कहा जाता है।[2] जिन मन्त्रों के अन्त में 'हुं' और फट्' रहता है उन्हें पुं० मन्त्र, और दो रू: इस वर्ण से जिस मन्त्र की समाप्ति हो उसे स्त्री मन्त्र कहते हैं।[3] नम: से समाप्त होने वाले मन्त्र नपुंसक मन्त्र कहलाते हैं। 'प्रयोगसार' का मत इससे कुछ भिन्न है। उनके अनुसार वषट् और फट् से समाप्त होने वाले मन्त्रों को पुरुष, वौषट् और स्वाहा से स्त्री तथा 'हुं' नम: से समाप्त होने वाले मन्त्रों को नपुंसक कहा गया है। एक अक्षरी मन्त्र पिण्ड मन्त्र, दो अक्षरों वाले कर्तरी मन्त्र और तीन से लेकर नौ वर्णों तक के मन्त्र बीज मन्त्र कहलाते हैं। इससे बीस वर्ण पर्यन्त के मन्त्र, मन्त्र के ही नाम से जाने जाते हैं। इससे अधिक वर्ण संख्या वाले मन्त्र माला मन्त्र कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त मन्त्रों के छिन्न, उद्ध, शक्तिहीन आदि शताधिक अन्य भेद भी होते हैं। ये सभी यहां प्रासंगिक नहीं हैं। उक्त विवरण केवल तुलनार्थ एवं ज्ञानार्थ उद्धृत किया गया है।

मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र—इन तीनों की सानुपातिक संयुक्त क्रिया ही किसी साधक को पूर्णता तक पहुंचाती है। केवल मन्त्र की साधना

---

1. सौरा: पुं० देवता मन्त्रास्ते च मन्त्रा: प्रकीर्तिता:।
सौम्या: स्त्री देवतास्तद्वद्विद्यास्ते इति विश्रुत:॥
(शारदा तिलक—राघवी टीका पृ० 79)

2. पुंस्त्री नपुंसकात्मानो मन्त्रा: सर्वे समीरिता:।
मन्त्रा: पुंदेवता ज्ञेया विद्या: स्त्रीदेवता: स्मृता:॥58॥
(शारदा तिलक तन्त्र 2 पटल)

3. पुं० मन्त्रा: हुम्फडान्ता: स्यु द्विठान्ताश्च स्त्रियो मता:।
नपुंसका नमोऽन्ता: स्युरित्युक्ता: मन्त्रास्त्रिधा:॥58॥ वही

से आंशिक लाभ ही होगा। मन्त्र कुछ विशिष्ट परम प्रभावी शब्दों से निर्मित वाक्य होता है। कभी-कभी यह केवल शब्द मात्र ही होता है। यन्त्र वह पात्र (धातु निर्मित, पत्र या कागज) है जिसमें सिद्ध मन्त्र टंकित, अंकित या वेष्टित रहता है। यह एक साधन है। तन्त्र का अर्थ है विस्तार करने वाला अर्थात् मन्त्र की शक्ति को रासायनिक प्रक्रिया जैसा विस्तार एवं चमत्कार देने वाला। मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र ये तीनों भीतर से बाहर आने की प्रक्रिया हैं—विन्दु के सिन्धु में बदलने का क्रम है। मन में स्थित मन्त्र मुख में आकर यन्त्रस्थ हो जाता है और वाणी में प्रस्फुटित होकर (तन्त्रित होकर) मुद्रित-प्रकाशित हो जाता है।

सम्पूर्ण मन्त्रों की संख्या सात करोड़ मानी गयी है। वैदिक परम्परा के अनुसार सभी मन्त्र शिव और शक्ति द्वारा कीलित हैं। बौद्ध परम्परा में भी मन्त्रों का और तन्त्रों का सुदीर्घ चक्र है। जैन शास्त्रों में मन्त्रों की अति प्राचीन एवं विशाल परम्परा है। मन्त्रकल्प, प्रतिष्ठाकल्प, चक्रेश्वरीकल्प, ज्वालामालिनीकल्प, पद्मावतीकल्प, सूरिमन्त्रकल्प, वाग्वादिनीकल्प, श्रीविद्याकल्प, वर्द्धमानविद्याकल्प, रोगापहारिणीकल्प आदि अनेक कल्प ग्रन्थ हैं। ये सभी मन्त्र एवं तन्त्र प्रधान ग्रन्थ हैं।

मन्त्र शास्त्रों में तीन मार्गों का उल्लेख है। ये हैं—दक्षिण मार्ग, वाम मार्ग और मिश्र मार्ग। **दक्षिण मार्ग**—सात्विक देवता की सात्विक उद्देश्य से और सात्विक उपकरणों से की गई उपासना दक्षिण उपासना या सात्विक उपासना कहलाती है। **वाम मार्ग**—पंच मंकार-मदिरा, मांस, मैथुन, मत्स्य, मुद्रा—इनके आधार पर भैरवी चक्रों की योजना होती थी। **मिश्र मार्ग**—इसके अन्तर्गत परोक्ष रूप से पंचमंकारों को तथा दक्षिण मार्ग की उपासना पद्धति को स्वीकार किया गया है। वास्तव में यह मार्ग व्यर्थ ही रहा। मार्ग तो दो ही रहे। मन्त्र शास्त्र में प्रमुख तीन सम्प्रदाय हैं—केरल, काश्मीर और गौण। वैदिक परम्परा केरल-सम्प्रदाय के आधार पर चली। बौद्धों में गौड़ सम्प्रदाय का प्रभाव रहा। जैनों का अपना स्वतन्त्र मन्त्र शास्त्र है परन्तु काश्मीर परम्परा का जैनों पर व्यापक प्रभाव है।

मन्त्र में स्वरूप-विवेचन से यह बात सुस्पष्ट है कि मन्त्र, अर्थ और शब्द के संश्लिष्ट माध्यम से हमें अध्यात्म में ले जाता है अर्थात्

हम अपने मूल स्वरूप में उतरने लगते हैं। यह निर्विकार अवस्था जीवन की चरम उपलब्धि है। मन्त्र की भाषा, नादशक्ति और ध्वनि तरंग का सामान्य जीवन की भाषा से और व्याकरण की भाषा से बहुत अन्तर है। सामान्य भाषा और व्याकरण की भाषा तो सार्थक और सीमित होती है, वह मन्त्र की अनन्त अर्थ महिमा और ध्वनि विस्तार को धारण नहीं कर सकती। यही कारण है कि मन्त्र में इसकी ध्वन्यात्मकता का बहुत महत्त्व है। ध्वनि का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से बहुत अधिक अर्थ है। श्री जैनेन्द्रजी ने कहा है कि सार्थक भाषा में मन्त्र शक्ति कठिनाई से उत्पन्न हो सकती है; क्योंकि वह अर्थ तक सीमित रहती है। जिसमें ध्वनि और नाद है वह असीमित है। उसमें अनन्त शक्ति भी डाली जा सकती है।

मन्त्रविज्ञान :

मन्त्रविज्ञान से तात्पर्य है मन्त्र को समझने की विशिष्ट ज्ञानात्मक प्रक्रिया। यह प्रक्रिया विश्वास और परम्परा को त्यागकर ही आगे बढ़ती है। इस विज्ञान का कार्य है मन्त्र के पूर्ण स्वरूप और प्रभाव को प्रयोग के धरातल पर घटित करके उसकी वास्तविकता स्थापित करना। जब तक अध्ययनकर्ता तटस्थ एवं रचनात्मक दृष्टि से सम्पन्न नहीं है तब तक वह इस प्रक्रिया में सफल नहीं हो सकता। इसी प्रकार मन्त्रविज्ञान का दूसरा महत्त्वपूर्ण विज्ञान रहस्य है उसमें निहित (मन्त्र में निहित) अर्थ, भाषा, भाव एवं चैतन्य के ऊर्ध्वीकरण की निधि को विभिन्न स्तरों पर समझना। आशय यह है कि मन्त्र के बहुमुखी चैतन्य की गुणात्मक व्यवस्था को व्यवस्थित होकर समझना मन्त्र-विज्ञान है।

अनुभूति-जन्य ज्ञान निश्चित रूप से चिन्तन और सिद्धान्त-प्रसूत ज्ञान से अधिक विश्वसनीय, प्रत्यक्ष एवं व्यापक है। मन्त्रविज्ञान में भी हम ज्यों-ज्यों मन्त्र की गहराई में उतरेंगे हमारा बौद्धिक एवं सैद्धान्तिक चिन्तन छूटता जाएगा और एक विशाल अनुभूति हम में उभरती जाएगी। मन्त्रविज्ञान वास्तव में विश्लेषण से संश्लेषण की प्रक्रिया है। अहंकार का पूर्णत्व में विलय मन्त्रविज्ञान द्वारा स्पष्ट होता है। अतः मन्त्रविज्ञान को समझने के चार स्तर हैं—1. भाषा का

स्तर, 2. अर्थ का स्तर, 3. ध्वनि का स्तर—नाद का स्तर, व्यंजना शक्ति का स्तर, 4. सम्मिश्रण—फलितार्थ।

भाषा का स्तर :

यदि उदाहरण के लिए हम णमोकार मन्त्र को ही लें तो जब पाठक या भक्त पहली बार मन्त्र को पढ़ता है या सुनता है तो वह सामान्यतया मन्त्र का प्रचलित भाषा रूप ही जान पाता है और उसके साथ-साथ सामान्य अर्थ-बोध को जानने के लिए कुछ सचेष्ट होता है। यहां भाषा का अर्थ है रचना का शरीर और उससे प्रकट रूपात्मक या ध्वन्यात्मक सम्मोहन। यह किसी रचना को जानने की पहली और सामान्य स्थिति है।

अर्थ का स्तर :

दूसरी, तीसरी, चौथी बार जब हम मन्त्र को पढ़ते या जपते हैं और समझने का प्रयत्न करते हैं तो हम शब्दों के स्थूल अर्थ के परिवेश में—परिचित अर्थ के परिवेश में चले जाते हैं। णमोकार मन्त्र में अर्थ के स्तर पर अरिहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो आदि—अर्थ से हम परिचित होते हैं। इससे हमारा मन्त्र से कुछ गहरा नाता जुड़ता है, परन्तु अभी पूर्णता दूर है। यह स्तर तो एक साधारण एवं अविकसित मस्तिष्क का है। अविकसित मानसिकता 50 वर्ष के व्यक्ति में भी हो सकती है। दूसरी ओर 10 वर्ष का बालक भी प्रत्युत्पन्नमति के कारण मानसिक स्तर पर विकसित हो सकता है। यह तो हम नित्यप्रति देखते ही हैं कि कई व्यक्ति जीवन भर अर्थ के स्थूल स्तर में कोल्हू के बैल की तरह घूमते रहते हैं। उनकी मानसिकता का एक स्तर बन जाता है।

ध्वनि का स्तर :

काव्य शास्त्र शब्द शक्तियों का विवेचन है। ये शब्द शक्तियां तीन हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। सौन्दर्य प्रधान एवं जीवन की गम्भीर अनुभूति के विषय को प्राय: व्यंजना द्वारा ही प्रकट किया जाता है। इससे उसकी सुन्दरता बढ़ती है और मूल भाव अति प्रभावी

होकर प्रकट होता है। हर व्यक्ति व्यंजना को ग्रहण नहीं कर पाता है। व्यंजना को ही प्रकारान्तर से ध्वनि कहा गया है।

श्री रामचरित मानस के बालकाण्ड में सीताजी की एक सखी जनक वाटिका में आए हुए राम और लक्ष्मण को देखकर आनन्दमग्न होकर सीता और अन्य सखियों से कह रही है—

"देखन बाग कुंअर दोउ आए, बय किसोर सब भांति सुहाए।
श्याम गौरि किमि कहौं बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी ।।"*

अर्थात् दो कुमार बाग देखने आए हैं। उनकी किशोरावस्था है, वे प्रत्येक दृष्टि से सुन्दर हैं। वे श्याम और गौरवर्ण के हैं। उनका वर्णन मैं कैसे करूं? वाणी के नैन नहीं और नैन बिना वाणी के हैं। इस चौपाई का सामान्य अर्थ तो स्पष्ट है ही, परन्तु चतुर्थ चरण में जो भाव व्यंजना द्वारा व्यक्त हुआ है, उसे केवल मर्मज्ञ ही समझ सकते हैं। राम और लक्ष्मण के लोकोत्तर रूप को आंखों ने देखा है—अत: आंखें ही पूरी तरह बता सकती हैं, परन्तु आंखों के पास जिह्वा नहीं है, कैसे कहें? उधर जिह्वा ने देखा नहीं है—देख ही नहीं सकती—कैसे बोले? सब कुछ कह दिया और लगता है कुछ नहीं कहा। राम-लक्ष्मण का सौन्दर्य अनिर्वचनीय है, मनसा-वाचा परे है। अनुभूति का विषय है। इस ध्वन्यात्मकता को समझे बिना उक्त चरण का आनन्द नहीं आ सकता। यही बात मन्त्र की भाव गरिमा में है। आम आदमी अर्थ के साधारण स्तर की ही जीवन भर परिक्रमा करता रहता है और उसका मन्त्र की आत्मा से तादात्म्य नहीं हो पाता है।

ध्वनि का जहां नादमूलक अर्थ है वहां मन्त्र के उच्चारण स्तरों का ध्यान रखकर ही उसका पूरा लाभ लिया जा सकता है। मन्त्र विज्ञान में भक्त की चेतना और मन्त्रोच्चार से उत्पन्न ध्वनि तरंग जब निरन्तर घर्षित होते हैं तो समस्त शरीर, मन और प्राणों में एक अद्भुत कम्पन आस्फालित होता है। धीरे-धीरे इस कम्पन से एक वातावरण—मन्त्रमयता का वातावरण निर्मित होता है और भक्त उसमें पूर्णतया लीन हो जाता है। यह लीन होने की सम्पूर्णता ही मन्त्र का साध्य है।

* रामचरित मानस—बालकाण्ड—पृ० 232

हमारे आचार्यों, कवियों और महान् पुरुषों ने वाणी की महिमा का बहुविध गान किया है—

कबीर—ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होय।।

तुलसी—तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजत चहुं ओर।
वशीकरण इक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर।।

शब्द का दुखात्मक प्रभाव इतना अधिक होता है कि आदमी जीते जी मर जाता है, और शब्द के सुखात्मक प्रभाव में आदमी मरता हुआ भी जी उठता है। शब्द ब्रह्म की महिमा अपार है। कहा है कि तलवार का घाव भर सकता है लेकिन वाग्बाण का कभी नहीं। स्पष्ट है कि वाणी में अमृत और विष दोनों हैं। समस्त विश्व पर ध्वनि का प्रभाव देखा जा सकता है। वाणी के घातक प्रभाव पर एक प्रसंग प्रस्तुत है—

एक बार लंदन की एक प्रयोगशाला में वाणी और मनोविज्ञान के दबाव पर एक प्रयोग किया गया। एक व्यक्ति के शरीर के पूरे खून को क्रय किया गया। मूल्य यह था कि उसके परिवार का पूरा भरण-पोषण सरकार करेगी। उस व्यक्ति को लिटा दिया गया और पीछे एक नली द्वारा खून को बूंद-बूंद करके निकालने का काम शुरू हुआ। जब काफी समय हो गया तो डाक्टरों ने कहा कि इतने खून के निकलने के बाद तो इस व्यक्ति को मर ही जाना चाहिए था, आश्चर्य है, शायद दो-चार मिनट में मर जाएगा। ये शब्द सुनते ही वह आदमी तुरन्त मर गया। वास्तव में उसके शरीर से रक्त की एक बूंद भी नहीं निकाली गयी थी। बस उसके पीछे से पानी की बूंदें गिरायीं जा रही थी। यह मन पर वाणी का और मानसिकता का दबाव था।

मन्त्र की सम्पूर्ण ध्वन्यात्मकता शरीर के कण-कण में व्याप्त होकर आत्मा के भीतरी लोक से सम्पर्क करती है और उसे उसकी विशुद्धता का लोकोत्तर दर्शन कराती है। यह बात सुस्पष्ट है कि मन्त्र विज्ञान में आस्था, परम्परा और इतिहास की आत्मा में प्रवेश करके उसे ज्ञान और विवेक के—प्रत्यक्ष प्रयोग के धरातल पर लाकर स्थिरीकरण कराया जाता है। वैज्ञानिक धरातल पर परीक्षित करके ही कुछ बुद्धि जीवियों में आत्मा का उदय होता है। जैन धर्म में विश्रुत पंच नमस्कार

महामन्त्र जहां विशुद्ध विश्वास का विषय रहा है, वहां आज वह विज्ञान की कसौटी पर भी पूरी तरह चौकस उतरा है। उसकी भाषा, उसकी अर्थवत्ता, उसकी भावसत्ता और उसकी ध्वन्यात्मकता को विधिवत् समझकर उसमें दीक्षित होना अधिकाधिक श्रेयस्कर है। पूर्ण तादात्म्य की अवस्था में मौन की महत्ता सुविदित ही है। एक महान् व्यक्ति के मौन में सैकड़ों व्याख्यानों की शक्ति होती है। अत: मन्त्र की सच्ची आराधना उसके मनन में है। चित्त की पूर्ण विशुद्धता के साथ किया गया मनन और भाव-निमज्जन मन्त्र विज्ञान की कुंजी है।

मन्त्र धर्म का बीज है। बीज में वृक्ष के दर्शन करने की क्षमता नर जन्म की समग्र सार्थकता है—

धम्मो मंगल मुक्तिकण्ठ, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमस्सन्ति, जस्स धम्मे सया मणो॥

धर्म उत्कृष्ट मंगल है, यह अहिंसा, संयम और तप रूप है। जिस मानव का मन इस धर्म में सदा लीन है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

मन्त्र को शब्द और ध्वनि के स्तर पर वैज्ञानिक प्रक्रिया से भी समझा जा सकता है अत: मन्त्र विज्ञान को शब्द विज्ञान ही समझना चाहिए। मानव शरीर का निर्माण विभिन्न तत्त्वों से हुआ है। उसमें दो चीजें काम कर रही हैं। सूर्य-शक्ति से हमारे अन्दर विद्युत शक्ति काम कर रही है इसी प्रकार दूसरा सम्बन्ध है सोमरस प्रदाता चन्द्रमा से। इससे हमारा मैग्नेटिक करेण्ट काम कर रहा है। इस मैग्नेटिक करेण्ट की सहायता से मानव के शरीर और मांस-पेशियों तक पहुंचा जा सकता है। किन्तु मन की अनन्त गहराई और द्रव्य का शक्ति-बीज इस करेण्ट की पकड़ से परे है। इसके लिए हमारे प्राचीन ऋषियों, मुनियों और महात्माओं ने दिव्य शक्ति को आविष्कृत किया। यह दिव्य शक्ति दिव्य कर्ण है। इससे हम सामान्य मन को सुन सकते हैं और सुना भी सकते हैं। जिस प्रकार समुद्र में एक केबिल डालकर एक-दूसरे के संवाद को दूर तक पहुंचाया जा सका और बाद में इसी से तार का और फिर बेतार के तार का मार्ग भी आविष्कृत हुआ। आज तो आप चन्द्रलोक तक अपनी बात प्रेषित कर सकते हैं, बात प्राप्त कर सकते हैं। अमेरिका आदि में एक बहुत बड़ा सेटलाइट स्थिर किया

गया है। समस्त संवाद वहां इकट्ठा हो जाता है और उसे चन्द्रमा तक भेज दिया जाता है, फिर वहां से अलग-अलग स्थानों को संवाद भेजे जाते हैं। इसका आशय यह है कि हम जो शब्द बोलते हैं उनको पकड़ा जा सकता है, पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है। उनको गन्तव्य तक पहुंचाया जा सकता है। परन्तु विश्व भर की सभी ध्वनियां आकाश-तरंगों में मिलकर कहीं भटक गयी हैं—वे अब भी हैं और उन्हें पकड़ा जा सकता है। यह भी सम्भव है कि आकाश में बिखरी हुई अरिहन्तों और तीर्थंकरों की वाणी भी एक दिन विज्ञान की सहायता से हम सुन सकें। इसी धरातल पर अध्यात्म शक्ति की अति विकसित अवस्था में हम मन्त्र के (बेतार के तार) के माध्यम से अरिहन्तों और तीर्थंकरों का साक्षात्कार भी कर सकते हैं। एक दिव्य कर्ण भी विकसित कर सकते हैं जिससे दिव्य ध्वनि को सुना जा सके। वाणी या भाषा के जो चार स्तर हैं (बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा) वे भी मन्त्र विज्ञान की ध्वनिमूलकता का समर्थन करते हैं। भाषा अपनी भावात्मकता से जन्म लेकर स्थूल शब्दों में ढलती है और फिर धीरे-धीरे अन्ततः उसी भावात्मकता में लीन हो जाती है।

मन्त्र विज्ञान में शब्द की महत्ता को हम समझ रहे हैं। आखिर ये शब्द, यह भाषा न जाने कितने स्रोतों से बने हैं, यह ठीक है। किन्तु जो मूलभूत बीज शब्द एवं वर्ण हैं ये तो वस्तुक्रिया से ही जन्मे हैं। अर्थात् वास्तव में जब तक हमारा आशय (विचार या भाव) शब्द या ध्वनि में ढलकर आकार ग्रहण नहीं करता तब तक हम उसे अव्यक्त भाषा कह सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि भाषा या ध्वनि का हमारे मूल मानस से सीधा-भीतरी और गहरा सम्बन्ध है।

किसी भी द्रव्य की ऊर्जा को पकड़ने के लिए और दूसरों तक पहुंचाने के लिए, हमें उस वस्तु में विद्यमान विद्युत-क्रम को समझना होगा। देखना होगा कि उससे किस प्रकार की क्रिया-तरंगें बह रही हैं। इसके लिए प्राचीन ऋषियों ने एक विधि निकाली। उन्होंने अग्नि को जलते हुए देखा। अग्नि की तीव्र लौ से 'र' ध्वनि का उन्होंने साक्षात्कार एवं श्रवण किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अग्नि से 'र' ध्वनि उत्पन्न होती है और 'र' से अग्नि उत्पन्न की जा सकती है। बस 'र' अग्नि बीज के रूप में मान्य हो गया। इसी प्रकार पृथ्वी की स्थूलता

से 'लं' ध्वनि का निर्माण होता है। कोई तरल पदार्थ जब स्थूल होने की प्रक्रिया से गुजरता है तो 'लं' ध्वनि होती है। जल प्रवाह से 'वं' ध्वनि प्रकट होती है। 'वं' ही जल का आधार है। 'वं' से जल भी पैदा किया जा सकता है और जल से 'वं' ध्वनि पैदा होती ही है। तत्त्वों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के समस्त क्रियाकलापों में ध्वनि सर्वोपरि है। रडार आदि का आविष्कार इसी प्रक्रिया के बल पर हुआ। मन्त्रवादियों और मन्त्रसृष्टाओं ने इसी तथ्य को ध्यान में रखकर मन्त्र रचना की थी। तत्त्वों की शक्ति उनकी क्रिया में ही प्रकट होती है। वर्णमाला में शक्ति स्वरों में है। व्यंजन मूल हैं किन्तु वे स्वरों की सहायता पाकर ही सक्रिय होते हैं। स्वत: वे कुछ नहीं करते या कर पाते। यही कारण है कि व्यंजनों को योनि कहा गया है और स्वरों को विस्तारक कहा गया है। स्वरों से संयुक्त होते ही व्यंजन उद्दीप्त हो उठते हैं। व्यंजनों को तत्त्वों के धरातल पर पांच वर्गों में विभाजित किया गया है। समान धर्मिता के कारण तत्त्वों और वर्णों की यह व्यवस्था की गयी—

पृथ्वी तत्त्व	क, च, ट, त, प	प्रथम अक्षर
जल तत्त्व	ख, छ, ठ, थ, फ,	द्वितीय अक्षर
अग्नि तत्त्व	ग, ज, ड, द, ब	तृतीय अक्षर
वायु	ध, झ, ढ, घ, भ	चतुर्थ अक्षर
आकाश	ङ, ञ, ण, न, म	पंचम अक्षर

इस प्रकार वर्णों को शक्ति समुच्चय के साथ पकड़ा गया। अब आवश्यकता पड़ी कि शब्दों को जीवन के साथ कैसे जोड़ा जाए? सृष्टि के विकास और ह्रास को कैसे समझा जाए? जीवन की सारी स्थितियों को कैसे समझें? व्याकरण, दर्शन और भाषा विज्ञान ने अपने ढंग से यह काम किया है। सभी शब्द तत्त्वों के मिलन हैं।

मन्त्र विज्ञान की वैज्ञानिकता को समझने के लिए हम महामन्त्र णमोकार के प्रथम परमेष्ठी वाची अर्हं (अरिहंताणं) को ले लें। अर्हं मूल शब्द था। अर्हं में अ प्रपञ्च जगत् का प्रारम्भ करने वाला है और 'ह' उसकी लीनता का द्योतक है। अर्हं में अन्त में है बिन्दु (ं) यह लय का प्रतीक है। बिन्दु से ही सृजन है और बिन्दु में ही लय है। यह प्रश्न उठता है कि सृजन और मरण की यह यान्त्रिक क्रिया है इसमें जीवन-

शक्ति का अभाव है—अर्थात् जीवन शक्ति को चैतन्य देने वाली अग्नि शक्ति का अभाव है। अत: ऋषियों ने अहं को अर्हं का रूप दिया—उसमें अग्नि शक्तिवाची 'र' को जोड़ा। इससे जीवात्मा को उठकर परमात्मा तक पहुंचने की शक्ति प्राप्त हुई। अत: अर्हं का विज्ञान बड़ा सुखद आश्चर्य प्रदान करने वाला सिद्ध हुआ। 'अ' प्रपञ्च जीव का बोधक—बन्धन बद्ध जीवन का बोधक और 'ह' शक्तिमय पूर्ण जीव का बोधक है। लेकिन 'र'—क्रियमान क्रिया से युक्त-उद्दीप्त और परम उच्च स्थान में पहुंचे परमात्व तत्त्व का बोधक है।

विभिन्न कार्यों के लिए शब्दों को मिलाकर मन्त्र बनाए जाते हैं। मन्त्रों के प्रकार, प्रयोजन, प्रभाव अनेक हैं। उनको विधिवत् समझने और जीवन में उतारने का संकल्प होने पर ही यह मन्त्र विज्ञान स्पष्ट होगा—कार्यकर होगा। जिस प्रकार रसायन शास्त्र में विभिन्न पदार्थों के आनुपातिक मिश्रण से अद्भुत क्रियाएं और रूप प्रकट होते हैं, उसी प्रकार शब्दों की शक्ति समझकर उनका सही मिश्रण करने से उनमें ध्वंसात्मक, आकर्षक, उच्चाटक, वशीकरणात्मक एवं रचनात्मक शक्ति पैदा की जाती है—मन्त्रों में यही बात है। मन्त्र सूक्ष्म रूप है—बीज रूप है जिससे बाह्य वस्तु रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है, तो दूसरी ओर लोकोत्तर सुख के द्वार भी खुलते हैं।

मन्त्र आत्म-ज्ञान और परमात्म सिद्धि का मूल कारण है। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब ज्ञान हृदयस्थ हो जाए और आचरण में ढल जाए। महात्मा गांधी ने उचित ही कहा है—"अगर यह सही है और अनुभव वाक्य है तो समझा जाए कि जो ज्ञान कंठ से नीचे जाता है और हृदयस्थ होता है, वह मनुष्य को बदल देता है। शर्त यह कि वह ज्ञान आत्म-ज्ञान है।"*

× × ×

"जब कोई सच्चा ही वचन कहता है, और व्यवहार भी ऐसा ही करता है। हम उसका असर रोज देखते हैं। फिर भी उस मुताबिक न बोलते हैं न करते हैं।"

ज्ञान आचरण के बिना व्यर्थ है। उसी प्रकार चरित्र की जड़

* बापू के आशीर्वाद—पृ० 206-217

विश्वास और ज्ञान पर आधारित होनी चाहिए। अहंकार वास्तविक ज्ञान और व्यवहार ज्ञान का शत्रु है। दुर्बल और विकलांग से भी शिक्षा प्राप्त होती है—

एक अन्धा व्यक्ति रात्रि में दीपक लिए हुए रास्ते पर चला जा रहा था। सामने से आते हुए नवयुवकों का दल उस अन्धे पर व्यंग्य से हंसकर बोला, 'सूरदासजी कमाल कर रहे हो, दीपक लेकर क्यों चल रहे हो ?' अन्धे ने कहा, 'यह दीपक आप आंख वालों से बचने के लिए है, क्योंकि आप तो मदान्ध होकर चलते हैं, आंख पाकर भी अन्धे हैं, मुझसे टकरा सकते हैं। आशय यह है कि अहंकार ज्ञान का शत्रु है। फिर मन्त्र ज्ञान तो परम निर्मल मन में ही आ सकता है □

णमोकार मन्त्र की ऐतिहासिकता

णमोकार मन्त्र का मूल रचयिता कौन है ? इस सृष्टि का रचयिता कौन है ? णमोकार मन्त्र कब रचा गया ? आदि-आदि प्रश्न उठते ही रहे हैं। आगे भी उठते ही रहेंगे। मानव स्वभाव गुण के साथ प्राचीनता को भी देखता ही है। सहस्रों वर्षों के अनुसंधान से यही ज्ञात हो सका है कि यह मन्त्र अनादि-अनन्त है। प्रत्येक तीर्थंकर के साथ स्वतः प्रादुर्भूत होता है। तीर्थंकर इसके माध्यम से धर्म का प्रचार-प्रसार करते हैं। वास्तव में यह मन्त्र मूलतः ओंकारात्मक है। इसका 'ओं' का विकसित रूप ही पंचपरमेष्ठी नमस्कार मन्त्र या णमोकार मन्त्र है। यह मन्त्र मातृका रूप है। यह ओम् में से निकलता है और ओम् में ही लय हो जाता है। ओंकार के प्रति यह नमन भाव जैन मात्र के कण्ठ पर रहता है और प्रत्येक शास्त्र सभा या मंगल-कार्य के प्रारम्भ में पढ़ा जाता है—

ओंकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः॥

अर्थात् बिन्दु संयुक्त ओंकार का योगी नित्य ध्यान करते हैं। काम और मोक्ष दायक ओंकार को पुनः-पुनः नमस्कार हो। इस श्लोक में 'नित्य' शब्द से इस ओंकार की नित्यता प्रकट होती है। ओ अर्धोष्ठ्य ध्वनि है। इसके उच्चारण में ओष्ठ आधे खुलकर सम्पुट (अर्धसम्पुट) हो जाते हैं और 'म्' का उच्चारण पूर्ण होते-होते ओष्ठ बन्द हो जाते हैं। 'म्' का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। स्पष्ट है कि 'ओम्' के उच्चारण में स्वर और स्पर्श व्यंजनों का समावेश प्रतीकात्मक रूप से है और वाणी विराम अर्थात् पूर्णता की स्थिति भी है।

अब प्रश्न यह है कि सिद्धान्त और श्रद्धा के साथ इतिहास अपना समाधान चाहता है। इतिहास में तिथि और घटना का ही महत्व होता है। वास्तव में तिथियों और घटनाओं का सिलसिलेवार संग्रह ही इतिहास होता है। कानून की भाँति इतिहास भी साक्ष्यजीवी होता है।

परन्तु इतिहास का इतिहास मानव परम्परा और विश्वास में होता है जिसका मूल प्राप्त कर पाना काफी कठिन ही नहीं असंभव भी है।

फिर भी प्राप्त इतिहास क्या है? अर्थात् ऋषि, आचार्य अथवा लेखक ने कब इस मन्त्र का उल्लेख किया। रचना कब हुई, यह बताना तो संभव नहीं है, किसने रचना की, यह भी बता पाना संभव नहीं है। परन्तु प्राप्त वाङ्मय के आधार पर णमोकार मन्त्र की ऐतिहासिकता पर विचार एक सीमा तक तो किया ही जा सकता है।

"अनादि द्वादशांग जिनवाणी का अंग होने से यह अनादि मूल-मन्त्र कहा जाता है। 'षट्खण्डागम' के प्रथम खण्ड जीवट्ठाड़ के प्रारम्भ में आचार्य पुष्पदंत द्वारा यह मन्त्र मंगलाचरण रूप में अंकित किया गया है। जिस पर धवला टीका के रचयिता आचार्य वीरसेन ने इसे परम्परा-प्राप्त निबद्ध मंगल सिद्ध किया है। क्योंकि मोक्षमार्ग, उसके उपदेष्टा और साधक भी अनादि से चले आ रहे हैं। आचार्य शिव कोटि कृत 'भगवती आराधना' की टीका के अनुसार यह मन्त्र द्वादशांग रचयिता गणधर कृत है। तीर्थंकर और गणधर अनादिकाल से होते चले आ रहे हैं।" इस मान्यता के आधार पर महावीर के गणधर गौतम के समय और कर्तृत्व के साथ महामन्त्र को जोड़ा गया है। गौतम गणधर का समय ई० पू० का ही है।

सज्र स्वामी ने चौदह आगमों का सार लेकर णमोकार मन्त्र की खोज की, यह भी एक मान्यता है। महाराजा खारवेल तथा कलिंग की गुफाओं में महामन्त्र के दो पद टंकित हैं—णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धं। इससे भी रचयिता और समय का पता नहीं लगता है। खारवेल का समय ई० पू० द्वितीय शती का है। शिला-लेख का समय 152 ई० पू० है।

"आचार्य भद्रबाहु के अनुसार नंदी और अनुयोग द्वार को जानकर तथा पंचमंगल को नमस्कार कर सूत्र का प्रारम्भ किया जाता है। संभव है इसीलिए अनेक आगम-सूत्रों के प्रारम्भ में पंच नमस्कार महा-मन्त्र लिखने की पद्धति प्रचलित हुई। जिनभद्रगणी श्रमण ने उसी आधार पर नमस्कार महामन्त्र को सर्वश्रुतान्तर्गत बतलाया। उनके अनुसार पंच नमस्कार करने पर ही आचार्य सामायिक और क्रमशः शेष श्रुतियों को पढ़ाते थे। प्रारम्भ में नमस्कार मन्त्र का पाठ देने और

उसके बाद आवश्यक का पाठ देने की पद्धति थी।···नमस्कार मन्त्र को जैसे सामायिक का अंग बताया गया, वैसे किसी अन्य आगम का अंग नहीं बताया गया है। इस दृष्टि से नमस्कार महामन्त्र का मूलस्रोत सामयिक अध्ययन ही सिद्ध होता है। आवश्यक या सामयिक अध्ययन के कर्त्ता यदि गौतम गणधर को माना जाए तो पंच नमस्कार महामन्त्र के कर्त्ता भी गौतम गणधर ही ठहरते हैं।"[1]

"विगत ढाई हजार वर्षों से इसे लेकर विपुल साहित्य प्रकाश में आया है, जिसकी जानकारी जन-साधारण को तो क्या, विद्वानों को भी पूरी तरह नहीं है।"[2] इस मत से भी यही ज्ञात होता है कि महामन्त्र पर लगभग ढाई हजार वर्षों से विपुल साहित्य प्रकाशित हुआ है, परन्तु इसकी जन्म-तिथि और जनक के विषय में यह मत भी मौन है। इसमें प्रकान्तर से मन्त्र को अनादि माना गया है।

पं० नेमीचन्दजी ज्योतिषाचार्य ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक—'मंगल-मन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन' में महामन्त्र णकोकार के अनादित्व-सादित्व पर विचार किया है। उनके अनुसार—"णमोकार मन्त्र अनादि है। प्रत्येक कल्प काल में होने वाले तीर्थंकरों के द्वारा इसके अर्थ का और उनके गणधरों के द्वारा इसके शब्दों का निरूपण किया जाता है।···पंच परमेष्ठी अनादि होने के कारण यह मन्त्र अनादि माना जाता है। इस महामन्त्र में नमस्कार किये गये पात्र आदि नहीं, प्रवाह रूप से अनादि हैं और इनको स्मरण करने वाले जीव भी अनादि हैं; अतः यह मन्त्र भी गुरु-परम्परा से अनादिकाल से प्रतिपादित होता चला आ रहा है। आत्मा के समान यह अनादि और अविनश्वर है। प्रत्येक कल्पकाल में होने वाले तीर्थंकरों द्वारा इसका प्रवचन होता आया है।" उक्त समस्त विवेचन से यह तथ्य उभर कर आता है कि यह पंच नमस्कार महामन्त्र अनादि है। प्रत्येक तीर्थंकर अपने युग में इस मन्त्र के अर्थ का विवेचन करते हैं और फिर उनके गणधर या गणधरों द्वारा उसके शब्दों का विवेचन होता है। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही जैन-शाखाएं इस मन्त्र को अनादि ही मानती हैं। इस मन्त्र के सम्बन्ध में यह श्लोक प्रसिद्ध है—

अनादि मूल मन्त्रोयं, सर्व विघ्न विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः॥

मन्त्र पर अनेकान्त दृष्टि—

महामंत्र णमोकार को अर्थ और भाव तत्व के आधार पर ही अनादि कहा जा सकता है। इसी को हम द्रव्यार्थिक नय भी कहते हैं। शब्द और ध्वनि के स्तर पर तो इसे सादि मानना ही पड़ेगा। भाषा, ध्वनि, वाक्य तो प्रतिक्षण परिवर्तित होते रहने वाले तत्व हैं। इस मन्त्र में साधु शब्द का प्रयोग है। यह शब्द मुनि-ऋषि शब्दों की तुलना में नया ही है। अत: द्रव्यार्थिक नय ही प्रमुख होता है—आत्मा होता है, वही निर्णायक तत्व है। पर्याय तो परिवर्तनशील होती ही है। ध्वनि के स्तर पर इस मन्त्र पर स्वतन्त्र अध्याय में विचार किया गया है। उससे अधिक स्पष्टता आएगी।

विज्ञान के नित्य नये आविष्कार शीघ्र ही इस तथ्य को प्रमाणित करेंगे कि सभी तीर्थंकरों द्वारा उच्चरित उपदिष्ट वाणी जो चिरकाल से आकाश में व्याप्त थी, रिकार्ड कर ली गयी है। आज हम अनुभव तो करते हैं पर बता नहीं पाते, प्रमाणित नहीं कर पाते। कारण यह है कि तथ्य नष्ट हो गये हैं, लुप्त हो गये हैं और उनका सार सत्य मात्र हमारे पास है। मन्त्र से हमारे समस्त अन्तश्चैतन्य (आभा-मण्डल) में एक संरचनात्मक विद्युत परिवर्तन होता है। इससे हम सुदूर अतीत और सुदूर भविष्य के भी दर्शन कर समते हैं। लाखों-करोड़ों व्यक्तियों का चिन्तन और विश्वास पागलपन नहीं हो सकता। अवश्य ही महामन्त्र की प्राचीनता और अनादित्व गणितीय पकड़ की चीज नहीं है।

आचार्य रजनीश के इस कथन से प्रकारान्तर से हम णमोकार मंत्र की अनादिता की एक सहज झलक पा सकते हैं—"महावीर एक बहुत बड़ी संस्कृति के अन्तिम व्यक्ति हैं—जिस संस्कृति का विस्तार कम-से-कम दस लाख वर्ष है। महावीर जैन विचार और परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर है—चौबीसवें। शिखर की, लहर की आखिरी ऊँचाई और महावीर के बाद वह लहर और संस्कृति सब बिखर गयी। आज उन सूत्रों को समझना इसलिए कठिन है, क्योंकि पूरा का पूरा वह वातावरण, जिसमें वे सूत्र सार्थक थे, आज कहीं भी नहीं हैं। ऐसा समझें कि कल तीसरा महायुद्ध हो जाए। सारी सभ्यता बिखर जाए, सीधी लोगों के पास याददाश्त रह जाएगी कि लोग हवाई जहाजों में उड़ते थे। हवाई-जहाज तो बिखर जाएंगें, याददाश्त रह जाएगी। यह याददाश्त

हजारों साल तक चलेगी और बच्चे हँसेगे। कहेंगे कि कहां हैं हवाई-जहाज? जिनकी तुम बात करते हो? ऐसा मालूम होता है, कहानियां हैं, पुराण-कथाएं हैं, मिथ हैं।"[3]

णमोकार महामन्त्र की ऐतिहासिकता का सीधा अर्थ है जैन धर्म की ऐतिहासिकता; क्योंकि महामन्त्र वास्तव में जैन धर्म के सभी तत्वों का पुष्कल प्रतीक एवं सूत्र है। धर्म का इतिहास सामान्य इतिहास की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। इसका प्रमाण मानव जाति की आत्मा में उसके चिर-कालिक विश्वास में होता है। यह इतिहास भावात्मक ही होता है, रूपात्मक बहुत कम।

"धर्म का स्वतन्त्र इतिहास नहीं होता। सम्यक् विचार व आचार रूप धर्म हृदय की वस्तु है, जिसका कब, कहां और कैसे उदय, विकास अथवा ह्रास हुआ तथा कैसे विनाश होगा, यह अतिशय ज्ञानी के अतिरिक्त किसी को ज्ञात नहीं। अतः इन्द्रियातीत, अतिसूक्ष्म धर्म का अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए धार्मिक महापुरुषों का जीवन और उनका उपदेश ही धर्म का परिचायक हैं। धार्मिक मानवों का इतिहास ही धर्म का इतिहास है।"[4]

इस महामंत्र की ऐतिहासिकता पर इस दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है कि यह मन्त्र द्रव्यार्थिक नय से अनादि है तो क्या पूरे पंच परमेष्ठियों को अर्थ के स्तर पर मंत्र में मूल रूप में पहली बार में किया गया होगा, अथवा प्रारम्भ में केवल अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी को ही लिया गया और फिर धीरे-धीरे परवर्ती कालों में बाद के तीन परमेष्ठी मिला लिये गये! अति प्राचीन या प्राचीनतम उदाहरण या शिलालेख तो यही सिद्ध करते हैं कि अरिहन्त और सिद्धों को ही प्रारम्भ में ग्रहण किया गया था। इसके भी कारण हो सकते हैं। वास्तव में ये दो ही ईश्वर या देव रूप हैं, शेष तीन तो अभी साधक ही हैं—लक्ष्य के राही हैं। ये तीन गुरु हैं, अभी देव नहीं। अतः उभर कर यह दृष्टि सामने आती है कि द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से भी इस क्रम को स्वीकार किया जा सकता है क्या? वाणी रूप में ढलने पर भी तब यही क्रम आएगा ही। तर्क बड़ा बहरा और दूरगामी होता है। वह रुकना जानता ही नहीं, पर विश्वास उसे थपथपाता है और स्थिरता देता है।

अन्ततः इतना ही समझना पर्याप्त होगा कि मन्त्र तो द्रव्यार्थिक नय या अर्थतत्व के आधार पर पूर्ण रूप से अनादि है, हां निर्माण काल में संभव है पद रचना में कुछ अन्तराल रहा हो। परन्तु हमारे समक्ष तो मन्त्र अपनी पूर्ण अवस्था में ही अनादि रूप में मान्य है। हमें उसकी निर्माण अवस्थाओं के तारतम्य के चक्कर में पड़ कर अपनी सम्यक् दृष्टि को दूषित नहीं करना है। प्राचीन ऋषियों-मुनियों ने और अति-प्राचीन तीर्थंकरों ने भी हो सकता है इस मन्त्र की अर्थ और वाणी की पूर्णता समय-समय पर की हो। अत: उन्हीं के द्वारा समग्र रूप में दिया गया मन्त्र ही स्वीकार करना चाहिए। फिर यह भी संभव है कि आरंभ में जो अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी मात्र का उल्लेख मिलता है, हो सकता उसमें व्यक्ति-विशेष ने उन दो परमेष्ठियों में ही श्रद्धा प्रकट करनी चाही हो, शेष तीन के रहने पर भी उन्हें शामिल न किया हो। अत: बात वहीं पूर्णता और अनन्तता पर पहुंचती है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ मोक्षमार्ग प्रकाशक के रचयिता पं० टोडरमल जी पंच नमस्कार मन्त्र की ऐतिहासिकता का संकेत करते हुए लिखते हैं कि—"अकारादि अक्षर हैं वे अनादि विधन हैं, किसी के किये हुए नहीं हैं। इनका आकार लिखना तो अपनी इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार का है, परन्तु जो अक्षर बोलने में आते हैं वे तो सर्वत्र सदा ऐसे ही प्रवर्तते हैं। इसीलिए कहा है कि—"सिद्धोवर्णसामाम्नाय:"—इसका अर्थ यह है कि जो अक्षरों का सम्प्रदाय है सो स्वयं सिद्ध है, तथा उन अक्षरों से उत्पन्न सत्यार्थ के प्रकाशक पद उनके समूह का नाम श्रुत है सो भी अनादि निधन है।"[5]

सन्दर्भ :

1. 'ऐसो पंच णमोक्कारो'—युवाचार्य महाप्रज्ञ—प्रस्तुति
2. तीर्थंकर—पृ. 77, णमोकार मंत्र विशेषांक—ले० अगरचन्द नाहटा—दिस० 1980
3. महावीर वाणी—पृ० 33—ले० भगवान रजनीश।
4. "जैन धर्म का मौलिक इतिहास" (प्रथम भाग)—पृ० 5-6 लेखक—आचार्य श्री हस्तिमल जी महाराज।
5. मोक्षमार्ग प्रकाशक—पृ० 10—लेखक : पं० टोडरमल।

मन्त्र और मातृकाएं

मन्त्र शब्द के विविध अर्थों से यह बात सहज हो जाती है कि मन्त्र किसी भी धर्म का बीजकोश है। आदेश ग्रहण करना अर्थात् दृढ़ विश्वास के साथ धार्मिक विधि निषेधों को स्वीकार करना—यह मन्त्र शब्द की प्रथम व्युत्पत्ति वाला अर्थ है। इसी भाव को हम जैन शब्दावली में सम्यग्दर्शन कहते हैं। छदमस्थ अवस्था को नष्ट कर मानव जब सम्यग्दृष्टि बन जाता है तभी धर्म से उसका भीतरी साक्षात्कार प्रारम्भ होता है। मन्त्र शब्द का द्वितीय अर्थ है विचार करना अर्थात संसार और आत्मा के सम्बन्धों पर निश्चयनय की दृष्टि से विचार करना। सभी धर्मों में विश्वास के साथ ज्ञान की महत्ता स्वीकार की गयी है। सम्यज्ञान की महिमा जैन मात्र को सुविदित है। अत: मन्त्र शब्द निश्चायक-असन्दिग्धज्ञान का भी दाता है। मन्त्र शब्द का तीसरा अर्थ मानव के आचरण पर बल देता है। तदनुसार हमें स्वीकृत एवं ज्ञात धार्मिक व्रतों, सिद्धान्तों एवं नियमों को सम्यक आचरण में डालना चाहिए कुल मिलाकर देखे तो सभी धर्मों में विश्वास, ज्ञान एवं आचरण की इसी विशुद्ध त्रिवेणी को धर्म का मूलाधार माना गया है। सभी जैन शाखा-प्रशाखाओं द्वारा मान्य तत्वार्थ सूत्र—सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:—भी सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य को साक्षात् मोक्षमार्ग के रूप में प्रतिपादित करता है। इन्हें तीन रत्नत्रय भी कहा गया है। अत: सुस्पष्ट एवं स्वयं सिद्ध है कि मन्त्र शब्द वास्तव में धर्म का पर्याय ही है। मन्त्र में सूत्र रूप में समस्त जिनवाणी गर्भित है। मन्त्र शब्द के अर्थ की विशेषता यह है कि पारलौकिक-आध्यात्मिक तथ्यों एवं फलों के साथ लौकिक जीवन की समस्याओं का भी इसमें समाधान निहित है। मन्त्रशब्द का उक्त तीन क्रिया-परक अर्थों के अतिरिक्त संज्ञापरक अर्थ भी अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं धर्ममय है। मन्+त्र अर्थात् चित्त को त्राण दायिनी, मुक्तिदायिनी—विशुद्ध अवस्था। चित्त, चिद् और चिति

रूप में मन की तीन अवस्थाएं मानी गयी हैं। चित्त मन की सुप्त एवं अशान्त अवस्था है। चिद् मन की चैतन्यमय जागृत अवस्था है और चिति मन की एक अवस्था है। जब वह साक्षात् ब्रह्म रूप होकर सर्वव्यापी एवं पूर्ण स्वतन्त्र हो जाता है। इसे ही जीवित-भक्ति के रूप में भारतीय धर्मों ने स्वीकार किया है। मन्त्र शब्द के इस अर्थ से भी धर्म से इसका अभेदत्व ही सिद्ध होता है। "यद्यपि इस मन्त्र का यथार्थ लक्ष्य निर्वाण-प्राप्ति है, तो भी लौकिक दृष्टि से यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है।*" ···इदं अर्थमन्त्रं परमार्थतीय परम्परा गुरु परम्परा प्रसिद्धं विशुद्धोपदेशम्।" अर्थात् अभीष्ट सिद्धिकारक यह मन्त्र तीर्थंकरों की परम्परा तथा गुरु परम्परा से अनादिकाल से चला आ रहा है। आत्मा के समान यह अनादि और अविनश्वर है।

मन्त्र और मातृकाएं :

भारतीय तान्त्रिक परम्परा के ग्रन्थों में निःश्रेयस (मोक्ष) प्राप्ति एवं ऐहिक कामनाओं की पूर्ति के साधन के रूप में मन्त्रों को स्वीकार किया गया है। उपकारक कर्मों के अनुष्ठान को तन्त्र कहा गया है। कर्म संहति ही तन्त्र है। वास्तव में तन्त्र और आगम को पर्याय के रूप में भी स्वीकृति प्राप्त है। मन्त्रों की महनीयता का रहस्य तन्त्रों में निहित है। सामान्य जन मन्त्रों की इस गहराई और विस्तार को न समझ पाने के कारण उनमें अविश्वास करने लगते हैं। मन्त्रों की रचना में अक्षर, वर्ण एवं वर्णमाला का अनिवार्य योग है। वास्तव में वर्ण और वर्णमाला एकाकी और संगठित रूप में साक्षात् मन्त्र ही हैं। यही कारण है कि वर्णों को मन्त्रों की मातृका-शक्ति कहा गया है।

"अकारादि क्षकरान्ता वर्णः प्रोक्तास्तु मातृकाः।
सृष्टिन्यास स्थितिन्यास संहृतिन्यासतस्त्रिधा॥"

—जयसेन प्रतिष्ठा पाठ श्लोक 376

अर्थात् आकार से लेकर क्षकार पर्यन्त वर्ण मातृका वर्ण कहलाते हैं। इन वर्णों का क्रम तीन प्रकार का है—सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम और संहारक्रम। णमोकार मन्त्र में यह क्रम है—यथास्थान इसका विवेचन

---

* "मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन" डॉ० नेमीचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य, पृ० 17, पृ० 58।

होगा। मातृका-शक्ति का विवेचन 'परात्रिंशका' में भी किया गया है—

"अकारादि क्षकरान्ता मातृका वर्णरूपिणी।
चतुर्दश स्वरोपेता बिन्दुत्रय विभूषिता॥"

वर्णात्मक मातृकाओं की संख्या पचास है। वर्णमाला को स्थूल मातृका के रूप में मान्यता प्राप्त है। वर्णमयी मातृका-शक्ति है और अर्थमयी मातृका शुभात्मक क्रिया है। शास्त्रों में इस वर्णमयी मातृका-शक्ति को उच्चारण और अर्थछवियों के आधार पर चार प्रकार से वर्गीकृत किया है—

1. वैखरी	—	स्थूल मातृका
2. मध्यमा वाणी	—	सूक्ष्म मातृका
3. पश्यन्ती	—	सूक्ष्मतर मातृका
4 परा	—	सूक्ष्मतम मातृका

वैखरी—विशेष रूप से स्वर अर्थात् कठिन होने के कारण इस वाणी विद्या को वैखरी कहा गया है। अथवा ख (कर्ण विवर) से सम्पृक्त होने के कारण भी इसे वैखरी कहा जाता रहा है। विखर एक प्राणांश है, उससे प्रेरित होने के कारण भी इस वाणी को वैखरी कहा जाता है। **मध्यमा**—इस वाणी विधा में वैखरी की अपेक्षा भावात्मकता और सूक्ष्मता अधिक रहती है। **पश्यन्ती**—इसमें अपेक्षाकृत रूप से अर्धप्रणवता और व्यंजकता की मात्रा सूक्ष्मतर होती है। इसे सामान्य व्यक्ति नहीं समझ सकता। **परा**—यह वाणी का सूक्ष्मतम रूप है। इसमें मातृका शक्ति का अर्थविस्तार एवं भावविस्तार चरम पर होता है। वर्णों की मातृका शक्ति धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते बिन्दुनात्मक हो जाती है। यह वह अवस्था है जहां पहुंचकर वाणी शब्द और वर्ण से हटकर केवल शून्य नादात्मक हो जाती है। इसी अवस्था में जीव का (मानव का) अपनी विशुद्धात्मा से अन्तरात्मा से साक्षात्कार होता है। इसी को वेदान्त में नाद ब्रह्म की संज्ञा दी गयी है।

उक्त विवेचन का मथितार्थ यह है कि मातृका-शक्ति की पूर्णता स्थूलता अथवा रूपात्मकता से भावात्मकता में परिणत होने में है। वाणी की यह अवस्था अनिर्वचनीय होती है। वास्तव में साहित्य की शब्दावली में इसे वाणी की या मातृका-शक्ति रस-दशा कहा जा सकता है। उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इन्हीं स्वर, व्यंजन एवं बिन्दु, विसर्ग तथा मात्राओं वाली मातृका-शक्ति ही ज्ञान एवं भाषा लिपियों का मूलाधार है।

हमारी प्राण वायु और ऊर्जा दोनों मिलकर कण्ठ के साथ जुड़ती हैं और कुछ ध्वनियां निर्मित होती हैं। मूर्धा और ओष्ठ के संयोग से कुछ ध्वनियां बनती हैं। इन्हीं ध्वनियों को मातृका कहते हैं। मातृका का अर्थ है मूल और सारे ज्ञान-विज्ञान का मूल है शब्द, और शब्द का मूल कण्ठ से ओष्ठ तक है। हमारी प्राण ऊर्जा टकरा करके, आहत या प्रताड़ित होकर अनेक शब्दाकृतियों को पैदा करती है, स्फोट पैदा करती है उसको व्यवहार में शब्द कहते हैं। ध्वनि शब्द के रूप में परिवर्तित होती है। यह अपनी उच्चतम अवस्था में दिव्यध्वनि या निरक्षरीध्वनि भी बनती है। वास्तव में यह बनती नहीं है खिरती है—अपनी पूरी गरिमामय सहजता से। यही सम्पूर्ण विश्व के सृष्टिक्रम का संचालन करती है। इसी को हम मात्रिका या मूल शक्ति कहते हैं। सारा ज्ञान-विज्ञान इसी से है। आप किसी नये शहर में पहुंचते ही उसकी जानकारी के लिए तुरन्त उस शहर की पुस्तक खरीद लेते हैं और अपना पूरा काम चला लेते हैं। यह क्या है? यही तो है मातृका-शक्ति का प्रकट फल।

हमारी देव नागरी लिपि की वर्णमाला अ से ह तक है। क्ष, त्र, ज्ञ तो संयुक्त अक्षर हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं। अतः अ से ह तक की वर्णमाला में ही गर्भित हैं। हमारी यात्रा अ से आरम्भ होकर ह पर समाप्त होती है। अ से ह तक ही हमारा समस्त ज्ञान-विज्ञान है। हम उसी में स्वप्न देखते हैं, सोचते हैं और जीवन क्रिया में लीन होते हैं। हमारे समस्त आचार-विचार का मूलाधार यही है। यह जो संसार है वैखरी का संसार है।—बाह्य शब्द का संसार है। इसी के सहारे हम समस्त विश्व को जानते हैं। मन्त्र में केवल इतना ही नहीं है कि शब्द का बाह्य अर्थात् स्थूल ज्ञान मात्र हो। हमने मातृका की बात की है। उसको समझना होगा, उसके व्यापक प्रभाव को हृदयंगम करना होगा। मातृका-शक्ति के पूर्ण प्रभाव को हर व्यक्ति नहीं समझ सकता। इस सन्दर्भ में स्पष्टता के लिए महाभारत का एक प्रसंग याद आ रहा है—भीष्म पितामह बाणों की शय्या पर लेटे हुए हैं। मृत्यु को रोके हुए हैं। समस्त पाण्डवदल नतमस्तिक होकर पितामह के चारों तरफ खड़ा है। पितामह ने कहा मुझे प्यास लगी है। सूर्यास्त हो रहा है। पानी लेकर तुरन्त सभी लोग दौड़े। पितामह ने नहीं पिया और उदास हो गए। फिर बोले, मुझे मेरी इच्छा का पानी अर्जुन ही पिला सकता है। ये

शब्द सुनते ही—अर्जुन का अर्थ चैतन्य प्रबुद्ध हुआ—अर्जुन ने तुरन्त बाण से पृथ्वी छेद डाली और पानी की धारा धरा पर आ गयी। पितामह ने तृप्त होकर पानी पिया और प्राण त्याग दिये। इस बात को अर्जुन ही समझ सका।

इन वर्णात्मक मातृकाओं में लौकिक एवं पारलौकिक अनन्त फल देने की अपार शक्ति है। जब ये मातृकाएं मन्त्रों से परिणत हो जाती हैं तो वह शक्ति अणुबम की भांति इनमें संगठित हो जाती है यह शक्ति होते हुए भी अज्ञानी और कुपात्र को लाभ नहीं पहुंचाती है क्योंकि उसको इसके बोध एवं विधि से परिचय ही नहीं होता है। उदाहरणार्थ एक जगली व्यक्ति को यदि लाखों रुपयों की कीमत का हीरा प्राप्त भी हो जाए तो वह तो उसे एक कांच का टुकड़ा ही समझेगा। हमारे धार्मिक भाई-बहिनों में भी विश्वास और बोध की कमी होने के कारण उन्हें मातृकामय मन्त्रों का लाभ नहीं होता। मातृका-शक्ति (अर्थात् वर्णात्मक) के विषय में यह कथन ध्यातव्य है—

मन्त्राणां मातृभूता च मातृका परमेश्वरी।" —यज्ञ वैभव, अध्याय 4

"ज्ञानस्यैव द्विरूपस्य परापर विमदमः।

स्यादधिष्ठानमाधारः शक्ति रेकैव मातृका।" —शिवसूत्रवार्तिक-23

मातृका वर्ण कर्म :

1.	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः	(16)
2.	क, ख, ग, घ, ङ	(5)
3.	च, छ, ज, झ, ञ	(5)
4.	ट, ठ, ड, ढ, ण	(5)
5.	त, थ, द, ध, न	(5)
6.	प, फ, ब, भ, म	(5)
7.	य, र, ल, व	(4)
8.	श, ष, स, ह, क्ष	(5)
		50

समस्त मातृतकाओं की शक्ति, रंग, देवता, तत्त्व तथा राशि आदि पर अनेक प्राचीन जैन एवं इतर ग्रन्थों में गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। केवल इन पर ही एक विशाल ग्रन्थ लिखा जा सकता है। व्याकरण और बीजकोशों में इनका समग्र विवेचन है ही। यहां पाठकों की जानकारी के लिए मातृका-सार-चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है—

मातृका	वर्ण	आकार	महिमा	राशि	ग्रह	तत्त्व	विशेष
अ	स्वर्ण वर्ण	विशाल पंचकोणात्मक	प्रणव बीत का जनक	मेष	सूर्य	वायु	
आ	श्वेत वर्ण	साठ योजन	कीर्तिदायक	"	"	"	
इ	पीत वर्ण	कुण्डली	सदाशक्तिमय	"	"	अग्नि	
ई	"	"	ज्ञानमय	"	"	"	
उ	पीत चम्पक	"	चतुर्वर्गप्रद	वृष	"	भूमि	
ऊ	श्वेत	परम कुण्डली	चतुर्वर्गप्रद	वृष	सूर्य	"	
ऋ	लाल	कुण्डली	सिद्धिदायक	"	"	जल	
ॠ	पीत	परम कुण्डली	पंचप्राणमय	मिथुन	"	"	
ऌ	"	कुण्डली	गुणत्रयात्मक	"	"	आकाश	
ॡ	"	परम कुण्डली	"	"	"	"	आत्मसिद्धि में कारण
ए	श्वेत	"	अरिष्ठनिवारक	कर्क	"	वायु	
ऐ	चन्द्रवर्ण	"	शुभंकर	"	"	अग्नि	शासन देवों के आह्वान में सहायक
ओ	लाल	"	कार्यसाधक	सिंह	"	भूमि	निर्जरा हेतु
औ	"	कुण्डली	बीजों का मूल	"	"	जल	चतुर्वर्गप्रद
अं	पीत	बिन्दुवत	मृदु शक्ति का उद्घाटक	कन्या	"	आकाश	ध्यान मन्त्रों में प्रमुख
अः	लाल	चक्राकार	शांति बीजों में प्रमुख	"	"	"	

मातृका	वर्ण	आकार	महिमा	राशि	ग्रह	तत्त्व	विशेष
क	सुर्ख लाल	कलिकावत	इच्छापूर्ति	तुला	मंगल	वायु	
ख	श्वेत	कुण्डलीवत	कल्पवृक्ष	"	"	अग्नि	उच्चारन बीजों का जनक
ग	लाल	कुण्डली रूप	गुणवर्धक	"	"	भूमि	
घ	"	चतुष्कोणात्मक	सर्वप्रद	"	"	जल	मारण और मोहन बीजों का जनक
ङ	"	परम कुण्डली	शत्रुनाशक	"	"	आकाश	
च	"	कुण्डली	फलदायक	वृश्चिक	शुक्र	वायु	उच्चाटन बीज का जनक
छ	पीत	परम कुण्डली	शान्तिप्रद	"	"	अग्नि	
ज	श्वेत	मध्यकुण्डली	नवसिद्धि	"	"	भूमि	आधिव्याधि शमक
झ	लाल	कुण्डली	कार्यसाधक	"	"	जल	श्रीबीजों का जनक
ञ	"	परम कुण्डली	स्म्तभक	"	"	आकाश	मोहक बीजों का जनक
ट	लाल	कुण्डली	शत्रु शमन	धनु	बुध	वायु	विध्वंसक कार्यों का साधक
ठ	पीत	"	अशुभ बीजों का जनक	"	"	अग्नि	शुभ कार्यों का नाशक
ड	"	"	विशिष्ट कार्य साधक	"	"	भूमि	अचेतन क्रिया साधक
ढ	लाल	परम कुण्डली	शान्ति विरोधी	"	"	जल	मारण प्रधान
ण	पीत	"	सुखदायक	"	"	आकाश	

मातृका	वर्ण	आकार	महिमा	राशि	ग्रह	तत्त्व	विशेष
त	’	परम कुण्डली	सर्वसिद्धिदायक	मकर	बृहस्पति	वायु	सारस्वत सिद्धिदाता
थ	लाल	कुण्डली	मंगल साधक	”	”	अग्नि	स्वर संयोग में मोहक
द	”	परम कुण्डली	चतुर्वर्गप्रद फलप्रद	”	”	भूमि	आत्मशक्ति का प्रस्फोटक
ध	पीत	कुण्डली	मित्रवत् फल	”	”	जल	
न	लाल	प्रलम्ब	आत्मनियन्ता	”	”	आकाश	जलतत्त्व का स्रष्टा
प	शुभ्र	परम कुण्डली	सर्वकार्य साधक	कुम्भ	शनि	वायु	जलतत्त्वमय
फ	लाल	प्रलम्ब	कार्यसाधक	”	”	अग्नि	फट् ध्वनि के योग से उच्चाटक
ब	शुभ्र	कुण्डली	फलप्रद	”	”	भूमि	अनुस्वार मुक्त होने पर विघ्न विनाशक
भ	श्याम	”	विघ्नोत्पादक	”	”	जल	
म	लाल	परम कुण्डली	सिद्धिदायक	”	”	आकाश	सन्तान प्राप्ति में सहायक
य	श्याम	चतुष्कोण	शान्तिदायक	मीन	सोम	वायु	अभीष्ट सिद्धि का कारण
र	लाल	द्विकुण्डली	शक्ति केन्द्र	”	”	अग्नि	गतिवर्धक
ल	पीत	”	लक्ष्मी प्राप्ति	”	”	भूमि	
व	”	कुण्डली	रोगहर्ता	”	”	जल	बाधानाशक

मातृका	वर्ण	आकार	महिमा	राशि	ग्रह	तत्त्व	विशेष
श	पीत	कुण्डली	शान्तिदाता	कन्या	सोम	जल	
ष	लाल	"	सिद्धिदायक	"	"	वायु	
स	श्वेत	कुण्डलीत्रय	हितकर	"	"	जल	कर्मनाशक
ह	लाल	कुण्डली	कान्तिदाता	"	"	आकाश	
क्ष	"	"	प्रचप्राणात्मक	"	"	अग्नि	

नोट—उल्लिखित मातृका-सार-तालिका प्रपंचसार, शारदातन्त्र, सौभाग्य भास्कर, जयसेन प्रतिष्ठा पाठ, मंगल मन्त्र णमोकार एवं मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य नामक ग्रन्थों की सहायता से तैयार की गई है।

मन्त्र और मातृका शक्ति :

मन्त्र के सन्दर्भ में जब हम मातृका विद्या को समझना चाहते हैं तो हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि मातृका विद्या में केवल ध्वनियों एवं वर्गों का उच्चारण या आकृति ही सम्मिलित नहीं है बल्कि उन ध्वनियों का मन, शरीर और जगत पर पड़ने वाला प्रभाव भी सम्मिलित है। इसे दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि मातृका विद्या के दो आयाम हैं—ज्ञानात्मक और क्रियात्मक। ज्ञानात्मक पहलू उच्चारण किये जाने वाले वर्णों का एवं उन वर्णों से बने हुए शब्दों के अर्थ का संकेत देता है, तो क्रियात्मक पहलू उन शब्दों के उच्चारण से होने वाले प्रभाव को और शक्ति के परिवर्तन को सूचित करता है।

उदाहरण के रूप में 'राम' और अर्हं' इन शब्दों को लिया जा सकता है। जब हम राम शब्द का उच्चारण करते हैं तो इस उच्चारण से हमारे सामने भूतकाल में हुए पुरुषोत्तम राम की मानसिक प्रतिकृति उभर आती है। उनके व्यक्तित्व की झांकी स्पष्ट हो जाती है। परन्तु साथ ही इस उच्चारण में एक गूढ़ तत्त्व भी है। राम शब्द के उच्चारण में र्+आ, म्+अ इतने वर्णों का उच्चारण निहित है। 'र' का उच्चारण करते समय हमारी जिह्वा मूर्धा को छूती है। मूर्धा को छुए बिना 'र' का उच्चारण नहीं हो सकता और मूर्धा को परम तत्व का स्थान माना गया है। 'र' के बाद हम 'अ' का उच्चारण करते हैं। यह कण्ठ ध्वनि है। कंठ को जीव का स्थान माना गया है। अतः 'र' के पूर्ण उच्चारण से यह स्पष्ट हो गया कि परमात्मतत्त्व के साथ जीव का संयोग होता है। दोनों का मिलन होता है। इसके बाद 'म' के उच्चारण में ओष्ठ युगल का अनिवार्य संयोग होता है। 'म' के उच्चारण में शक्ति अन्दर से ऊपर की ओर उठती है और आकाश की महातरंगों में सम्मिलित हो जाती है। अब 'राम' शब्द के पूर्ण उच्चारण का अर्थ हुआ कि 'रा' के उच्चारण में जीवात्मा और परमात्मा का संयोग होता है और 'म' के उच्चारण से जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाती है—उसमें उतरने लगती है। स्पष्ट है आत्मा ही परम निर्विकार अवस्था को प्राप्त कर परम+आत्मा=परमात्मा हो जाती है। अपनी ही प्रसुप्त, दमित एवं आच्छादित आत्मा की विदेशी तत्त्वों से मुक्ति धर्म की सबसे बड़ी कसौटी है।

अर्हं शब्द को भी राम शब्द के समान मातृका शक्ति के द्वारा समझा जा सकता है। जब हम अर्हं शब्द का उच्चारण करते हैं तो इस शब्द से पूज्य अरिहन्त भगवान का बोध होता है। उनकी मूर्ति सामने आने लगती है। अर्हं के उच्चारण से अरिहन्त परमेष्ठी के रूप-बोध के साथ हमारे आन्तरिक जगत् में भी परिवर्तन होने लगते हैं। अर्हं के उच्चारण में हम अ + र् + ह् + अ + म् का उच्चारण करते हैं। 'अ' का उच्चारण[1] कण्ठ से होता है, वह जीव का स्थान माना गया है। 'र्' का उच्चारण स्थान मूर्धा है और वह परम तत्त्व का स्थान माना गया है। 'ह्' का उच्चारण स्थान कण्ठ है, परन्तु जब 'ह्' 'र' से जुड़कर उच्चरित होता है तो उसका स्थान मूर्धा हो जाता है। मूर्धा परम तत्त्व का स्थान है। अब अर्हं में अन्तिम अक्षर बिन्दु है। वह मकार का प्रतीक है।[2] मकार का उच्चारण ओष्ठयुगल के योग से होता है। इसमें दोनों ओष्ठों के मिलन से ध्वनि भीतर ही गूँजने लगती है। शक्ति ऊपर की ओर अर्थात् सहस्रार की ओर उठने लगती है। इस प्रकार पूरे अर्हं शब्द का मातृका और व्याकरण-सम्मत विश्लेषण के आधार पर अर्थ यह हुआ कि इसमें जीव का परमतत्त्व (अरिहन्त) से साक्षात्कार होता है और दूसरी अवस्था में यह साक्षात्कार एकाकार में बदलने लगता है—एक रूप होकर सहस्त्रार के माध्यम से ऊपर उठने लगता है ऊर्ध्व गमन आत्मा के प्रमुख गुणों में से एक है।

अर्हं शब्द को एक दूसरे प्रकार से भी समझा जा सकता है। संस्कृत में अहं शब्द है। इसका 'अ' सृष्टि के आदि का बोधक है और 'ह' उसके अन्त का। अतः 'अहं' उस तत्त्व का बोधक है जिससे सृष्टि का आदि और अन्त पुनः पुनः होता रहता है। जब इस अहं में अर्हं का 'र्' जुड़ जाता तो इसका रूप ही बदल जाता है। अहं अर्हं बन जाता है। जैन धर्म ने साधना के लिए अर्हं शब्द का उपयोग किया है अर्हं में 'र' अग्नि शक्ति, क्रियाशक्ति और संकल्प शक्ति का बोधक है। जब संकल्प शक्ति के कारण व्यक्ति में सम्पूर्ण शक्ति जग जाती है तो स्वतः उसके संसार चक्र का अन्त हो जाता है। उसका अहं अर्हं बन जाता है।

---

1. "अकुहविसर्जनीयानाम् कण्ठ," अष्टाध्यायी—पाणिनी
2. "उपूपध्मानीयानामोष्ठौ"— " "

यह कहा जा चुका है कि 'अ' से लेकर 'ह' तक में सभी वर्णों का समावेश हो जाता है अतः अर्हं को सभी वर्णों का संक्षिप्त रूप कहा जा सकता है। 'र' सक्रिय शक्ति का बीज है। इस प्रकार अर्हं में मातृकाओं की सभी शक्तियों का समावेश हो जाता है। 'अर्हं' यह शब्द ज्ञान का ध्वनि का—सरस्वती देवी का बीज है—आधार है।

अर्हं के उच्चारण का मुख्य प्रयोजन है सुषुम्ना को स्पंदित करना। इसमें 'अ' चन्द्रशक्ति का बीज है। 'ह' सूर्य शक्ति का और 'र' अग्नि शक्ति का बीज है। ये वर्ण क्रमशः इड़ा सुषुम्ना और पिंगला को प्रभावित करते हैं। इस प्रभाव से कुंडलिनी जागृत होती है और वह ऊर्ध्व गगन के लिए तैयार होती है। इसी प्रकार ह्रीं के उच्चारण से विश्लेषण करने पर उक्त निष्कर्ष प्राप्त होता है।

प्रत्येक मातृका (वर्ण) विशिष्ट तत्त्व, विशिष्ट चक्र, विशिष्ट आकृति, विशिष्ट नाड़ी और विशिष्ट रंग से सम्बन्धित होने के कारण विशिष्ट शक्ति को उत्पन्न करता है। वह विशिष्ट बल का प्रतिनिधित्व करता है। यह शक्ति मानव के बाह्य जगत् को जिस प्रकार प्रभावित करती है उसी प्रकार अन्तर्जगत को। योग शास्त्र में प्रत्येक वर्ण का विशिष्ट शक्ति का वर्णन किया गया है। ये बीजाक्षर हैं अतः इनका व्यापक अर्थ एवं मात्रा तो बीजकोश एवं व्याकरण द्वारा ही पूर्णतया समझा जा सकता है। संकेत रूप में यहां प्रस्तुत है—

अ—अव्यय, व्यापक, ज्ञानात्मक, आत्मैत्य द्योतक, शक्ति बीज प्रणव-बीज का जनक।

आ—अव्यय, कामनापूरक, शक्ति बीज का जनक, समृद्धि, कीर्ति-दायक।

इ—गतिदायक, लक्ष्मी प्राप्ति में सहायक, अग्नि बीज, मार्दवयुक्त।

ई—अमृत बीज का आधार, कार्य साधक, ज्ञानवर्द्धक, स्तम्भन, मोहन, जृम्भन में सहायक।

उ—उच्चाटन एवं मोहन का आधार, शक्तिदायक, मारक (प्लुत उच्चारण के साथ)

ऊ—उच्चाटक, मोहात्मक, ध्वंसक

ऋ—ऋद्धिदायक, सिद्धिदायक, शुभ।

ऌ—सत्योत्पादक, वाणी का ध्वंसक, आत्मोपलब्धि का कारण।

ए—गति सूचक, अरिष्ठ निवारक, वृद्धिकारक

ऐ—उदात्त, उच्चस्वस्ति होने के कारण वशीकरण, देव-आह्वान में सहायक।

ओ—अनुदात्त, लक्ष्मी और शोभा का पोषक, कार्य-साधक

औ—मारण और उच्चाटन में प्रधान, कार्य साधक

अं—शून्य या अभाव का सूचक, आकाश बीजों का जनक, लक्ष्मी-दायक

अः—शान्तिदायक, सहायक, कार्यसाधक

क—शान्ति बीज, प्रभाव एवं सुख उत्पादक, सन्तान प्राप्ति की कामनापूर्ति में सहायक

ख—आकाशबीज, कल्पवृक्ष

ग—पृथक्कारी, प्रणव के साथ सहायक

घ—स्तम्भक बीज, विघ्न नाशक, मारण और मोहन बीजों का जनक

ङ—शत्रु नाशक, विध्वंसक

च—खण्ड शक्ति का सूचक, उच्चाटन बीज का जनक

छ—छाया सूचक, मायाबीज का जनक, शक्ति नाशक, कोमल कार्यों में सहायक

ज—नूतन कार्यों में सहायक, आधि-व्याधि निरोधक

झ—रेफयुक्त होने पर कार्य साधक, शान्तिदायक, श्रीकारी

ञ—स्तम्भक, मोहक बीजों का जनक, माया बीज का जनक

ट—वन्हि बीज, आग्नेय कार्यों का प्रसारक, विध्वंसक कार्यों का साधक

ठ—अशुभसूचक बीजों का जनक, कठोर कार्यों का साधक, रोदनकर्ता, अशान्तिकारी, वन्हिबीज

ड—शासन देवताओं की शक्ति जगाने वाला, निम्नस्तरीय कार्यों की सिद्धि में सहायक

ढ—निश्चल, मायाबीज का जनक, मरण बीजों में प्रमुख

ण—शान्तिसूचक, आकाश बीजों में प्रधान, शक्ति स्फोटक

त—शक्ति का आविष्कारक, सर्वसिद्धिदायक

थ—मंगल साधक, स्वर मातृका योग में मोहक

द—आत्म शक्ति प्रकाशक, वशीकरण बीजों को उत्पन्न करने वाला।

ध—श्रीं और क्लीं बीजों का सहायक, माया बीजों का जनक।

न—आत्मसिद्धि का सूचक, जल तत्त्व का निर्माता, आत्म नियन्त्रक।

प—परमात्मा का सूचक, जलतत्वमय, समग्र सहायक

फ—वायु और जल तत्त्व से युक्त, स्वर और रेफ के योग में विध्वंसक

ब—अनुस्वर युक्त होने पर विघ्न विनाशक, सिद्धिदायक

भ—मारण, उच्चारन में उपयोगी, निरोधक।

म—सिद्धिदायक, सन्तान प्राप्ति में सहायक

य—शान्ति साधक, मित्र प्राप्ति में सहायक, इच्छित प्राप्ति में सहायक।

र—अग्निबीज, कार्य साधक, शक्ति सफोटक

ल—लक्ष्मी प्राप्ति में सहायक, कल्याण सूचक

व—सिद्धिदायक, ह, र, और अनुस्वार के योग में चमत्कारी।

श—विरक्ति, शान्ति दायक

ष—आह्वान बीजों का जनक, सिद्धिदायक, रुद्रबीज-जनक

स—इच्छापूर्तिकारक, पौष्टिक, आकरण नाशक

ह—शान्तिदायक, साधना में उपयोगी, समस्त बीज जनक

मातृका-सारचित्र

(तत्त्व, चक्र, नाड़ी, विशेषता)

पांच तत्व	इड़ा (चन्द्र स्वर) स्वर	पिंगला (सूर्य) व्यंजना		सुषुन्ना (अग्नि)		सुषुन्ना (अग्नि आज्ञाचक्र सहस्रार चक्र		विशेष
	विशुद्ध चक्र	अनाहत	मणिपूरक चक्र	स्वामिष्ठान चक्र	मूलाधार चक्र	आकाचक्र	सहस्रारचक्र	
वायु	अ आ ए	क च ट	त् प्	र	ध् ×	×	×	ग्राहकता
अग्नि	इ ई ऐ	ख छ ठ अ	फ	र	×	क्ष	×	दर्शनगति
पृथ्वी	उ ऊ ओ	ग ज ढ द		ल व ल	×		ल	गंध
जल	ॠ ॠ औ	घ झ 0 ढ	ध	म ×	ब स			स्वाद, काम
आकाश	ल अ = × अं लृ	ङ 0 ण	न ×	म् ×	श ×	ह	×	श्रवण, वाक

महामन्त्र णमोकार और ध्वनि विज्ञान

अनुच्चरित विचार और भाव अव्यक्त भाषा के रूप में तथा उच्चरित भाव और विचार व्यक्त भाषा के रूप में आज भी भाषा वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकृत है। भाषा की महत्ता और सार्थकता को अत्यन्त दूरदर्शिता से हमारे प्राचीन ऋषियों, मुनियों एवं ज्ञानियों ने समझा और अनुभव किया था। उसी के फलस्वरूप शब्द ब्रह्म, स्फोटवाद और शब्द शक्ति का आविष्कार हुआ। दिव्य ध्वनि और ओंकारात्मक निरक्षरी ध्वनि का खिरना (झरना) इसी सन्दर्भ की विस्तृति में समझना कठिन नही होगा। बैखरी, मध्या, पश्यन्ती और परा—भाषा के ये चार रूप उसकी मुखर स्थूलता से सूक्ष्मतम मानसिकता की यात्रा के क्रमिक सोपान हैं।

भाषा मानव की जन्मजात नहीं, अर्जित सम्पत्ति है। उच्चरित भाषा का अधुनातन विकास मानव के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का कीर्तिमान है। मानव के मुखद्वार से निःसृत सार्थक, यादृच्छिक एवं व्यवस्थित ध्वनि प्रतीकों का वह समुदाय भाषा है जिसके द्वारा समान भाषा-भाषी परस्पर अपने विचारों और भावों का आदान-प्रदान करते हैं। भाषा विज्ञान की इस परिभाषा का ध्यान रखकर और प्राचीन शास्त्रीय मान्यताओं का ध्यान रखकर, हम महामन्त्र णमोकार का ध्वनि-विज्ञान के सन्दर्भ में अध्ययन कर रहे हैं।

हम प्रथमतः ध्वनि का स्वरूप, ध्वनियन्त्र, ध्वनियों का वर्गीकरण एवं ध्वनि परिवर्तन पर संक्षेप में विचार करेंगे। और फिर महामन्त्र में निहित ध्वनि-तरंगों, ध्वनि प्रतीकों और ध्वनि-मण्डलों का अध्ययन तुलनात्मक अनुसन्धान एवं वैषम्यमूलक अनुसन्धान के धरातल पर करेंगे। हम वर्ण-मातृका शक्तियों का भी इसी सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे।

ध्वनि का अर्थ और परिभाषा :

भाषा विचारों और भावों के आदान-प्रदान का साधन है। वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है, रूप (पद) उससे छोटी एवं ध्वनि उससे भी छोटी।

किसी वस्तु के दूसरी वस्तु से घर्षित होने से जो प्रतिक्रिया हो, जिसे कान से सुना जा सके, सामान्यतया उसे ध्वनि कहा जाता है। उदाहरण के लिए मेंढक अथवा मछली के पानी में उछलने या कूदने से जो आवाज-ध्वनि या साउण्ड होगी उसे ध्वनि कहा जाएगा। यह ध्वनि की सामान्य परिभाषा है और इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। वैज्ञानिक दृष्टि से वायुमण्डलीय दबाव (Atmospheric pressure) में परिवर्तन या उतार-चढ़ाव (Variaticn) का नाम ध्वनि है। यह परिवर्तन वायुकणों (Airparticles) के दबाव (Compression) तथा बिखराव (refraction) के कारण होता है।

भाषा या भाषा विज्ञान के प्रसंग में जिस ध्वनि पर विचार किया जाता है, वह तो पर्याप्त सीमित है। इसे भाषा-ध्वनि कहा जाता है। भाषा-ध्वनि भाषा में प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है जिसका उच्चारण और सुनने की दृष्टि से स्वतन्त्र व्यक्तित्व हो। उच्चारण के समय ध्वनियां अनेक परिवेशों से सम्बद्ध होती हैं।—अर्थात् उच्चारण की लम्बाई क्या है—उसके अनुपात में वह ध्वनि आदि, मध्य या अन्त में कहां तक उच्चरित है।' उसके पूर्वापर स्वर व्यंजनों की स्थिति क्या है।' यदि स्वर है तो कौन-सा—अग्र, पश्च, मध्य, विवृत, संवृत, ह्रस्व, दीर्घ, घोष, अघोष आदि। यदि व्यंजन हैं तो स्पर्श, स्पर्श संघर्षी, मूर्धन्य, दन्त्य, वर्त्स्य, ओष्ठ्य, अनुनासिक आदि में से कौन है।' ध्वनि का निर्माण परिवेश के माध्यम से होता है। परिवेश की अनिवार्यता के कारण स्वाभाविक रूप से ध्वनि को परिवर्तन की प्रक्रिया से अपनी यात्रा करनी होती है। भाषा के लिखित रूप से ध्वनियों का प्रत्यक्षः कोई सम्बन्ध नहीं है। लिखित रूप का सम्बन्ध वर्णों से है। वर्ण एवं ध्वनि में अन्तर है।

भाषाओं में ध्वनियों को वर्णात्मक-प्रतीकों में विभाजित करके समझा जाता है। अलग-अलग भाषाओं में कभी-कभी एक ही ध्वनि के कई प्रतीक होते हैं—यथा—अंग्रेजी में 'क' ध्वनि के लिए (K), (C),(Q)

तथा 'स' ध्वनियों के लिए (S), (C) प्रतीक हैं। इसी प्रकार एक प्रतीक को कई ध्वनियों से भी उच्चरित किया जाता है। अंग्रेज़ी में ही देखिए—(G) जी द्वारा 'ग' और 'ज' ध्वनि उच्चरित होती है। T द्वारा 'ट' एवं 'त' ध्वनि, इसी प्रकार D द्वारा 'ड' एवं 'द' ध्वनि उच्चरित होती है। इस समस्या को ध्वनि लिपि द्वारा सुलझाया जाता है। इसमें एक ध्वनि एक निश्चित संकेत द्वारा व्यक्त होती है। उच्चारण, संवहन, एवं ग्रहण के आधार पर ध्वनि विज्ञान की तीन शाखाएं हो जाती हैं: 1. औच्चारणिक (Articulatory phonetics) 2. भौतिक (Acoustic Phonetics) 3. श्रोत्रिक (Auditory phonetics)

औच्चारिनक शाखा द्वारा ध्वनियों की क्षमता (शक्ति) और अन्य ध्वनियों से भिन्नता का ज्ञान होता है। उदाहरण के लिए चल, उत्कल, धवल एवं शुक्ल शब्दों में प्रारंभिक ध्वनि च, उ, ध, शु एक दूसरी से कितनी भिन्न हैं इसका पता औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान यंत्र से लग सकता है। इसी प्रकार उक्त सभी शब्दों की अन्तिम ध्यनि ल होने पर भी अपनी पूर्ववर्ती ध्वनि के कारण किस प्रकार उच्चारणगत भिन्नता या समानता रखती है इसका भी पता उक्त विज्ञान द्वारा लगता है। पंच पदीय णमोकार मंत्र के प्रत्येक पद के अन्त में 'णं' ध्वनि, आती है। प्रारंभ के चार पदों में 'आ' के बाद 'णं' ध्वनि आती है। इसका ('आ' ध्वनि का) 'णं' ध्वनि पर उच्चारणगत प्रभाव सूक्ष्म होने के कारण सामान्यतया समझना कठिन है। परन्तु चतुर्थ पद णमो उवज्झायाणं 'के' 'णं' का और णमो लोए सव्व साहूणं के 'णं' का ध्वन्यात्मक अन्तर उनकी पूर्ववर्ती ध्वनि आ और ऊ के आधार पर बहुत अधिक हो जाता है। इसे ध्वनियन्त्र के माध्यम से और मातृका शक्ति के माध्यम से भी समझा जा सका है।

उच्चारण अवयव :

मानवीय ध्वनि के उत्पादन, नियमन एवं वितरण में उच्चारण अर्थात् सम्पूर्ण मुख-विवर का महत्वपूर्ण योगदान है। उच्चारण यन्त्र दो प्रकार का होता है—एक स्थिर और दूसरा चल। कंठ-नलिक, नासिक विवर, नीचे की तालु के विभिन्न भाग, ऊपरी ओष्ठ और दांत स्थिर उच्चारण अवयव हैं। स्वर तंत्री, जिह्वा, नीचे का ओष्ठ आदि चल उच्चारण अवयव हैं। कुछ भाषा वैज्ञानिक स्थिर उच्चारण

अवयवों के उच्चारण-स्थान के रूप में मानते हैं; जबकि चल अवयवों को भी उच्चारण-अवयव के रूप में स्वीकार करते हैं। उचारण प्रक्रिया में जबड़ा एवं ओष्ठ तो स्पष्टतया देखे जा सकते हैं, जिह्वा भी कुछ दृष्टव्य होती है। अन्य क्रियाएं भीतर होती हैं, बाहर से नहीं देखी जा सकती। एक्सरे,टी०वी०, युवी,लेरिंगोस्कोप जैसेउपकरणों से ये क्रियाएं समझी जा सकती है। सम्पूर्ण रूप में यह—मुख, नासिका, कंठ, फेफड़े आदि का समुदाय वाणी-मार्ग (Speech-Tract) कहलाता है।

ध्वनियों के उच्चारण वाग्यंत्र (Vocal apparatus) से होता है। इसी को उच्चारण-अवयव (Vocal organ) भी कहते हैं। उच्चारण अवयव निम्नलिखित है—

1. उपालि जिह्वा (कंठ, कंठ मार्ग) (Pharynx), 2. भोजन नलिका (Gullet), 3. स्वर यन्त्र कंठपिटक, ध्वनियन्त्र) (Larynx), 4. स्वर यन्त्र मुख (काकल) (Glottis), 5. स्वरतन्त्री (ध्वनितन्त्री (Vocal Chord), 6. अभिकाकल-स्वर यंत्रावरण (Epiglottis) 7. नासिकाविवर (Nagal cavity), 8. मुख विवर(mouth Carity), 9. अलिजिह्व (कौआ, घंटी) (Uvula), 10. कंठ ((Gutter), 11. कोमल तालु (Soft Palate) 12. मूर्धा, (Cerebrum), 13. कठोरतालु (Hard Palate), 14. वर्त्स (Alreala, 15. दांत (Teeth), 16. ओष्ठ (Lip)

नोट—जिह्वा को कुछ भागों में ध्वनि के स्तर पर विभाजित किया गया है :

17. जिह्वा (Tongue), 18. जिह्वामूल (Root of the Tongue), 19. जिह्वानीक (Tip of the Tongue), 20. जिह्वाग्र—जिह्वा फलक (Front of the Tongue), 21. जिह्वा मध्य (Middle of the Tongue), 22. जिह्वापश्च (Back of the Tongue)

कतिपय भाषा वैज्ञानिकों ने व्यवहारिकता के दृष्टिकोण से केवल 16 ध्वनि-अंगों को ही स्वीकार किया है।

1. स्वर यन्त्र, 2. स्वर तन्त्री, 3. अभिकाल या स्वर यन्त्रावरण, 4. अलिजिह्वा, 5. कोमल तालु, 6. मूर्धा, 7. कठोर तालु, 8. वर्त्स्य, 9. दांत, 10. जिह्वा नोक, 11. जिह्वाग्र, 12. जिह्वामध्य, 13 जिह्वा-पश्च, 14. जिह्वामूल, 15. नासिका विवर, 16. ओठ।

प्रमुख उच्चारण अवयव और उनकी क्रियाएं संक्षेप में इस प्रकार हैं।

फेफड़े—फेफड़ों में श्वास-प्रश्वास की क्रिया निरन्तर होती रहती है। यही श्वास बाहर आने पर ध्वनि का रूप धारण करती है। फेफड़ों के ऊपर स्थित श्वास नली से होकर ही श्वास बाहर आती है—इस श्वास से ही ध्वनि उत्पन्न होती है।

श्वासनलिका भोजन नलिका और अभिकाकल—हम प्रतिक्षण नाक के द्वारा भीतर की तरफ सांस लेते हैं और उसे फेफड़ों में पहुंचाते हैं। वही श्वास (वायु) फेफड़ों को स्वच्छ कर फिर बाहर निकल जाती है। यह श्वांस नलिका फेफड़े का ही एक अंग है।

श्वास नलिका के पीछे भोजन नलिका है जो नीचे आमाशय तक जाती है। इन दोनों नलिकाओं को पृथक करने के लिए इन दोनों के बीच में एक दीवाल है। भोजन नलिका के साथ श्वास नलिका की ओर झुकी हुई एक छोटी-सी जीभ है। जिसे अभिकाकल कहा जाता है। श्वास नलिका को भोजन के सम वन्द करने का इसी का काम है। यह दीवाल भोजन निगलते समय श्वासनली के मुख को बन्द कर देती है और तब भोजन नली खुल जाती है जिससे होकर भोजन सीधा आमाशय में पहुंच जाता है। श्वास नली वन्द न हो तो भोजन उसमें पहुंचेगा, उस स्थिति में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। स्पष्ट है कि भोजन के समय मौन रखना श्रेयस्कर है क्योंकि बात करने पर श्वास नलिका खुलेगी ही और भोजन उस ओर भी जा सकता है।

स्वर यन्त्र—स्वरतन्त्री—श्वास नलिका के ऊपरी भाग में अभिकाकल से नीचे ध्वनि उत्पन्न करने वाला प्रधान अवयव ही स्वर यन्त्र कहलाता है। यही ध्वनि यन्त्र भी कहा जाता है। बाहर गले में जा उभरी ग्रन्थि (टेंटुआ) दिखती है वह यही है। स्वर यन्त्र में पतली झिल्ली के बने दो परदे होते हैं। इन्हें ही स्वरतन्त्री कहते। अंग्रेजी में इसे (Vocal Chord) कहा जाता है।

मुखविवर, नासिका विवर और अलिजिह्वा (कौआ)—स्वर यन्त्र के ऊपर ढक्कन (अभिकाकल) होता है। इसके ऊपर एक खाली स्थान है जिसे हम चौराहा कह सके हैं। यहां से चार मार्ग (श्वास नलिका,

भोजन नलिका, मुख विवर, नासिका विवर) चारों ओर जाते हैं। नासिका विवर और मुखविवर के मुहाने पर एक छोटा-सा मांस खण्ड है, वही अलि जिह्वा या छोटी जीभ कहलाता है। अलि जिह्वा कोमल तालु का अन्तिम भाग है।

कोमल तालु—मूर्धा के अन्त का अस्थिमय अंश जहां कोमल मांस खण्ड प्रारम्भ होता है, कोमल तालु कहलाता है जब मुख विवर से वायु भीतर की ओर ली जाती है तो कोमल तालु ऊपर उठ जाता है। किन्तु जब वायु नासिका विवर से निकलती है तब कोमल तालु नीचे की ओर झुक जाता है। कोमल तालु मुखविवर और नासिका विवर के बीच एक कपाट का काम करता है।

मूर्धा—कठोर तालु और कोमल तालु के बीच का भाग मूर्धा है। यह उच्चारण स्थलन है।

कठोर तालु—वर्त्स्य के अन्तिम भाग से लेकर मूर्धा के आरम्भ तक का भाग कठोर तालु कहलाता है। मूर्धा की भांति यह भी उच्चारण स्थान है, उच्चारण सहायक नहीं। तालव्य कही जाने वाली ध्वनियों का यही स्थान है।

वर्त्स्य—ऊपर के दांतों के मूल से कठोर तालु के आरम्भ तक का भाग वर्त्स्य कहलाता है। यह उच्चारण स्थान—अवयव है।

दांत—दांतों की ऊपर की पंक्ति के सामने वाले या ठीक मध्य के दांत ही ध्वनि उत्पादन में विशेष सहायता देते हैं। ये दांत नीचे के ओष्ठ एवं जिह्वा की नोक से मिलकर ध्वनियां उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

जिह्वा—मुख विवर (ध्वनियन्त्र) में जिह्वा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। जिह्वा उच्चारण अवयवों में सबसे प्रमुख है। यही कारण है कि अनेक भाषाओं में जिह्वा के पर्यायवाची शब्द भाषा के पर्याय बन गये हैं। द्रष्टव्य है—

संस्कृत—वाक्, वाणी (वागिन्द्रय)
फारसी—जवान
अंग्रेजी—टंग, स्पीच (मदर टंग)
फ्रेंच—लांग, लंगाज

लैटिन—लिंगुआ

ग्रीक—लेइखेन

जर्मन—पूप्राखे

अरबी—लिस्मान

जिह्वा को पांच भागों में बांटा जा सकता है—

1. मूल, 2. पश्य, 3. मध्य, 4. उग्र, 5. नोक

वर्गीकरण—ध्वनियों का प्रमुख वर्गीकरण स्वर और व्यंजनों के आधार पर किया जाता है। यह वर्गीकरण सामान्यतया सुविदित है और विस्तृत भेद-प्रभेद यहां अपेक्षित भी नहीं है; फिर इस निबन्ध की सीमा भी है ही।

भौतिक शाखापरक ध्वनि विज्ञान (Acoustic Phonetics)

भौतिक (Physics) में ध्वनि की इस शाखा को ध्वनि विज्ञान कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से यह अध्ययन किया जाता है कि वक्ता-द्वारा उच्चरित ध्वनियों को किन तरंगों या लहरों के द्वारा श्रोता' के कान तक लाया जाता है। वक्ता से श्रोता तक की ध्वनि प्रक्रिया इस प्रकार होती है—वक्ता के फेफड़ों से चली हवा ध्वनि-अवयवों की सहायता से आन्दोलित होकर बाहर निकलती है और बाहर की वायु में एक कम्पन्न-सा पैदा करके लहरें पैदा कर देती है। ये लहरें ही सुनने वाले के कान तक पहुंचती हैं और उसकी श्रवणेन्द्रिय में, कम्पन पैदा कर देती है। बस सुनने वाला सुन लेता है। सामान्यतः इन ध्वनि तरंगों की चाल 1100-1200 फीट प्रति सेकण्ड होती है। इस अध्ययन में विविध ध्वनि-यन्त्रों से सहायता ली जाती है। यन्त्रों के माध्यम से सुर, अनुतान, दीर्घता, अनुन्नरसिकता घोषत्व आदि का वैज्ञानिक अध्ययन होता है। इस शाखा को प्रायोगिक ध्वनि विज्ञान (Experimental Phonetics) अथवा यांत्रिक ध्वनि विज्ञान (Instrumental Phonetics) भी कहा गया है।

प्रमुख ध्वनि यन्त्र हैं—

1. **मुख मापक** (Mouth majer)—इसे एटकिन्स ने बनाया था। इसकी सहायता से किसी ध्वनि के उच्चारण के समय जीभ की ऊंचाई-निचाई या सिकुड़पन मापा जा सकता है।

2 कृत्रिम तालु (Fals Palete)—यह धातु से बना एक कृत्रिम तालु है। इसे दन्त चिकित्सक ध्वनि परीक्षण के लिए तालु के आकार का बना देते हैं। इसमें फ्रेंच चाक या पाउडर लगाकर, इसे मुख में रखकर तालु में जमा लेते हैं और परीक्षण योग्य ध्वनि को बोलते हैं। बोलते समय पाउडर पुछ जाता है। तुरन्त बाहर निकालकर फोटो लिया जाता है। इससे कृत्रिम तालु द्वारा ध्वनि के सही उच्चारण स्थान का पता लग जाता है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग 1871 में कीट्स ने किया।

3. कायमोग्राफ—कायमोग्राफ के द्वारा उच्चारण के समय नासा रन्ध्र, मुख तथा स्वर तंत्रियों के कम्पन को मापा जाता है। अघोष-सघोष ध्वनि भेद की स्पष्टता के लिए इस यन्त्र का उपयोग होता है। इससे अनुनासिकता तथा महाप्राणता भी नापी जाती है।

4. इंक राइटर—इस यन्त्र से उच्चरित ध्वनियों के सादा कागज पर चित्र बनते हैं।

5. भिगोग्राफ—स्वीडन के एक वैज्ञानिक ने इसका आविष्कार किया। ध्वनि परीक्षण के लिए कायमोग्राफ की तरह यह भी उपयोगी है।

6. आसिलोग्राफ—कायमोग्राम की श्रेणी का ही एक यन्त्र है। ध्वनि कम्पन, दीर्घता, ध्वनि लहर की परीक्षण इससे होता है। बोलने पर बनी ध्वनियों के शीशे पर चित्र दिखाते हैं। यह विद्युत चालित मशीन है।

7. लाइरिंगोस्कोप—ध्वनियों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह यन्त्र उपयोगी है। स्वर यन्त्र एवं स्वर तन्त्री की ध्वनियों के परीक्षण के लिए यह यन्त्र है।

एक्सरे और टेप रिकार्डर का उपयोग तो ध्वनि-चित्रों के लिए आम हो गया है। टेप के द्वारा उच्चारण स्थल के निर्णय में सहायता मिलती है।

8. पैटर्न प्ले बैक—इसकी सहायता से ध्वनियों को दृश्यमान बनाया जाता है। इसके बाद ध्वनियों का विश्लेषण सहज एवं सरल हो जाता है।

9. स्पीच स्ट्रेचर—विदेशी भाषा-ध्वनियों के सही ढंग से ग्रहण

करने में इस यन्त्र से सहायता मिलती है। किसी नवीन भाषा के ध्वनिग्रामों को समझने में इस यन्त्र से सहायता होती है।

10. **पिच मीटर**—ध्वनियों का सुर (Pitch) नापने के लिए इस यन्त्र का उपयोग होता है।

11. **इंटन्सिटी मीटर**—इससे ध्वनि की तीव्रता एवं गम्भीरता नापी जाती है।

12. **आटोफोनोस्कोप**—यह यन्त्र स्वर-यन्त्र के अध्ययन के लिए बनाया गया है।

13. **ब्रीदिंग फ्लास्क**—श्वास-प्रक्रिया के अध्ययन के लिए इसकी रचना हुई है।

14. **स्ट्रोबोलेरिंगोस्को**—इस यन्त्र के द्वारा स्वर-तन्त्री की गति-विधि का अध्ययन किया जाता है।

इलेक्ट्रीकल, बोकलट्रेक, फारमेंट, ग्राफिड मशीन, ओवे, आसिलेटर आदि मशीनों द्वारा और भी सूक्ष्मता से ध्वनि के विविध रूपों का अध्ययन हो सकता है।

श्रावणिक ध्वनि-विज्ञान (Auditory Phonetics)

ध्वनि विज्ञान की यह शाखा उच्चरित ध्वनियों की श्रव्यता का बहुमुखी अध्ययन करती है। जब उच्चरित ध्वनियों की तरंगें मानव के कर्ण-छिद्रों में प्रवेश करती हैं तब श्रवण-तन्त्रियों में एक कम्पन होता है। इसके बाद ही मानव मस्तिष्क संवाद (Message) या ध्वनि ग्रहण करता है। संवाद-ग्रहण की यह प्रक्रिया वहुत जटिल है। हमारा कान तीन भागों में विभाजित है—'बाह्य-कर्ण' के भीतरी सिरे की झिल्ली से श्रावणी शिरा के तन्तु आरम्भ होते हैं, ये मस्तिष्क से सम्बद्ध रहते हैं। ध्वनि की लहरें कान में पहुंचकर कम्पन्न उत्पन्न करती हैं फिर मस्तिष्क से जुड़ती हैं। इस शाखा का अध्ययन वहुत व्यय-साध्य एवं कठोर श्रम तथा योग्यता की अपेक्षा रखता है। विश्व के अति विकसित देश अमेरिका, फ्रांस, रूस और इंग्लैण्ड इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं।

स्फोटवाद या शब्द ब्रह्मवाद

स्फोट का अर्थ है खुलना और विस्तृत होना। स्फोट को ब्रह्मवादियों ने नाद का शाश्वत, सर्जक एवं अविभाज्य रूप माना है। किसी शब्द के

उच्चरित होते ही वक्ता स्वयं के या श्रोता के चित्त में यह स्फोट अर्थ के रूप में उद्भासित होता है। व्याकरण (पाणिनि व्याकरण) के प्रसिद्ध भाष्यकार पतञ्जलि ने इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग किया है। व्याकरण में उनकी स्फोटवाद की व्याख्या प्रसिद्ध है ही। भर्तृहरि ने अपने ग्रन्थ वाक्यपदीय में दार्शनिक सन्दर्भ में स्फोट का उल्लेख किया है। इस स्फोटवादी सिद्धान्त के अनुसार शब्दों के द्वारा जो अर्थ प्रकट होता है वह न तो वाणी में होता है और न ही शब्दों में, वह तो उन वर्णों और शब्दों में सन्निहित शक्ति के कारण ही अभिव्यक्त होता है। यह शक्ति ही स्फोटक कहलाती है। काव्य-शास्त्र में वक्रोक्ति, ध्वनि और व्यंजना आदि के रूप में इसी शब्द-शक्ति को स्वीकार किया गया है। ब्रह्मवादियों के अनुसार यह स्फोट-शक्ति शुद्ध माया के प्रथम विवर्तात्मक नाद में निहित है। नाद ही जगत् का मूल है और यह जगत् अर्थ रूप में शब्द से निष्पन्न है।

जैन धर्म के अनुसार तीर्थंकर केवल-ज्ञान प्राप्त कर जिस निरक्षरी और ओंकारात्मक वाणी द्वारा उपदेश देते हैं, वह वाणी ही समस्त अर्थों और विद्याओं से बहुत परे है। इस वाणी को जीव मात्र अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं। नाद ब्रह्म या केवली की दिव्य-ध्वनि के मूलाधार पर ही समस्त सृष्टि का विस्तार आधृत है। आज आवश्यकता यह है कि हम उस मूल ध्वनि से पर्याप्त भटक गये हैं और उसकी पहचान खो बैठे हैं। यह ध्वनि महामन्त्र णमोकार में है।

णमोकार मन्त्र में वर्ण और ध्वनि

णमोकार मन्त्र समस्त वर्णों का प्रतिनिधि मन्त्र है। स्वर एवं व्यंजनमय सारी मातृका शक्तियां उसमें हैं। प्रत्येक वर्ण मन्त्र में एक निश्चित स्थान पर एक निश्चित शक्ति के रूप में विद्यमान है। उस वर्ण का स्वरूप, उसका रंग, उसका तत्त्व, उसकी आकृति और उससे उत्पन्न होने वाले स्पन्दन (ऊर्जात्मक या तेजोलेश्यात्मक) को पूर्णतया समझना होगा। स्पन्दन उच्चारण और मनन ऊर्जा से सम्बद्ध है। शक्ति प्राप्ति के लिए स्पंदन को समझना है। स्पन्दन के लिए ध्वनि, संख्या और अर्थ का त्रिक जुड़ना आवश्यक है। इन तीनों के विकास में वाक्, प्राण और मन का भी क्रम है। वाक्, प्राण और मन इन तीनों

का एक ही मतलब है। वाक् अग्नि से आता है, प्राण सूर्य से आता है और मन चन्द्रमा से। हमें समझना होगा कि ये तीनों हमारे भीतर कैसे पैदा होते हैं। मन से कैसे प्रकट होते हैं और फिर कैसे बाहर के विश्व में व्याप्त होते हैं।

मन्त्रों का प्रयोजन यही है कि आप बैखरी के द्वारा शब्द के मूल को पकड़ने के लिए गहरे उतरते चले जाएं। प्रकाश के मूल स्रोत तक बढ़ते जाएं—वहां तक कि जहां से मूल करेण्ट का संचालन हुआ है—जन्म हुआ है। आप अन्त में परा वाणी तक पहुंच जाएं। जब आपका स्पन्दन (तेज, लय) पाराणसी तक पहुंच जाएगा, तब सारे जगत् को परिवर्तित करने में आप परम समर्थ हो जाएंगे, अर्थात् सारी सांसारिकता आपकी दासी हो जाएगी और आपमें एक लोकोत्तर आभामण्डल उदित होगा। मन्त्रोच्चारण में स्पन्दनों की, लय और ताल की अनुरूपता का बहुत महत्त्व है। लय और ताल ठीक होने पर ज्ञान और भाव दोनों में वृद्धि होगी। बैखरी जप का प्रभाव निरन्तर शक्ति और सामर्थ्य बढ़ाता है, परन्तु इसका पूरा निर्वाह कठिन है। स्थूल देह के उच्चारणों की अपनी सीमा होती है। मानसिक जाप की महत्ता अद्भुत है। कुण्डलिनी के जागरण में यही जाप कार्यकर होता है; पर चित्त की स्थिरता तो ऋषि, मुनि भी नहीं रख पाते। अतः बैखरी (उच्चारण प्रधान) जाप से बढ़ते-बढ़ते मानस जाप तक हमें पहुंचने का संकल्प रखना चाहिए। इस कार्य में जल्दबाजी अच्छी नहीं होती।

ध्वनि पर भाषावैज्ञानिक, भौतिक एवं श्रावणिक स्तरों पर विचार किया जा चुका है। ध्वनि के स्फोटवाद और शब्दब्रह्मवादी सिद्धान्त का भी अनुशीलन हो चुका है। ध्वनि के शक्तिरूप और आध्यात्मिकरूप पर भी संक्षेप में विचार करना वांछनीय है। इससे णमोकार मन्त्र की ध्वन्यात्मक शक्ति को समझने में सुविधा होगी।

ध्वनि इस जगत् का मूल है, ध्वनि के बिना इस जगत् को पहचाना नहीं जा सकता। जगत् के पंच तत्त्व, समस्त पदार्थ आदि ध्वनि में गर्भित हैं। प्रत्येक परमाणु में जगत् व्यापी ध्वन्यात्मक विद्युत्कण हैं, बस उनका आकार सिमट गया है। हर कण में, लहर, लम्बाई, चंचलता और विक्षोभ है। हम इस सब को अपने कानों से सुनने में

असमर्थ हैं। शब्द जब स्थूल या अपर बनता है तो श्रव्य एवं ग्राह्य हो जाता है। ध्वनि की विषमता इस संसार की अशान्ति का कारण है। जहां ध्वनि की समरसता और एकतानता है वहाँ समता और शान्ति है। संगीत उसी का एक रूप है। ध्वनि तरंग ही विकसित होकर अक्षर का रूप धारण करती है। ध्वनि ही तत्त्वों से जुड़कर एक आकृति में ढलती है। यह आकृति ही अक्षरात्मक, लिपिपरक रूप धारण कर लेती है। आकृति और ध्वनि का सम्बन्ध छाया और धूप जैसा है। आकृति वास्तव में ध्वनि की छाया है। इन आकृतियों को जो आकाश में व्याप्त हैं, महात्माओं और ऋषियों ने देखा है। आशय यह है कि ध्वनि से आकृति और आकृति से अक्षर और अक्षर से शब्द तथा शब्द से वाक्य का क्रम रहा है।

ध्वनि जब आकृति में अवतरित होती है, तब कैसी होती है? आकृति और ध्वनि में अद्भुत साम्य है। जैसा हम बोलते हैं वैसा ही लिखते हैं, और जैसा लिखते हैं, वैसा ही बोलते भी हैं। प्रत्येक पदार्थ आकृति से बंधा है। आकृति का अर्थ है एक विशेष प्रकार का, रस, गंध, वर्ण एवं स्पर्श। ये सभी विशिष्ट आकृतियां किसी देवता से सम्बद्ध हैं। मन्त्रों के माध्यम से जब हम देव-चिन्तन करते हैं तो हमारी शक्ति बढ़ती है। मनोबल बढ़ता है और देवताओं से हमारा साक्षात्कार होता है।

ध्वनि उच्चारण से आकृति का बोध होता है और आकृति से अक्षर का बोध होता है। हर अक्षर एक तत्त्व से बंधा है। चतुष्कोण से पृथ्वी तत्त्व का, षट्कोण से वायु तत्त्व का, चन्द्र लेखा से जल तत्त्व का त्रिकोण से अग्नि तत्त्व का और वर्तुलाकार कोण से आकाश तत्त्व का बोध होता है। हमारे सभी सांसारिक कार्य इन तत्त्वों से बंधे हुए हैं। इन तत्त्वों की स्थिति या अनुपात बिगड़ते ही हम अनेक प्रकार की कठिनाइयों में पड़ जाते हैं; पृथ्वी तत्त्व की कमी होते ही शरीर में रोग उत्पन्न होने लगते हैं। जल तत्त्व के बिगड़ते ही खून बिगड़ने लगता है। मन पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क के विकृत होने से विचार भी बिगड़ते हैं। अग्नि तत्त्व बिगड़ने या कम होने से शरीर में उत्ताप होने लगता है। वायु तत्त्व के अस्त-व्यस्त होने से अनेक प्रकार के दर्द पैदा होने लगते हैं। आकाश तत्त्व बिगड़ता है तो मन विक्षुब्ध होने

लगता है। दृढ़ इच्छा शक्ति टूट जाती है। इसी तत्त्व की सही साधना से मानव में अनन्त ज्ञान, वैराग्य और आनन्द का संचार होता है। हमारे शरीर में जो हमारा मूल स्थान है जिसे हम ब्रह्म योनि या कुडलिनी कहते हैं, उसी से ऊर्जा का प्रथम स्पन्दन होता है। यही स्पन्दन ध्वनि में परिणत होता है।

णमोकार मन्त्र के प्रत्येक पद का प्रारम्भ णमो से हुआ है। णमो पद बोलकर हम अपने अहंकार का विसर्जन करते हैं। 'ण' बोलते ही निर्ममत्व या नहीं का भाव जाग उठता है और 'मो' के उच्चरित होते ही पूरा अहंकार टूट जाता है। निरहंकारी व्यक्ति ही णमोकार मंत्र के पाठ का अधिकारी है। 'ण' सीधा आकाश की ओर लगता है। वह नाभि से उठता है और आकाश की ओर चलता है। 'मो' स्वाधिष्ठान में चलता है। इसके उच्चरित होते ही हमारे ओष्ठ जुड़ जाते हैं। ध्वनि निकलने की बहुत थोड़ी जगह ओठों के ठीक मध्य में बचता है। 'ओ' अर्धोष्ठ ध्वनि है। स्पष्ट है कि 'णमो' पद का उच्चारण करते ही हमारी सांसारिक-बोझिलता समाप्त होती है और हमारे मन में एक आत्मिक (ऊर्जा) (Energy) का प्रस्फुटन होने लगता है। 'ण' पिंगला से सुषुम्ना की ओर याता है ओर मो के उच्चारण के साथ ही हम सुषुम्ना में लय हो जाते हैं।

ध्वनि का दूसरा नाम है नाद। नाद दो प्रकार के होते हैं। मनुष्य के मस्तिष्क के अन्तिम शीर्ष से ऊर्जा प्रवेश करती है। वह सुषुम्ना में होती हुई ब्राह्मणी के द्वारा मूलाधार को प्रभावित करती है—आगे बढ़ती है। मूलाधार से शब्द पैदा होते हैं। यही ध्वनि जब पिंगला से जुड़ती है तो दूसरी ध्वनियां पैदा होती हैं। पिंगला से जुड़ने पर या तो ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) या अनहत नाद' के अक्षर।

स्वाधिष्ठान के नीचे जो अणकोष (दो) हैं उनके नीचे की जड़ से दो नाड़ियां जाती हैं। इनमें से दाहिनी और से निकलने वाली को पिंगला और बाई ओर से निकलने वाली को इड़ा कहते हैं। इन दोनों का सम्बन्ध मूलाधार से जुड़ता है। यह होते ही ऊर्जा (Enkrgy) आने लगती है, एक प्रकम्पन होता है, तरंग बनती है और सुषुम्ना में उतरती है और ध्वनियां उत्पन्न होने लगती हैं। कुछ ध्वनियां इड़ा से सम्बन्धित हैं और कुछ पिंगला से। ध्वनियों का सम्बन्ध तत्त्वों से हो जाता है। तत्त्वों के बाद उन का सम्बन्ध अलग-अलग चक्रों से है। कुछ ध्वनियां

मूलाधार को प्रभावित करती हैं, कुछ स्वाधिष्ठान को, कुछ मणिपुर को, कुछ अनहत को, कुछ विशुद्ध को, कुछ आज्ञा चक्र को और कुछ सहस्रार को।

अध्यात्म की पद्धति अन्तर्निरीक्षण है तो विज्ञान की पद्धति परीक्षण है। दोनों इस ब्रह्माण्ड के मूल तत्त्व की खोज में लगी हुई पद्धतियां हैं।

योग शास्त्र की दृष्टि से आन्तरिक रचना

योग की दृष्टि से शरीर के भीतरी भागों में सात चक्र हैं। इनकी सहायता से ध्वनि और आकृति को सरलता से समझा जा सकता है। ये सात चक्र इस प्रकार हैं : 1. मूलाधार चक्र, 2. स्वाधिष्ठान चक्र, 3. मणिपुर चक्र, 4. अनाहृत चक्र, 5. विशुद्ध चक्र, 6. आज्ञा चक्र, 7. सहस्रार चक्र।

1. **मूलाधार चक्र**—हमारे पृष्ठवंश का सबसे नीचे का भाग पुच्छास्थि है। उससे थोड़ा-सा ऊपर बांस की जड़ के समान एक नाड़ियों का पुंज है। इसी को मूलाधार कहते हैं। यह कुंडलिनी शक्ति का आधारभूत स्थान है। अतः इसे मूलाधार कहते हैं। इसमें पृथ्वी तत्व की प्रधानता है।

2. **स्वाधिष्ठान**—मूलाधार से लगभग चार अंगुल ऊपर मूत्राशय गर्भाशय के मध्य शुक्रकोश नाम की ग्रंथि है, वह इस चक्र का स्थान माना गया है। इसमें जल तत्त्व की प्रधानता मानी गयी है। कफ एवं शुक्र जैसे जलीय विकारों से इसका विशेष सम्बन्ध है।

3. **मणिपुर चक्र**—नाभि प्रदेश इसका स्थान माना गया है। इसमें अग्नि तत्त्व की प्रधानता है। इसे नाभि चक्र भी कहा जाता है।

4. **अनाहृत चक्र**—छाती के दोनों फफ्फुसों के मध्यवर्ती रक्ताशय नामक मांसपिण्ड के भीतर इसका स्थान माना जाता है। इसमें वायु तत्त्व की प्रधानता मानी गयी है। इसे हृदय चक्र भी कहा जाता है।

5. **विशुद्धि चक्र**—हृदय के ऊपर कण्ठ स्थान में थाइराइड ग्रन्थि के पास स्वर-यन्त्र में इसका स्थान माना जाता है। इसमें वायु तत्त्व की प्रधानता है।

6. **आज्ञा चक्र**—दोनों भौंओं के बीच में अन्दर की ओर भूरे रंग के कणों के समान मांस की दो ग्रन्थियां हैं। वहां इसका स्थान माना गया

है। ध्यान की स्थिति में यह स्थान कभी चक्र जैसा तो कभी दीपक की ज्योति जैसा प्रकाशमान दिखाई देता है। इसमें महत तत्त्व का वास माना जाता है। इसे तृतीय नेत्र भी कहते हैं।

7. **सहस्रार चक्र**—बड़े मस्तिष्क के अन्दर महाविवर नाम के महा छिद्र के ऊपर छोटी-सी पोल है। वही इसका निवास माना जाता है। इसे ब्रह्मरन्ध्र भी कहते हैं।

इस प्रकार योग शास्त्र की दृष्टि से जो विचार किया गया, उससे भी यही सिद्ध हुआ कि हमारा जीवन हमारे भीतर से ही उत्पन्न की गयी ऊर्जा से चलता है। श्वासोच्छ्वास के माध्यम से उसे अधिक गतिशील बनाते हैं। यही ऊर्जा ध्वनि और शब्दों में बदलती है। ध्वनि या शब्द उत्पन्न होने की प्रक्रिया में सबसे पहले ऊर्जा (Energy) सुषुम्ना से होती हुई मूलाधार को स्पर्श करती है, फिर वहां से एक प्रकम्पन का रूप लेती हुई आगे बढ़ती है। स्वाधिष्ठान चक्र से उसको और गति प्राप्त होती है। इसके बाद मणिपुर चक्र से अग्नि तत्व ग्रहण करती है और हृदय चक्र से टकराती है। यहां उसे वायुतत्त्व प्राप्त होता है। वायु तत्त्व के प्राप्त होते ही यह ध्वनि नाद बन जाती है। यह नाद कण्ठ स्थान (विशुद्धि चक्र) में आकर, आकाश तत्त्व को प्राप्त करता है। आकाश तत्त्व से मिलने के बाद कण्ठ और ओष्ठ के बीच के अवयवों के सहयोग से यह नाद विभिन्न वर्णों एवं शब्दों के रूप में बाहर प्रकट होता है। चूंकि यह नाद कण्ठ आदि अवयवों से टकराता है—आहत होता है इसलिए यह नाद आहत-नाद कहलाता है। जब यह नाद इन स्थानों से टकराये बिना सीधा ही ऊपर सहस्रार चक्र तब तक चला जाता है, तब यह नाद अनाहत नाद कहलाता है। जब कुंडलिनी जागृत होती है अर्थात् जब सम्पूर्ण शक्ति सभी प्रकार से जग जाती है, तब शब्द शक्ति भी पूर्ण रूप से जग जाती है। ऐसी जगी हुई शक्ति परम ईश्वर का कार्य करती है, इसलिए उसे शब्द ब्रह्म कहा गया है।

ध्वनि अपनी यात्रा में कभी इड़ा से सम्बन्धित होती है तो कभी पिंगला से तो कभी सुषुम्ना से। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना से सम्बन्धित होने के कारण वर्णों की तीन प्रकार की शक्तियां मानी गयी हैं—चन्द्र-शक्ति, सूर्य शक्ति तथा अग्नि शक्ति। इन्हीं को क्रमशः उत्पन्न करने वाली, बनाये रखने वाली और ध्वंस करने वाली (Creative power,

Preservative power, Destructive power) कहा जाता है। इन तीन शक्तियों के कारण ही जगत् का क्रम चल रहा है। योग-शास्त्र के अनुसार मनुष्य के शरीर में इड़ा नाड़ी सोमरस को या चन्द्र की ऊर्जा को वहन कर रही है। पिंगला नाड़ी सूर्य का तेज धारण कर रही है और सुषुम्ना अग्नि की ऊष्मा का संचारण कर रही है। मन्त्रों में तीनों प्रकार के वर्णों का विन्यास होता है अतः मन्त्रों में भी वे शक्तियां रहती हैं। योग शास्त्र के अनुसार व्यंजन वर्ण शिव रूप हैं, उनमें स्वयं गति नहीं है। स्वरों से जुड़कर ही वे गति प्राप्त करते हैं। अतः व्यंजनों को योनि कहा गया है और स्वरों को विस्तारक।

ध्वनि जब आहत नाद के रूप में मुंह से बाहर निकलती है तो शब्द एवं वर्ण कहलाती हैं। वर्ण का एक अर्थ प्रकाश भी होता है। ध्वनि को प्रकाश में बदला जा सकता है। विभिन्न प्रकम्पनों, आवृत्तियों (Frequencies) में प्रकम्पित होने वाला प्रकाश ही रंग है। प्रकाश, रंग, और ध्वनि मूलतः एक ही हैं। एक ही ऊर्जा के दो आयाम हैं। दोनों अविभाज्य हैं।

ध्वनि

आहत नाद — अनहत नाद (शब्द ब्रह्म)

आहत नाद
|
शब्द-वर्ण-आकृति
|
प्रकाश
|
रंग

स्पष्ट है कि प्रत्येक आहत ध्वनि आकृति में बदलती है और आकृति का अर्थ है अभिव्यक्ति। अभिव्यक्ति का अर्थ हैं रंग और प्रकाश का होना। अभिव्यक्ति आकार और रंग की ही होगी और रंग व्यक्त होगा प्रकाश के कारण। ध्वनि, वर्ण और रंग और प्रकाश का घनिष्ठ सम्बन्ध मन्त्र के अध्ययन मनन में गहरी भूमिका निभाता है।

रंग का जगत् हमारे मानसिक और आन्तरिक जगत् को बहुत प्रभावित करता है। रूस की एक अन्धी महिला हाथों से रंगों को छूकर

और उनसे उत्पन्न होने वाले भावों का अनुभव कर रंगों को पहचानती थी। लाल रंग की वस्तु को छूने पर उसे गरमाहट का अनुभव होता था। वह बता देती थी कि वह लाल रंग को छू रही है। हरे रंग का स्पर्श करने पर उसे प्रसन्नता का अनुभव होता था और वह हरे रंग को पहचान लेती थी। नीली वस्तु को छूने पर उसे ऊंचाई का अनुभव होता था और वह नीले रंग को पहचान लेती थी। मन्त्र और इससे उत्पन्न होने वाले रंग हमारे आन्तरिक जगत् के ह्रास और विकास में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं।

सामान्य वाणी और मन्त्र वाणी

समस्त वर्ण-माला का और उससे बने शब्दों और वाक्यों का सामान्यतया सभी उपयोग करते हैं। अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं में, प्रेम में, क्रोध में, सुख में, दुःख में वे ही ध्वनियां उच्चरित होती हैं। परन्तु ऐसे सभी शब्द मन्त्र नहीं कहे जा सकते। इनसे लोकोत्तर ऊर्जा और प्रभाव को भी पैदा नहीं किया जा सकता। वे शब्द या शब्द समूह ही मन्त्र हैं जिनकी शक्ति को पुनः-पुनः पवित्र साधना और मनन के द्वारा जगाया गया है। इस शक्ति-जागरण की प्रक्रिया में केवल शब्द की ही शक्ति नहीं जगती है परन्तु साधक की पवित्र और तन्मय आत्मा की शक्ति भी जगती है। अतः मन्त्रित शब्द जोकि मन्त्र बन गये हैं उनमें पुरातनप्रयोक्ताओं ने अपार शक्ति भी अपनी साधना से संचरित की है। यह हम आज जगाना चाहें तो हमें अपनी पात्रता पर भी एक दृष्टि डालनी होगी। हृदय और मन की पवित्रता, साधना की एकाग्रता और निरहंकार तथा निःस्वार्थ आचरण मन्त्र पाठ की पूर्ववर्ती शर्तें हैं।

ह हलो बीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय ईरिताः ॥ 366 ॥

ककार से हकार पर्यन्त के व्यंजन बीज रूप हैं और अकारादि स्वर शक्ति रूप हैं। मन्त्र बीजों की निष्पत्ति बीज और शक्ति के संयोग से होती है। अतः सामान्य वाणी की तुलना में मन्त्र-वाणी अत्यधिक शक्तिशालिनी एवं प्रभावोत्पादक होती है। फिर मन्त्र प्रयत्न करके नहीं रचे जाते, ये तो अनायास ही सहज वाणी के रूप में किसी परम

पवित्र ऋषि-मुख से या फिर आकाशवाणी के रूप में प्रकट होते हैं। मन्त्र तो अनादि अनन्त हैं उसे केवल समय पर लोकवाणी में अवतरित होना होता है।

णमोकार मन्त्र का ध्वन्यात्मक विश्लेषण एवं निष्कर्ष

णमो — ण—शक्ति : शान्ति सूचक, आकाश बीजों में प्रधान, ध्वंसक बीजों का जनक, शान्ति-स्फोटक।

उच्चारण स्थान : मूर्धा—अमृत स्थल।

मो— सिद्धिदायक—पारलौकि सिद्धियों का प्रदाता सन्तान प्राप्ति में सहायक।

म—ओष्ठ; ओ—अधोष्ठ

अरिहंताणं— अ— अव्यय (अविनश्वर), व्यापक आत्मा की विशुद्धता का सूचक, शुद्ध—वृद्ध ज्ञान रूप, प्राण-बीज का जनक।

कण्ठ।

तत्व : वायु, सूर्य-ग्रह, स्वर्ण वर्ण; आकार—विशाल उक्त अविनश्वरता, गुणात्मकता, व्यापकता आदि तत्व मन्वित अरिहन्त पदवर्ती अकार में हैं। विशद्ध पाठ अथवा जाप से उक्त शक्तियों एवं गुणों की प्राप्ति होती है।

रि— शक्ति केन्द्र, कार्य साधक, समस्त प्रधान बीजों का जनक, शक्ति का प्रस्फोटक।

मूर्धा अमृत केन्द्र।

अग्नि।

इ—शक्ति : गत्यर्थक, लक्ष्मी प्राप्ति।

उच्चारण स्थान : तालु।

तत्व : अग्नि।

ह—	शान्ति, पुष्टि दायक, मंगलीक कार्यों में सहायक, उत्पादक, लक्ष्मी उत्पत्ति में सहायक। कण्ठ। आकाश तत्वयुक्त।
ता—	आकर्ष बीज, सर्वार्थक सिद्धिदायक शक्ति का आविष्कारक, सारस्वत बीज युक्त। दन्त। वायु।
णं—	पीतवर्ण, सुखदायक, परम कुण्डली युक्त शक्ति का स्फोटक, ध्वंसक बीजों का जनक, शान्ति सूचक। मूर्धा। आकाश।

णमो अरिहंताणं पद क जो शक्ति, तत्त्व और ध्वनि तरंग के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत किया, गया है उसमें यह सिद्ध होता है कि केवल 'णमो' पद में आकाश बीजों की प्रधानता, शान्ति प्रदायी शक्ति, सिद्धि शक्ति, लौकिक पारलौकिक सिद्धियों की शक्ति तथा सन्तान-प्राप्ति में सहायक होने का अद्भुत गुण है। ध्वनि तरंग तो उक्त गुणों को मूर्धा से उच्चरित होने के कारण अमृतमय कर देती है। ण कार तो अमृतमय ध्वनितरंग युक्त है ही, साथ ही 'मो' में ओष्ठ-ध्वनि तरंग के कारण 'णकर' ध्वनि का अमृत प्रभाव स्थाई हो जाता है। णमो ध्वनि में शब्द ब्रह्म की पूर्ण यथार्थता विद्यमान है। शब्द ब्रह्म, अमृत-वर्षी होता है। बस पाठक या जपकर्ता ने स्वच्छ एवं शुद्ध कण्ठ से पूरी मानसिक पवित्रता के साथ 'णमो' का उच्चारण किया हो, यह ध्यातव्य है। पूर्णतया सरल निर्विकार एवं निरहंकारी व्यक्ति ही 'णमो' पद के पाठ का सही पात्र है। 'णमो' के उच्चारण में 'मो' के उच्चारण के साथ ही मूर्धावर्ती अमृत शक्ति से सम्पूर्ण शरीर में एक तृप्ति, तन्मयता एवं निर्विकारता का संचार होता है। भक्त णमो पद के पाठ के साथ

ही अरिहंताणं पद के पाठ की पूर्ण पात्रता प्राप्त करता है। अ + रि + हं + ता + णं—पद के सभी मातृका वर्ण क्रमशः अविनश्वर—व्यापक—ज्ञानरूप, शक्तिमय—गत्यर्थक, पुष्टिदायक, लक्ष्मी जनक, सिद्धिदायक एवं ध्वंसक बीजों के स्फोटक हैं। वायु, आकाश और अग्नि तत्त्वों की गरिमा से युक्त हैं। ध्वनि तरंग के स्तर पर 'अ' ध्वनि कण्ठ से उद्भूत होकर 'रि' से मूर्धावर्ती अमृततत्त्व प्राप्त कर 'ह' के द्वारा पुनः कण्ठस्थ होता है। और 'ता' द्वारा वायुतत्त्व और दन्त स्थल को घेरती हुई अन्ततः 'णं' के उच्चारण के साथ पुनः मूर्धा—अमृत में प्रवेश कर जाती है। स्पष्ट है कि 'णमो अरिहंताणं' पर ध्वनि के स्तर पर भक्त या पाठक में शक्ति, सिद्धि एवं अमृत तत्त्व (आत्मा की अमरता) का अनुपम संचार करता है। भक्त अपार श्वेत-आभा मण्डल से परिव्याप्त हो जाता है। उसे अपने इर्द-गिर्द सर्वत्र एक निरभ्र, निर्मल श्वेताभा के दर्शन होने लगते हैं। वह अपनी आत्मा में अरिहन्त का साक्षात्कार करने की स्थिति में आ जाता है। उसका भीतर-बाहर कोई शत्रु नहीं रह जाता है। वह अजात शत्रु हो जाता है। यह ध्वनि तरंग का स्फोटात्मक प्रभाव ही है।

णमो सिद्धाणं :

णमो पद की ध्वनिपरक-व्याख्या की जा चुकी है।

सि— णमो अरिहंताणं पद के उच्चारण के पश्चात् भक्त या पाठक में पर्याप्त सामर्थ्य का संचार हो जाता है। जब वह सिद्धाणं की 'सि' वर्ण-मातृका उच्चारण करता है तो उसमें इच्छापूर्ति, पौष्टिकता और आवरण नाशक शक्तियों का संचार होता है। यह दन्त्य ध्वनि है। समस्त चक्रों को पार करती हुई यह ध्वनि जब मुख विवर से प्रकट होगी आहत नाद का रूप धारण करती है। तब अद्भुत रक्त आभा मण्डल से भक्त घिर जाता है।

द्धा— 'द्धं' यह संयुक्त मातृका भी दन्त्य ध्वनि तरंगमय है। अतः उक्त आहत ध्वनि तरंग अतिशय शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न करती है। जल तत्त्व तथा भूमि तत्त्वों की प्रधानता के कारण स्थिरता में वृद्धि होगी। चतुर्वर्ग फल प्राप्ति का योग होगा।

णं— णं ध्वनि तो पूर्णतः स्पष्ट है कि वह मूर्धा स्थानीय और अमृत-मयी तथा अमृतवर्षिणी है। अतः णमो सिद्धाणं के द्वारा कर्मनाश का योग बनता है। इस पद में तीन दन्त्य ध्वनियों की युगपत् तरंग निर्मित से जो आहत नाद बनता है वह लोकोत्तर होता है। ज्यों ही वह नाद (सिद्धा) 'णं' ध्वनि का स्पर्श करता है इसमें शब्दब्रह्म की अमृतमयता भर जाती है। भक्त या पाठक केवल 'णमो सिद्धाणं' पद का भी जप या सस्वर पाठ कर सकते हैं।

णमो अरिहंताणं की ध्वनि तरंग से हम में आध्यात्मिक निर्मलता आती है, श्वेताभा से हम भर उठते हैं, कर्मशत्रु वर्ग पर विजयी हो जाते हैं, अमृत तत्त्व हमारे भीतर प्रवेश करने लगता है। णमो सिद्धाणं उक्त प्रक्रिया में सक्रियता तत्त्व को योजित करता है और शक्तिवर्धन का काम भी करता है।

पूर्व पद की सिद्धि या उपलब्धि अगले पद के कार्य में योगात्मक होगी ही। णमोसिद्धाणं पद पूर्णता को ध्वनित करता है। मानव हृदय और मस्तिष्क स्पष्टता और विश्लेषण अपनी समता में जानना समझना चाहता है अतः वह अपने सहजीवी आचार्यों, उपाध्यायों और साधुओं की महानता को नमन करता है और अपनी आकांक्षा की पूर्ति करता है। स्पष्ट है कि परवर्ती तीन परमेष्टी पूर्ववर्ती दो परमेष्ठियों की शक्ति और सामर्थ्य के पोषक एवं अनुशास्ता हैं। संसारी जीव इनके द्वारा ही प्रकट रूप में सन्मार्ग ग्रहण करते हैं।

णमो आइरियाणं :

पंच नमस्कार मन्त्र में आचार्य परमेष्ठी का मध्यवर्ती स्थान है। आचार्य परमेष्ठी मुनि संघ के प्रमुख शास्ता एवं चरित्र—आचारण के प्रशास्ता होते हैं। ये शास्त्रों के ज्ञाता और स्वयं परम संयमी एवं व्रती होते हैं।

आ— यह वर्ण मातृका पूर्ववर्ती, कीर्तिस्फोटिका एवं साठ योजन पर्यन्त आकारवती है। वायु तत्त्व के समान आस्फालित है, सूर्य ग्रहवती है। ध्वनि तरंग के स्तर पर कंठस्था है। कंठ ध्वनि में उक्त सभी गुण भास्वरित होते हैं।

इ— कुंडली सदृश आकार युक्त, पीतवर्णवती, सदा शक्तिमयी, अग्नि तत्त्व युक्त एवं सूर्यग्रह धारिणी 'इ' वर्ण मातृका है। ध्वनि तरंग के स्तर पर तालुस्थानवती है।

रि— 'रि' मातृका का विश्लेषण 'अरिहंताणं' के साथ हो चुका है। इसी प्रकार 'आ' एवं 'णं' मातृकाओं का भी विवेचन हो चुका है। यहां ध्यातव्य यह है कि 'रि' एवं 'णं' इन मूर्धा-स्थानीय ध्वनियों के कारण अमृत तत्त्व की प्रधानता हो जाती है। अतः 'आ' तथा 'इ' कण्ठ्य एवं तालव्य ध्वनियां अत्यधिक शक्तिशालिनी एवं गुणधारिणी हो जाती हैं। आइरियाणं पद की आहत ध्वनि स्तर पर एवं अनाहत स्तर पर प्रखर महत्ता है। अरिहन्त एवं सिद्ध परमेष्ठी तो देव परमेष्ठी हैं। आचार्य परमेष्ठी गुण और भविष्यत् की संभावना से देव हैं, परन्तु व्यवहारतः वे अभी संसारी ही हैं। आचार्य परमेष्ठी की प्रमुखता संसार में रहते हुए व्यवहारिक दृष्टि के साथ सभी को मोक्षमार्ग में प्रवृत्त करने की रहती है। व्यवहार और प्रयोगमय जीवन पर आचार्य परमेष्ठी का बल रहता है। ध्वनि के आधार पर भी यही तथ्य प्रकट होता है।

णमो उवज्झायाणं :

उ— उच्चाटन बीजों का मूल, अद्‌भुत शक्तिशाली, पीत चम्पकवर्णी, चतुर्वर्ग-फलप्रद, भूमि तत्त्व युक्त, सूर्यग्रही। मातृका शक्ति के साथ-साथ उच्चारण के समय श्वास नलिका द्वारा जोर से धक्का देने पर मारक शक्ति का स्फोटक। उच्चारण ध्वनि तरंग के आधार पर ओष्ठ ध्वनि युक्त।

व— पीतवर्णी, कुंडली आकार वाला, रोगहर्ता, तलतत्त्व युक्त, बाधा नाशक, सिद्धिदायक, अनुस्वाद के सहयोग से लौकिक कामनाओं का पूरक। ध्वनि के स्तर पर तालव्य।

ज्झा— ध्वनि की दृष्टि से दोनों वर्ण चवर्गी हैं अतः तालव्य हैं। लाल-वर्णी हैं, जल तत्त्व युक्त हैं, श्री बीजों के जनक हैं। नूतन कार्यों में सिद्धि, आधि-व्याधि नाशक।

या— श्यामवर्णी, चतुष्कोणात्मक आकृतियुक्त, वायुतत्ववान् तालव्य ध्वनि-तरंगयुक्त मित्र प्राप्ति में सहायक—अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति में सहयोगी हरित वर्ण।

णं— मातृका की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है।

इस पद की अधिकांश मातृकाएं तालव्य हैं। और अन्ततः मूर्धा-स्थानीय 'णं' ध्वनि तरंग से जुड़कर उसमें लीन होती हैं। उपाध्याय परमेष्ठी का वर्ण हरा है जो जीवन में ज्ञानात्मक हरीतिया और अभीष्ठ वस्तुओं को उपलब्ध करता है। मूर्धा-अमृताशयी ध्वनि तरंग को उत्पन्न करके समग्र जीवन का अमृत-कल्प बनाती है। भूमि, जल और वायु तत्त्व ही हरीतिया के मूल आधार हैं। इन तत्त्वों की इस पद में प्रमुखता है। ध्वन्यात्मक स्तर पर यह पद अत्यन्त शक्ति-शाली है। मस्तिष्क की सक्रियता, शुद्धता और प्रखरता में यह पद अनु-पम है।

णमो लोए सव्व साहूणं :

इस पद का अर्थ है लोक में विद्यमान समस्त साधुओं को नमस्कार हो। यह परम अपरिग्रही और संसार त्याग के लिए कृतसंकल्प साधुओं का अर्थात् उनमें विद्यमान गुणों का नमन है। साधु पद से ही मुक्ति का द्वार खुलता है अतः इस गुणात्मक पद की वन्दना की गयी है। 'णमो' पद की व्याख्या आरम्भ में ही हो चुकी है।

लो— ल्+ओ=लो। वर्ण मातृका शक्ति के आधार पर 'ल्' श्री

बीजों में प्रमुख, कल्याणकारी और लक्ष्मी प्राप्ति में सहायक है। पीतवर्णी, द्वि मुंडली युक्त, मीनराशि, सोम ग्रह युक्त तथा भूतत्व युक्त है। इसकी ध्वनि दन्त्य है और ओ के सहयोग से वह दन्त्योष्ठ हो जाती है। ओ मातृका उदात्तता का सूचक है, निर्जरा हेतुक, रमणीय पदार्थों की संयोजिका सिंह राशि युक्त, भूमि तत्त्ववती तथा परम कुंडली आकार की मातृका है। 'लो' मातृका दन्त्योष्ठ ध्वनि तरंगी होने के कारण कर्मठता और संघर्षशीलता को ध्वनित करती है। अन्ततः विजयपर्व की सूचिका है। साधु परमेष्ठी भी कर्ममय कर्मों से संघर्ष का जीवन व्यतीत करते हैं।

ए— श्वेत वर्ण, परम कुंडली (आकार), अरिष्ट निवारक, वायुतत्त्व-युक्त, गतिसूचक, निश्चलता द्योतक तालव्य ध्वनि युक्त।

स— शान्तिदाता, शक्ति कार्य साधक, कर्मक्षयकारी, कर्मण्यता का प्रेरक, श्वेतवर्णी, कुंडलीत्रय आकारवान, जलतत्त्वयुक्त दन्तस्थानीय।

व्व— कुंडलीवत आकार, रोगहर्ता, जल तत्त्वयुक्त, सिद्धिदायक, सारस्वत बीजयुक्त, भूत-पिशाच-शाकिनी आदि की बाधा का नाशक, स्तम्भक, तालव्य ध्वनियुक्त। संयुक्त ध्वनि मातृका होने के कारण द्विगुण शक्ति।

सा— 'स' ध्वनि का विवेचन 'णमोसिद्धाणं' के प्रसंग में हो चुका है। देखिए।

हू— 'ह' ध्वनि का विवेचन 'णमो अरिहंताणं' के प्रसंग में हो चुका है। देखिए।

णं— 'णं' ध्वनि पूर्व विवेचित है ही।

महामन्त्र णमोकार अनादि-अनन्त महामन्त्र है। इसकी गरिमा, महत्ता और मंगलमयता सहस्रों वर्षों से अनेक भक्तों के प्रचुर अनुभव द्वारा प्रमाणित होती आ रही है। इसकी महत्ता को सिद्ध करना कुछ ऐसा ही है जैसे कि अग्नि की उष्णता सिद्ध करना अथवा वायु की

गतिमयता सिद्ध करना। फिर भी आधुनिक सभ्यता की मांग है कि किसी भी बात को तर्क सिद्ध करके ही स्वीकार किया जाए। अतः इस चर्चा में महामन्त्र की अनेक शक्तियों के साथ उसकी ध्वन्यात्मक महत्ता की एक संक्षिप्त किन्तु पूर्ण झलक दी गयी है।

1. ध्वनियों की सम्पूर्ण ऊर्जा इस महामन्त्र में निहित है। वर्णों का संयोजन और गठन का क्रम ध्वनि तरंगों के स्फोटक सन्दर्भ में है।

2. ध्वनि विज्ञान एक सम्पूर्णता और संश्लिष्टता का विज्ञान है। यह सम्पूर्णता और संश्लिष्टता इस महामन्त्र में अन्तःस्यूत है।

3. इस महामन्त्र का ध्वन्यात्मक पूर्ण लाभ लेने के लिए प्राकृत भाषा का अपेक्षित अभ्यास कर लेना आवश्यक है। शुद्ध उच्चारण से ही अपेक्षित आभा मण्डल निर्मित होता है और शुक्ल-ऊर्जा संचारित होती है।

4. णमोकार मन्त्र सदा एक महा समुद्र है। मानव को इसमें गहरे-गहरे उतरने पर नित्य नये अर्थ एवं ध्वनि गुण की नवीनता प्राप्त होगी।

5. ध्वनि, रंग, और प्रकाश का घनिष्ठ नाता है। इन तीनों को एक साथ समझना होगा। पंच परमेष्ठियों के अपने-अपने प्रतीकात्मक रंग हैं। रंग चिकित्सा (कलर थेरेपी) का महत्त्व आज सुविदित है। रंग के प्रयोग, वस्त्रों पर, मकान पर और प्रकाश पर करने से रोग-निवारण की प्रक्रिया है ही।

6. ध्वनि और शब्द ब्रह्मात्मक ध्वनि में अन्तर है। वर्णमातृकाओं के अन्दर गर्भित तत्त्वों के कारण, वर्ण संयोजन के कारण और भक्त की निष्ठा और एकाग्रता के कारण अद्भुत लौकिक और पारलौकिक प्रभाव उत्पन्न होता है।

7. तर्क की अपेक्षा यह मन्त्र अनुभूति के स्तर पर स्वानुभव का विषय अधिक है। मन्त्र तर्कातीत होते हैं।

8. भाषा वैज्ञानिक स्तर पर, भौतिक स्तर पर, श्रावणिक स्तर पर ध्वनि का अध्ययन करने के साथ-साथ यौगिक स्तर एवं आध्यात्मिक स्तर पर भी ध्वनि को महामन्त्र के सन्दर्भ में संक्षेप में आस्फालित

किया गया है। शब्दशक्ति और न्याय शास्त्र का भी सन्दर्भ देखा गया है। यह आलोडन यहां सांकेतिक ही रहा है। ध्वनि के स्तर पर महामन्त्र की ऊर्जा को ठीक ढंग से समझने के लिए एक पूरी पुस्तक भी कम होगी। सामान्य जीवन में ही शब्द की ध्वनि जब परिचित और व्यवहृत अर्थ से हटकर केवल नादात्मक एवं लयात्मक रूप धारण कर संगीत में ढलती है अथवा कीर्तन में ढलती है तब एक अद्भुत लोकोत्तर तन्मयता समस्त जड़ चेतन में व्याप्त हो जाती है। यह क्या है? यह केवल ध्वनि शब्द ब्रह्म का सहज रूप है। यह कार्य ध्वनि—लयात्मक संगीत से ही सम्भव है। बहु ध्वनि की एकतानता से समस्त जड़ चेतन में एकतालता छा जाती है। अपने भौतिक शाब्दिक स्तर से उठता हुआ। संगीत-लयात्मक नाद जब आहत से अनाहत नाद की स्थिति में पहुंचता है तब सहज ही आत्मा की निर्विकार सहज अवस्था से साक्षात्कार होता है।

नमस्कार महामन्त्र का अथवा सामान्य मन्त्र का मुख्य प्रयोजन तो मानव को उसके मूल शुद्ध आत्म-स्वरूप की गरिमा की पहचान कराना है, परन्तु कुछ अन्य मन्त्र चमत्कार और सांसारिकता में ही उलझ कर रह जाते हैं। णमोकार मन्त्र महामन्त्र इसीलिए हैं। क्योंकि वह सबका सामान्यत्व अपने साथ रहकर भी इससे बहुत ऊपर आत्मा के ज्योतिष्क लोक से अपना असली नाता रखता है। गुरु मन्त्र कौन देता है जो दिव्य कर्ण से युक्त होता है; गुरु हमें देखते ही हमारे आभामण्डल की गति-विधि को पहचान लेते हैं। वे समझ लेते हैं कि हमें किस शब्द मन्त्र की आवश्यकता है। वही शब्द गुरु देते हैं। वह शब्द हमारे शक्ति व्यूह को जगाने वाला होता है। उस शब्द के तन्मयता पूर्वक लगातार किये गये जप से हमारे अन्दर एक ध्वनिमूलक रासायनिक परिवर्तन होता है। मन्त्र ही सूक्ष्म एवं अतीन्द्रिय ध्वनियां पैदा कर सकता है। सामान्य शब्द या ध्वनि से वह काम नहीं हो सकता।

वैज्ञानिकों ने प्रयोग करके पता लगाया कि श्रव्य ध्वनि वह शक्ति नहीं रखती है जो शक्ति मानसिक ध्वनि में होती है। यदि श्रव्य ध्वनि के उच्चारण से एक प्याला पानी भी गरम करना हो तो लगातार डेढ़ सौ वर्ष लगेंगे। तब जरूरत वाला व्यक्ति भी न रहेगा। इतनी ऊर्जा उच्चरित ध्वनि से डेढ़ सौ वर्षों में पैदा होती है। लेकिन वही शब्द या

ध्वनि जब मानसिक रूप से उच्चरित होती है तो एक सर्वव्यापि स्फोट पैदा होता है; कर्णातीत तरंगें पैदा होती हैं। इन कर्णातीत तरंगों में सबसे अधिक शक्ति है। ध्वनि जब भावना से मिलकर बनती है तो उसमें एक मैग्नेटिक करेण्ट (चुम्बक लहर) उत्पन्न होता है। युद्ध के मैदान में एक कायर भी अपने सेनापति के वीर रस भरे शब्दों को सुन-कर प्राणार्पण के लिए तैयार हो जाता है; प्रेमी के शब्द प्रेमिका को प्रभावित करते हैं। तो यह स्थूल बेखरी वाणी जब इतना प्रभाव डाल सकती है तो परावाणी तो सहज ही लोकोत्तर प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। स्थूलता से सूक्ष्मता का महत्त्व अधिक—बहुत अधिक इस-लिए है, क्योंकि सूक्ष्मता में शक्ति का सार, सघनता और प्रभावकता एकीकृत एवं केन्द्रित होती है।

णमोकार मन्त्र और रंग विज्ञान

आज शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए ध्वनि विज्ञान, रत्न विज्ञान (Gem Therapy) सूर्य-किरण चिकित्सा और रंगीन रश्मि चिकित्सा या विज्ञान का वर्चस्व विज्ञान द्वारा भी प्रमाणित किया जा चुका है। भारतीय सन्तों और ऋषियों-योगियों ने तो अपने सहस्रों के अनुभव से इन विज्ञानों और चिकित्साओं को सहस्रों वर्ष पूर्व ही प्रतिपादित कर दिया था। रंग विज्ञान या रंग चिकित्सा भी इन वैज्ञानिक चिकित्साओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है, बल्कि यह कहना अधिक समीचीन होगा कि उक्त अन्य चिकित्साओं का मूलाधार रंग चिकित्सा है। बाइबिल और कूर्म पुराण के वक्तव्यों से भी यह समर्थित है। इन्द्रधनुष के सात रंग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

"The rain bow is transitory in nature, but when it is seen, it is always the same, composed of the seven most brillient colours of the spectrum consisting of the colours—Violet, Indigo, Blue, Green, Yellow, Orange and Red.

In the Holy Bible it is said (Genesis, IX, 13) about the Rain bow—"I do set my bow in the cloud and it shall be for a token of a covenant between Me and the Earth."

In the same chapter it is father said (IX, 16), "And the bow shall be in the cloud; and I will look upon it that I may remember the everlasting covenant between God and every living creature of all flesh that is upon the earth."

अर्थात् इन्द्र धनुष प्रकृत्या परिवर्तनशील है, परन्तु जब भी वह दिखता है, एक-सा ही दिखता है। सर्वाधिक चमकीले सात रंगों से इन्द्रधनुष निर्मित है। ये सात रंग हैं—बैंगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल। पवित्र बाइबिल में 'इन्द्रधनुष' के विषय में

कहा गया है, "मैं बादलों में अपना धनुष रखता हूँ और यह मेरे और पृथ्वी के मध्य एक प्रतिज्ञापत्र के रूप में रहेगा।" इसी अध्याय में आगे कहा गया है, "यह धनुष बादलों में रहेगा और मैं सदा उस पर दृष्टि रखूंगा कि ईश्वर और पृथ्वी के सभी जीवधारी जगत् के बीच यह प्रतिज्ञापत्र अमर रहे और मेरी स्मृति में रहे। इन सातों रंगों को सृष्टि का जनक, रक्षक एवं ध्वंसक बताया गया है। सात रंग, सप्त ग्रह, सात शरीर चक्र, सप्तस्वर, सात रत्न, पांच तत्त्व, पांच इन्द्रियों और सप्त नक्षत्रों का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

महामन्त्र णमोकार की महिमा और गुणवत्ता का अनुसंधान रंग विज्ञान के धरातल पर भी किया जा सकता है। और इससे हमें एक सर्वथा नई समझ और नई दृष्टि प्राप्त हो सकती है। भौतिक शक्तियों पर नियन्त्रण करके उन्हें आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में एक साधन के रूप में स्वीकार करना ही होगा। एक आत्म-निर्भरता की मंजिल आ जाने पर साधन स्वयं ही छूटते चले जाते हैं।

प्रतीकात्मकता :

णमोकार मन्त्र में प्रतीकात्मक पद्धति अपनायी गयी है। प्रतीक के के बिना कोई मन्त्र महामन्त्र नहीं कहा जा सकता। इस मन्त्र में जो अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी रखे गये हैं, वे सभी प्रतीक हैं। इसमें जो रंग रखे गये हैं, वे भी प्रतीक हैं। कलर और लाइट में बहुत फर्क नहीं है। एक ही चीज है। कलर में लाइट और साउण्ड सो रहे हैं। कलर स्त्री वाचक और लाइट पुरुष वाचक है।

ध्वनि दो रूपों में आकार ग्रहण करती है। ये दो रूप हैं वर्ण और अंक। वर्ण और अंक का सम्बन्ध ग्रहों, नक्षत्रों, तत्त्वों और रंगों से होता है। वास्तव में वर्ण का अर्थ रंग ही है। ध्वनि को आकृति में बदलने के लिए प्रकाश और रंग में बदलना ही पड़ेगा। वर्णों के रंगों का वर्णन पहले सांकेतिक रूप में किया जा चुका है। अंकों के रंग प्रकार हैं—

एक का रंग—लाल (अग्नि तत्त्व)

दो का रंग—केसरिया

तीन का रंग—पीला

चार का रंग—हरा
पांच का रंग—नीला
छः का रंग—बैंगनी
सात का रंग—जामुनी
आठ का रंग—दूधिया (सफेद)
नौ का रंग—दूधिया (चार्मिन)

आशय यह है कि अक्षरों या वर्णों का ही रंग नहीं होता, अंकों का भी रंग होता है। रंग से अक्षरों और अंकों की शक्ति और प्रकृति का बोध होता है।

बिन्दु का स्फोट ही ध्वनि है और ध्वनि में जब स्फोट आता है तो शब्द बनता है। ध्वनि स्फोट की अवस्था में जब किसी अंग से बिना टकराहट के चली जाती है और सीधी सहस्रार चक्र से जुड़ती है और एक दिव्य प्रकाश का रूप धारण करती है तो उसे अनहत नाद कहा जाता है। जब वह ध्वनि शरीर के अंगों से टकराकर गुजरती है तो वह वर्णात्मक, अक्षरात्मक एवं शब्दात्मक हो जाती है।

ध्वनि का वर्ण, अक्षर एवं शब्द में ढलने/बदलने का अर्थ है उसमें प्रकाश का आना और प्रकाश रंग के द्वारा ही प्रकट होता है। प्रकाश बिना रंग के अभिव्यक्त नहीं हो सकता। साधक अपने संकल्प बल से ही मन्त्र में उतरता है। वास्तव में मन्त्र भी तो किसी के संकल्प की एक शब्दात्मक आकृति है। संकल्पके अनुसार विचारों और भावों में परिवर्तन आता है। यह परिवर्तन—आकृति परिवर्तन—ही मन्त्र का काम है। आपने अनुभव किया होगा लाल रंग के और नीले रंग के कमरे में कितना अन्तर है। लाल रंग मन को उत्तेजित करता है, भड़काता है, जबकि नीला रंग मन को शान्त करता है, इतना ही नहीं लाल रंग के कारण वही कमरा छोटा दिखने लगता है जबकि नीले रंग के कारण वहीं कमरा बड़ा दिखता है। रंग-परिवर्तन भाव परिवर्तन का प्रमुख कारण है।

ध्वनि तरंगों का एक स्थान से दूसरे दूरवर्ती स्थान में सम्प्रेषण और श्रवण त्वरित श्रवण आज विज्ञान के कारण आम आदमी के सामान्य

जीवन के अनुभव की बात हो गयी है। किन्तु आकृति और दृश्यों का अवतरण एवं सम्प्रेषण भी कैमरा, एक्सरे और टेलीविजन जैसे यन्त्रों से कितना सुगम हो गया है, यह तथ्य भी सभी को ज्ञात है। कम्प्यूटर से तो अब आदमी की मानसिकता का भी सही पता लगने लगा है।

यदि सूर्य के प्रकाश को त्रिपार्श्व (तिकोना शीशा, Prism) से सम्प्रेषित किया जाए तो उसका (प्रकाश) विश्लेषण हो जाता है। ऐसी प्रक्रिया में सूर्य बिल्कुल नये रूप में प्रकट होता है। इसमें हमें सात रंग दिखाई देते हैं। किसी वस्तु पर यह प्रकाश विकीर्ण करने पर ये सातों रंग स्पष्ट हो जाते हैं। इस विश्लेषित प्रकाश को हम स्पेक्ट्म कहते हैं। इस विश्लेषण का प्रकारान्तर यह हुआ कि यदि उक्त सात रंगों को (बैंगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला नारंगी, लाल) मिश्रित कर दें तो सफेद रंग बनेगा।

रंगों अथवा रंगीन किरणों के गुण :

लाल, नीला और पीला ये तीन प्रधान रंग हैं। अन्य रंग इनके भिन्न-भिन्न आनुपातिक मिश्रणों से बनते हैं। इन रंगों का सुख, समृद्धि और चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत महत्त्व है। लाल प्रकाश या रंग धमनी के रक्त (लाल) को उत्तेजित करता है। कुछ नारंगी और पीला प्रकाश नाड़ियों को उत्तेजित करता है। इन नाड़ियों में यही रंग होता है। नीला रंग धमनी के रक्त को शान्त करता है, किन्तु यही शिराओं के रक्त को तेज भी करता है। कभी-कभी विपरीत रंगों के प्रयोग से असन्तुलन दूर होता है। सिर में रक्त और नाड़ियों की प्रधानता है, सन्तुलन के लिए नीले और बैंगनी रंग से लाभ होता है। हाथ-पैरों के दर्द आदि के लिए लाल रंग उत्तम हैं। मासिक धर्म की अधिकता में नीला, पीलिया में पीला रंग उपयोगी है।

लाल रंग : लाल रंग में गर्मी होती है। नाड़ियों को उत्तेजित करना इसकी विशिष्ट प्रवृत्ति है। चोट या मोच में इसका प्रयोग होता है। यौन दौर्बल्य (Sexual weakness) में इसका अद्‌भुत प्रभाव होता है।

नारंगी : यह रंग भी उष्णता देता है। दर्द को दूर करने में यह सफल है।

पीला : हृदय के लिए लिए शुभ है; यह मानसिक दुर्बलता दूर करने के लिए टानिक है। मानसिक उत्तेजना को भी यह दूर करता है। सुषुम्ना पर प्रयोग करना चाहिए।

हरा : नेत्र-दृष्टि वर्धक है। शान्त और शमनकारी है। फोड़ों या जख्मों को तुरन्त भरता है। व पेचिश में लाभकारी है।

नीला : दर्द शान्त करता है। खुजली शान्त करता है। मानसिक रुग्णता में भी कार्यकर है।

आसमानी रंग : पाचन क्रिया में तीव्रता के निमित्त इसका उपयोग होता है। तपेदिक—शमन है।

बैंगनी रंग : दमा, सूचन, अनिद्रा में उपयोगी है।

रश्मि विज्ञान एवं रंग विज्ञान से सम्बन्धित कतिपय वैज्ञानिक मशीनें या यन्त्र ये हैं। इनके द्वारा विधिवत् किरणों की परीक्षा की जा सकती है।

1. **रश्मिचक्र** : (Chromo disk)—यह कुप्पी के आकार का तांबे का यन्त्र होता है। इसके भीतरी भाग में निकिल या अल्युमिनियम की की एक परत होती है। इससे प्रकाश सरलता से प्रतिबिम्बित होता है। शरीर में गरमी भरने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। सूर्य प्रकाश के स्थान पर इसका उपयोग होता है। किसी विशेष रंग के प्रकाश के लिए उस रंग का शीशा इसकी भीतरी सतह पर रख दिया जाता है।

2. **रश्मि दर्पण** : (Chromo lense)—यह यन्त्र दुहरे वर्तुलाकार शीशे से बनता है। इसमें किरणें पानी में प्रतिबिम्बित की जाती हैं और फिर वे तिरछी होकर शरीर को छूती हैं। जल सम्पर्क के कारण ये किरणें अधिक शुद्ध एवं शक्तिमती बन जाती हैं।

3. **ताप प्रकाश यन्त्र** (Thermolume)—इस यन्त्र के भीतर लेटकर रोगी आसानी से प्रकाश-स्नान कर सकता है। रोगी के अंग विशेष पर ही प्रकाश विकीर्ण किया जाता है। इससे शरीर के रुग्ण स्थलीय कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

4. **विद्युत ताप प्रकाश यन्त्र**—बदली के दिनों में और रात के समय प्रकाश स्नान के लिए यह यन्त्र उपयोगी है। सफेद रंग के अर्क लैम्प के कारण यह यन्त्र सूर्य जैसा ही प्रकाश देता है। रंग आदि की आवश्यकता के अनुसार बल्ब बदल लिये जाते हैं।

5. **पारद वाष्प लेम्प** : (Quartz mercury vapour Lamp)—स्पेक्ट्रम के विभिन्न रंगों में इन्फ्रारेड और अल्ट्रा वायलेट किरणों का अपना विशेष महत्त्व है। इन्हें उक्त यन्त्र की सहायता से ही प्राप्त किया जा सकता है। सूजन और रक्ताधिक्य के रोगों में ये किरणें महौषध का काम करती हैं।

आयुर्वेद और रंग

आयुर्वेद का आधार वात, पित्त और कफ हैं। इनके आधार पर रंगों को इस प्रकार रखा गया है—1. कफ का आसमानी रंग, 2. वात का पीला रंग 3. पित्त का लाल रंग, किस रंग के अभाव से क्या होता है, यह जानने के लिए ध्यातव्य यह है कि प्रमुख और सर्वथा मौलिक दो रंग ही हैं—लाल और आसमानी (नीला)। रंगों की अधिकता भी हानिकारक है। सुस्ती, अधिक निद्रा, भूख की कमी, कब्ज पतले दस्त शरीर में लाल रंग की कमी के कारण आते हैं। रक्त का रंग लाल है ही। आसमानी के अभाव में क्रोध, झुंझलाहट, सुस्ती, अधिक निद्रा और प्रमाद की स्थिति बनती है।

रत्न विज्ञान (रत्न-चिकित्सा) (Gem therapy)

रंग विज्ञान अथवा रंग चिकित्सा में इन्द्र धनुष का सर्वोपरि महत्व है। परन्तु इन्द्र धनुष के रंगों को सीधा उससे ही तो प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अत: सूर्य-किरण द्वारा, चन्द्र-किरण द्वारा एवं रत्न-रंग या किरण द्वारा यह कार्य किया जाता है। प्रसिद्ध सात रत्नों के नाम, रंग, ग्रह और चक्र इस प्रकार हैं :

रत्न	वर्ण	ग्रह	चक्र
1. लाल	लाल	सूर्य	मूलाधार
2. मोती	नारंगी	चन्द्र	सहस्रार
3. मूंगा	पीला	मंगल	आज्ञा
4. पन्ना	हरा	बुध	मणिपुर

5. पुष्पराग या पुखराज	नीला	बृहस्पति	विशुद्ध
6. हीरा	जामुनी	शुक्र	स्वाधिष्ठान
7. नीलम	आसमानी	शनि	अनाहत

ये सात प्रमुख एवं प्रतिनिधि रत्न शाश्वत रूप से सृष्टि को सात रंगों वाली किरणें प्रदान करते हैं। इन्हीं सात रंगों को हम इन्द्र-धनुष में देखते हैं। इन्हीं सात किरणों या रंगों की सृष्टि की रचना, रक्षा और विनाश की स्थिति है। नक्षत्रों के समान उक्त सात पवित्र रत्न उक्त सात इन्द्रधनुषी रंगों के ही सघन या संक्षिप्त रूप हैं। इन रत्नों के विषय में कुछ मूलभूत बातें ये हैं।

1. सबसे पहली बात यह है कि ये रत्न सदा अपना एक शुद्ध रंग ही रखते हैं और वह भी बहुत अधिक मात्रा में रखते हैं। इनमें मिश्रणों की संभावना नहीं है।
2. ये सभी रत्न अत्यधिक चमकीले होते हैं और अपनी रंगीन किरण को सदा प्रकट करते हैं।
3. ये रत्न अल्कोहल, स्पिरिट और पानी में डाले जाने पर अपनी किरणों का प्रकाश विकीर्ण करते हैं। इनमें न्यूनता या थकान नहीं आती।
4. इनके रंगों की विश्वसनीयता के लिए तिकोना शीशा (Prism) भी उपयोग में लाया जाता है।

णमोकार महामन्त्र में अन्तर्निहित रंगों का अपना विशेष महत्त्व है। अर्थ के स्तर पर, ध्वनि के स्तर पर और साधना (योग) के स्तर पर इस महामन्त्र को समझने का या इसमें उतरने का प्रयत्न किया जाता रहा है और इस दिशा में भारी सफलता भी प्राप्त हुई है। रंग-विज्ञान या रंग-चिकित्सा का भी एक विशिष्ट एवं व्यापक धरातल है। इसके आधार पर अन्य आधारों को भी एक निश्चित कोणों में रखकर समझा जा सकता है। पांचों परमेष्ठियों का एक सुनिश्चित प्रतीक रंग है। अरिहंत परमेष्ठी का श्वेतवर्ण, सिद्ध परमेष्ठी का लाल वर्ण, आचार्य परमेष्ठी का पीला वर्ण, उपाध्याय परमेष्ठी का नील वर्ण तथा साधु

परमेष्ठी का श्यामवर्ण हैं। यह वर्ण मान्यता अति प्राचीन काल से चली आ रही है। आज यह प्रमाणित भी हो चुकी है।

हमारी जिह्वा द्वारा उच्चरित भाषा की अपेक्षा दृष्टि में अवतरित रंगों और आकृतियों की भाषा अधिक शक्तिशाली है। महामन्त्र में निहित रंगों की भाषा को स्वयं में उतारने/समझने से अद्भुत तदाकरता की स्थिति बनती है। पंच परमेष्ठी के प्रतीकात्मक रंगों को क्रमशः ज्ञान, दर्शन, विशुद्धि, आनन्द और शक्ति के केन्द्रों के रूप में स्वीकृत किया गया है। ये परमेष्ठी पवित्रता, तेज, दृढ़ता, व्यापक मनीषा एवं सतत मुक्तिसंघर्ष के प्रतीक भी हैं। उक्त पंच वर्णों की न्यूनता से हमारे शरीर और मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अरिहंत परमेष्ठी-वाचक रंग (श्वेत) की कमी से हमारा सम्पूर्ण स्वास्थ्य बिगड़ता है और हम कुपथ की ओर बढ़ते हैं। हमारी निर्मलता कमजोर होने लगती है। सिद्ध परमेष्ठी वाचक लाल रंग हमारे शरीर की ऊष्मा और ताजगी की रक्षा करता है। इसकी कमी से हमारी मानसिकता बिगड़ती है। आलस्य और अकर्मण्यता आती है। आचार्य परमेष्ठी का पीतवर्ण है। इसकी न्यूनता होने से हमारी चारित्रिक एवं ज्ञानात्मक दृढ़ता घटती है। उपाध्याय परमेष्ठी का नीलवर्ण है। इसकी कमी होने से हमारी शान्ति भंग होती है! हममें उच्च स्तरीय ज्ञान और चिन्तन की कमी होने लगती है। हम अशान्त और क्रोधी हो जाते हैं। साधु परमेष्ठी का रंग श्याम का काला माना गया है। यह रंग मूल नहीं है! अनेक रंगों के मिश्रण से बनता है। इसी प्रकार श्वेत रंग भी अनेक रंगों के (सात प्रमुख रंगों) मिश्रण से बनता है। श्याम वर्ण की कमी हमारे धैर्य को कमजोर करती है। साथ-ही-साथ हमारी कर्मों के विरुद्ध संघर्ष-शीलता भी कम होती है। साधु वास्तव में तप, साधना और त्याग के प्रतीक हैं। वे निरन्तर कालिमा-कर्म-कालिमा से जूझ रहे हैं। अतः उन्हें संघर्षशीलता का प्रतिनिधि परमेष्ठी मान गया है। साधु परमेष्ठी अपने सीधे यथार्थ के कारण हमारे जीवन के सन्निकट होकर हममें सीधे उतरते हैं। प्राचीन ऋषियों, मुनियों और ज्ञानियों ने अपने ध्यान, मनन और अनुभव से उक्त रंगों का अनुसन्धान किया है।

मन्त्रस्थ रंगों के अनुभव की प्रक्रिया—

ध्वनि, प्रकाश और रंग का अविनाभावी सम्बन्ध है। इनमें क्रम को ध्वनि से प्रकाश अथवा रंग से स्वीकृत किया जासकता है। अतः स्पष्ट है कि इस समस्त चराचर जगत् के मूल में रंग का आदि—आधार के रूप में महत्त्व है। मन्त्रों में रंग का विशेष महत्त्व है क्योंकि रंग के द्वारा एकाग्रता, ध्यान, समाधि और आत्मोपलब्धि तक सरलता से पहुंचा जा सकता है। रंग से हमें इष्ट की परमेष्ठी की छवि का संधान करना सुगम एवं निर्भ्रम हो जाता है।

उदाहरण के लिए हम अरिहंत परमेष्ठी के श्वेत रंग को ले सकते हैं। 'णमो अरिहंताणं' पद के उच्चारण के साथ तुरन्त हमारे तन मन में अरिहन्त के गुणों की निर्मलता (स्वच्छता-सफेदी) और काया की पवित्रता (स्वच्छता-श्वेतिमा) का एक भाव-चित्र—एक रूपाकृति उभरती है और धीरे-धीरे हम उसका साक्षात्कार भी करते हैं। यदि किसी भक्त के मन में ऐसा श्वेतवाणी दृश्य नहीं बन रहा है तो उसकी तन्मयता में कहीं कमी है। उसे और प्रयत्न करना चाहिए। ध्यान में सहज एकाग्रता आने पर कोई कठिनाई नहीं होगी। अरिहन्त परमेष्ठी की निर्मल आकृति का आभा मण्डल हमारे मन में बनेगा ही। हां, यदि पुनः पुनः प्रयत्न करने पर भी सहज एकाग्रता नहीं आ रही है तो हमें अपने चारों तरफ अभिप्रेत रंग के अनुकूल वातावरण बनाना होगा। हमें श्वेतवर्ण के वस्त्र, श्वेतवार्णी माला और श्वेतवर्णी कक्ष में बैठकर मन्त्र के इस पद का जाप करना होगा। श्वेतवर्ण की कुछ वस्तुओं को अपनी समीपता में रखना होगा। अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभु का श्वेतवर्ण माना गया है अतः उनकी श्वेतमूर्ति की समक्षता में बैठकर णमोकार मन्त्र का पूरा या केवल णमो अरिहंताणं का पाठ करना विशेष लाभकारी होगा। ध्यान रखना है कि ये सब साधन हैं, साध्य नहीं। स्वयं रंग भी साधन ही हैं। रंग ही क्यों स्वयं सम्पूर्ण मन्त्र भी तो आत्मोपलब्धि का अद्वितीय साधन ही हैं। श्वेत रंग मौलिक रंग नहीं है। सात मौलिक रंगों के आनुपातिक मिश्रण से बनता है। अतः वास्तव में देखा जाए तो अरिहन्त परमेष्ठी या अर्हम् में ही सभी परमेष्ठी गर्भित हैं। जिसके चित्त में अरिहन्त की श्वेताभा का जन्म हो

गया है, उसे अन्य चार परमेष्ठियों की वर्णाभा प्राप्त करना अत्यन्त सहज होगा।

सभी परमेष्ठियों के रंगों के अनुसार हम अपना चतुर्दिक वातावरण बनाकर भी सिद्धि कर सकते हैं। हमें अपने शरीर, मन और सम्पूर्ण जीवन के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता है, उसी के अनुरूप हमें आवश्यक पद का जाप करना होगा। समस्त मन्त्र का पाठ तो अद्वितीय फल देता ही है, परन्तु आवश्यकता के अनुरूप एक पद का जाप या मनन भी किया जा सकता है। समस्त मन्त्र के जाप में श्वेत वर्ण के वस्त्र, श्वेतवर्ण की माला आदि से सर्वाधिक लाभ होगा। मनस्तृप्ति होगी। द्वितीय श्रेष्ठ वर्ण है नीला। मूल सात रंगों में से तीन रंग नील-परिवार के हैं। इन्द्र-धनुष के रंगों से यह तथ्य प्रमाणित है ही।

हमारे शास्त्रों में भी चौबीस तीर्थंकारों के रंग वर्णित हैं। रंग निहित शक्ति का द्योतक होता है। ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, शीतल, पार्श्व, श्रेयांस, विमल, अनंत, धर्म, शान्ति, कुंथु, अरह, मल्लि, नमि, महावीर के वर्ण सुवर्ण (तप्त स्वर्ण-कुन्दन जैसे) माने गये हैं पद्म एवं वासुपूज्य का लाल वर्ण माना गया है। चन्द्र प्रभु एवं पुष्प-दन्त के श्वेतवर्ण स्वीकृत हैं, मुनिसुव्रत एवं नेमि के श्यामवर्ण हैं। पार्श्वनाथ का नील श्यामवर्ण हैं।

हमारे समस्त शरीर में मूल सातों रंग हमारी कोशिकाओं में व्याप्त हैं—संचित हैं। ये सभी शरीर को सक्रिय और स्वस्थ रखने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि इनमें से एक रंग की भी कमी हो जाए तो शरीर का क्रियाक्रम भंग होने लगता है। रंगों की कमी की पूर्ति हम दवा से करते हैं। मन्त्र में रंगों का भण्डार है जिससे हम शरीर के स्तर पर ही नहीं आत्मा के स्तर पर भी लाभान्वित हो सकते हैं। णमोकार महामन्त्र में परमेष्ठियों का सामान्यतया समान महत्त्व है। परन्तु शास्त्रों में क्रम निर्धारित किया गया है। इस मन्त्र में भी कभी-कभी हम क्रम के आधार पर छोटे-बड़े का निर्णय करने की नादानी करने लगते हैं। वास्तव में ये सभी परमेष्ठी त्रिकाल-दृष्टि से देखने पर समान महत्त्व के हैं। वर्तमान काल मात्र देखने से भ्रम पैदा होता है।

पंचपरमेष्ठियों के क्रम-निर्धारण में वैज्ञानिकता की भी अद्भुत गुंजायश है। सीधे क्रम की वैज्ञानिकता है कि श्वेतवर्ण सब वर्णों का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी ओर अन्तिम परमेष्ठी से प्रथम परमेष्ठी तक श्याम से श्वेत बनने तक की पूरी प्रक्रिया को भी समझा ही जा सकता है। उत्तरोत्तर आत्मा की विकसित अवस्था को देखा जा सकता है। वास्तव में यह क्रम वास्तविक और व्यवहारिक दोनों धरातलों पर खरा उतरता है।

महामन्त्र में अन्तःस्यूत रंगों के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया का खुलासा इस प्रकार है कि हम सर्वप्रथम मन्त्र के प्रति अपनी मनोभूमि तैयार करते हैं। दूसरे सोपान पर हम उसका (मन्त्र का) जाप, मनन एवं उच्चारण करते हैं। उच्चारण या मनन से हमारे सम्पूर्ण शरीर एवं मन में एक अद्भुत आभामण्डल अथवा भावालोक पैदा होता है। उच्चरित ध्वनियां मूलाधार से आरम्भ होकर समस्त चक्रों में व्याप्त होकर एक नाद का रूप लेती हैं। वह नाद सघन होकर एक आभा में प्रकाश में बदल जाता है। यह प्रकाश सारे चैतन्य में व्याप्त हो जाता है। घनीभूत प्रकाश अपनी अभिव्यक्ति के लिए विवश होकर आकृति में बदलता है और आकृति रंग में होगी ही। आशय स्पष्ट है कि ध्वनि से आकृति (रंग) तक की प्रक्रिया में ही मन्त्र अपनी पूर्ण सार्थकता में उभरता है। इस बात को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि ध्वनि अपनी पूर्ण अवस्था में आकृति या रंग में ढलकर ही सम्पूर्णतया सार्थक होती है। इसे हम ध्वनि विश्लेषण की प्रक्रिया भी कह सकते हैं या रंग विज्ञान की पूर्वावस्था का आकलन भी कह सकते हैं।

आपके शरीर में आपका जो मूल स्थान है जिसे हम ब्रह्मयोनि या कुंडलिनी कहते हैं, वहीं से ऊर्जा का पहला स्पन्दन प्रारम्भ होता है। ध्वनि का विकास कैसे होता है, ध्वनि में नाद का जन्म कैसे होता है; किसको हम बिन्दु, नाद और कला कहते हैं। उन्हीं कलाओं से मन्त्र का विकास, काम का विकास होता है और शरीर के अन्दर चय, उपचय, स्वास्थ्य का ह्रास या वृद्धि भी वहीं से होती है। एक विशिष्ट अक्षर एक विशिष्ट तत्त्व का ही प्रतिनिधित्व क्यों करता है? बात यह है कि प्रत्येक अक्षर एक आकृति से बंधा हुआ है। प्रत्येक ध्वनि एक विशिष्ट

प्रकार की आकृति को उत्पन्न करती है। प्रत्येक आकृति एक तत्त्व से बंधी हुई है और प्रत्येक तत्त्व कुछ निश्चित भावनाओं, इच्छाओं, विचारों और क्रियाओं से बंधा हुआ है।

उदाहरण के लिए आप णं का उच्चारण करिए। किसी तत्त्व की जानकारी के लिए आप उसका अनुस्वार के साथ उच्चारण कीजिए। फिर अनुभव कीजिए कि वह आपको किधर ले जा रहा है। आपकी नाभि से एक ध्वनि उठती है वह आपको ब्रह्म रन्ध्र की ओर या मूलाधार की ओर या अनहत की ओर या नाभि की ओर ले जा रही है। इससे पता चलता है कि ण और म कहते ही हमारा विसर्जन होता है, हम किसी में लीन होने लगते हैं। 'ण' नहीं अर्थात् अस्वीकृति या त्याग चेतना का द्योतक है और इसके (ण के) साथ ही हम इस त्याग चेतना से भर जाते हैं। और पूरा 'णमो' बोलते ही हमारा समस्त अहंकार विसर्जित हो जाता है। हम हल्के निर्विकार होकर आकाश की ओर उठते हैं। ण और म के मिलन से वही स्थिति होती है जो अग्नि और जल के मिश्रण से होती है। अग्नि के सम्पर्क से जल वाष्प बन जाता है अर्थात् ऊर्जा (Energy) में परिवर्तित हो जाता है।

प्रत्येक वर्ण और अक्षर के विश्लेषण में रंग का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। आकृति आएगी तो उसमें वस्तुएं भी उभरेंगी ही। कान बन्द करने के बाद बिना वर्णों की ध्वनि जो हम सुनते हैं वह अनाहत कहलाती हैं। ध्वनि का विभिन्न चक्रों से सम्बन्ध होता है। चक्रों का अर्थ है तत्त्व और तत्त्व का अर्थ है विभिन्न प्रकार के रंग और रंगों से प्रकाश प्रकट होता ही है। जो ध्वनि सीधी निकलती है उसका रंग अलग है और जो ध्वनि गुच्छ में से (चक्र या कमल में से) निकलती है उसका रंग कुछ और ही होता है। आशय यह है कि ध्वनि चक्रों से सम्बद्ध होकर शक्ति और ऊर्जा बदलती है।

जर्मन डा० अर्नेस्ट श्लाडनी और जेनी ने प्रयोग किये। उनके प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया कि ध्वनि और आकृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्टील की पतली प्लेट पर बालू के कण फैलाए गये और वायलिन के स्वर बजाए गये तो पाया गया कि इन स्वरों के कारण बालू के कण विभिन्न आकारों को धारण करते हैं। डॉ० जेनी का प्रयोग ध्वनि और

आकृति के सम्बन्ध की ओर भी पुष्ट करता है। उन्होंने टेलोस्कोप नाम का यन्त्र बनाया। यह यन्त्र बोले गये शब्दों को माइक्रोफोन से निकालता है और सामने वाले पर्दे पर उनके आकारों को प्रस्तुत कर देता है—उन्हें आकारों में बदल देता है। ओम का उच्चारण करने पर इस यन्त्र के कारण पर्दे पर वर्तुलाकार दिखाई देता है और जब 'म' का चिन्ह धीरे-धीरे लुप्त होता है तो वही आकार त्रिकोण और षट्कोण में बदल जाता है।

यह सम्पूर्ण विश्व ध्वनि और आकृति का ही एक खेल है। इसी को हमारे प्राचीन ऋषियों-मुनियों ने नाम रूपात्मक जगत् कहा है। इस विश्व की प्रत्येक वस्तु ध्वनि-आकृतिमय है। इसी को दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि प्रत्येक वस्तु प्रकम्पायमान अणु-परमाणुओं का समूह है। प्रत्येक वस्तु में अणुओं के प्रकम्पनों की आवृति (Frequencies) आदि की विविधता है।

प्राचीन काल में ऋषियों-योगियों ने अपने अन्तर्ज्ञान से जाना कि जब ध्वनि आकृति में बदल सकती है तो वह द्रव्य में भी बदल सकती है। उन्होंने उस द्रव्य पर नियन्त्रण करने के लिए उस ध्वनि को ही माध्यम बनाया। उन्होंने द्रव्य विशेष पर ध्यान दिया, उस पर अपने मन को अत्यन्त एकाग्र किया और जाना कि उससे एक विशेष प्रकार का स्पन्दन आ रहा है और वह स्पन्दन उस द्रव्य के सारे शक्ति-व्यूह को अपने में लिए हुए है। स्पन्दन के माध्यम से पदार्थ के शक्ति-व्यूह को पकड़ा जा सकता है। रं ध्वनि से अग्नि को पैदा किया जा सकता है। ऋषियों ने अनुभव किया कि जब भी कोई वस्तु तरल से सघन होने लगती है तो उसमें से लं ध्वनि आने लगती है। 'लम्' ध्वनि पृथ्वी तत्त्व की जननी है। 'वम्' ध्वनि जल तत्त्व का आधार है। जल जब बहता है तो उसमें 'वम्' ध्वनि प्रकट होती है। इसी प्रकार 'वम्' ध्वनि से जल को—शीतलता को पैदा किया जा सकता है। 'यम्' ध्वनि वायु का आधार है, 'हम्' आकाश का आधार है। हं ध्वनि से आकाश को प्रभावित किया जा सकता है।

इस प्रकार प्रत्येक तत्व एवं वस्तु की स्वाभाविक ध्वनि को पकड़ने की कोशिश की और इस स्वाभाविक ध्वनि के माध्यम से उस तत्त्व

या पदार्थ के शक्ति-व्यूह को उसके गुणों को, उसकी वैयक्तिकता को पहिचाना गया। क्रम रहा—वस्तु से ध्वनि, ध्वनि से तत्त्व, तत्त्व से शक्ति-व्यूह, शक्ति व्यूह से भावना और विचार इसी प्रकार वर्ण किस तत्त्व को प्रभावित करता है, वह किस शक्ति-व्यूह (Electric Current) को पकड़ रहा है, इसको खोजा गया परिणामतः प्रत्येक वर्ण को उसके विशिष्ट तत्त्व से जोड़ दिया गया।

जहां तक इन वर्णों की आकृति का सम्बन्ध है यह पहले ही कहा जा चुका है कि हर ध्वनि आकृति को पैदा करती है। ध्वनि और आकृति सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि शरीर और शरीर की छाया का। जब हम शब्दों को बोलते हैं तो उनकी आकृति आकाश में उसी तरह अंकित होती चली जाती हैं जैसी कि फोटो लेते समय फोटो की विषय-वस्तु का चित्र कैमरे के प्लेट पर अंकित हो जाता है। ध्वनियों की इन अंकित आकृतियों को प्राचीन ऋषियों ने आकाश में देखा है। अ, आ, इ, ई आदि स्वर कैसे बने एवं अन्य व्यंजन कैसे बने? इनके पीछे जो कहानी है वह उच्चारण आकृति और प्रतिलिपि की कहानी है। संस्कृत और प्राकृत भाषा में यह प्रयोग अत्यन्त सरलता से किया जा सकता है। स्पष्ट है कि इस लिखी गयी आकृति में और आकाश पर अंकित आकृति में अद्भुत साम्य है।

आज विज्ञान के प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि ध्वनि को प्रकाश में बदला जा सकता है। विभिन्न प्रकम्पन आवृत्ति (Frequencies) में प्रवृत्त होने वाला प्रकाश ही रंग है। प्रकाश, रंग एवं ध्वनि पृथक्-पृथक् तत्त्व नहीं है अपितु एक ही तत्त्व के अलग-अलग पर्याय या प्रकार हैं। इनमें से किसी एक के माध्यम से अन्य दो को प्राप्त किया जा सकता है।

रंग का जगत् हमारे मानसिक और बाह्य जगत् को सफलतापूर्वक प्रभावित कर सकता है। रूस की एक अन्धी महिला हाथों से रंगों को छूकर उनसे उत्पन्न होने वाले भावों का अनुभव कर लेती थी। वह थोड़ी ही देर में उन रंगों का नाम भी बता देती थी। लाल रंग की वस्तु को छूने पर उसे गरमाहट का अनुभव होता था। हरे रंग का स्पर्श करते ही उसे प्रसन्नता का अनुभव होता था। नीले रंग की वस्तु को छूने पर उसे ऊंचाई और विस्तार का अनुभव होता था। मन्त्र और

उनसे उत्पन्न होने वाले रंग हमारे आन्तरिक एवं बाह्य जगत् के विकास एवं ह्रास में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं।

णमोकार महामंत्र के पांचों पदों के पांच प्रतिनिधि रंग हैं, इससे हम परिचित ही हैं। किस रंग का हमारे लौकिक और पारलौकिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह जानने की हमारी सहज उत्सुकता होती ही है। पर, रंग पैदा कैसे होते हैं? रंग पैदा होते हैं प्रकम्पन आवृत्ति के द्वारा (Frequency) फ्रीक्वेन्सी कैसे और किससे पैदा होती है?—वह शब्द या ध्वनि के फैलाव से पैदा होती है। सात हजार की फ्रीक्वेन्सी से लाल रंग पैदा होता है। णमो सिद्धाणं की ध्वनि से सात हजार की फ्रीक्वेन्सी पैदा होती है—इसीलिए लाल रंग है उसका। णमो आयरियाणं 6000 की ध्वनियों की फ्रीक्वेन्सी उत्पन्न करने की शक्ति है। 6000 की फ्रीक्वेन्सी पीले रंग को उत्पन्न करती है। णमो उवज्झायाणं में 5000 की फ्रीक्वेन्सी की ताकत है अर्थात् णमो उवज्झायाणं की ध्वनि में 5000 की फ्रीक्वेन्सी की शक्ति है। इससे स्वत: ही नीला और हरा रंग पैदा हो जाता है।

ध्वनियों के संघात से, जप से, उच्चारण से किस प्रकार की फ्रीक्वेन्सी पैदा होती है? यह ईश्वर में प्रकंपन्न पैदा करती है। इन रंगों का शरीर के विभिन्न भागों पर प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव क्षतिपूरक एवं शक्तिवर्धक होता है। हीलिंग में प्राण और रंग महत्त्वपूर्ण हैं।

मन्त्रस्थ रंगों का शरीर और मन पर प्रभाव—'णमो अरिहंताणं' पद का श्वेत रंग आपको रोगों से बचाता है और आपकी पाचन शक्ति को ठीक करता है। मानसिक निर्मलता और संरक्षण शक्ति भी इसी पद के श्वेतवर्ण से प्राप्त होती है। 'णमो सिद्धाणं' का लाल वर्ण शक्ति क्रिया और गति का पोषक है। नियन्त्रण शक्ति (Controling power) भी इससे ही बढ़ती है। 'णमो आइरियाणं' का पीला रंग संयम और आत्मबल का वर्धक है। चारित्र्य का भी यह पोषक है। 'णमो उवज्झायाणं' शरीर में शान्ति एवं समन्वय पैदा करता है। इस नीले की महिमा है। हृदय, फेफड़े, पसलियों को भी यह रंग ठीक करता है। 'णमो लोए सब्ब साहूणं' का काला रंग है। यह शरीर की निष्क्रियता और अकर्मण्यता को दूर करता है। कर्म दमन और संघर्ष शक्ति इस वर्ण में है। साधु परमेष्ठी अनथक संघर्ष के प्रतीक हैं।

प्रकृति, तत्त्व, रंग—प्रकृति पंच तत्त्वों के माध्यम से प्रकट होती है। प्रकृति का अर्थ है सृष्टि की मूल एनर्जी (ऊर्जा)। प्र का अर्थ है प्रकृष्ट गुण अर्थात् पैदा होना। कृ का अर्थ है क्रियाशील होना अर्थात् स्थिर होना। 'ति' का अर्थ है नष्ट होना। तो प्रकृति शब्द का पूर्ण अर्थ हुआ—बनना, स्थिर होना और नष्ट होना। इसी प्रकार प्र—सतोगुण, कृ—रजोगुण और ति—तमोगुण के प्रतिनिधि अक्षर हैं। इन तीन में ही समस्त संसार बसा हुआ है। णमोकार मन्त्र इस सबको जानने की कुंजी है।

तत्त्व और उनका प्रवाह—हम अपनी नासिका को हवा की दिशा और गति के द्वारा अपने भीतर के तत्त्वों की स्थिति को जान सकते हैं। पृथ्वी का प्रवाह 20 मिनट तक, जल तत्त्व का प्रवाह 16 मिनट तक, वायु का 12 मिनट तक, अग्नि तत्त्व का 8 मिनट तक और आकाश का प्रवाह नासिका वायु में 4 मिनट तक चलता है। नासिका में बायीं ओर चन्द्र स्वर है और दायीं ओर सूर्य स्वर है। शरीर में आनुपातिक शीतलता और उष्णता जरूरी है। अनुपात बिगड़ने पर रोग आते हैं। यदि नासिका की हवा नीचे की ओर चल रही है तो वह जल तत्त्व प्रधान है। तिरछी ओर है तो पृथ्वीतत्त्व है। ऊपर की ओर जा रही है तो अग्नि तत्त्व है। चारों तरफ बह रही है तो वायु तत्त्व है। यदि कुछ स्पर्श करती हुई ऊपर जाती है और वहीं समाप्त हो जाती है तो वह आकाश तत्त्व है। पृथ्वी 12, जल 16, वायु 8, अग्नि 6, आकाश 4 अंगुल तक अपनी दिशा में जा सकता है।

सार चित्र

नासिका बिवरों की हवा और तत्त्व

	पृथ्वी तत्त्व	जल	वायु	अग्नि	आकाश
प्रवाह क्षण (मिनट)	20	16	12	8	4
दिशा	तिर्यक्ष् गति	अधो गति	चतुर्दिक	ऊर्ध्व गति	कुछ ऊर्ध्वमुखी अल्प जीवी
गति	12 अंगुल पर्यन्त	16 अंगुल पर्यन्त	8 अंगुल पर्यन्त	6 अंगुल पर्यन्त	4 अंगुल पर्यन्त

णमोकार मन्त्र में सम्मोहन (Hypnotising) के भी रास्ते हैं। इसकी कतिपय ध्यनियां ऐसी हैं जो मानव को हिप्नोटाइज (सम्मोहित) कर सकती हैं। जैसे णं है। णं क्या है ? णं में एक बड़ी शक्ति है। इसमें तीन स्तम्भ हैं। कैसा भी दर्द हो, किसी भी अंग में हो, उसको 'णं' द्वारा दूर किया जा सकता है। 'णं' पहले दर्द वाले हिस्से को हिप्नोटाइज करेगा फिर दबा देगा।

अर्हम्—आपके पास 49 ध्वनियां हैं। इनमें पहली ध्वनि है अ; और अन्तिम ध्वनि है ह। ये दोनों ध्वनियां कण्ठ से पैदा होती हैं। अर्हम् मूल मन्त्र है। ध्वनि के साथ उच्चरित करने पर उसमें प्रकाश एवं रंग पैदा हो जाते हैं। पहला सफेद प्रकाश है। वही ह्रीं कर देने पर लाल हो जाता है क्योंकि उसमें र मिल गयी है। जब वह ह्रां (आं) रूप में उच्चरित होता है तो पीत प्रकाश आता है। हूं (उ) कहते ही नीला प्रकाश आता है और स कहते ही रंग एवं प्रकाश काला हो जाता है। णमोकार मन्त्र सृष्टि का मूल है। सभी प्रतिनिधि अक्षर मातृकाएं उसमें हैं। अर्हम्, ओम, ह्रीं के—एकमात्र के कहने पर भी वही णमोकार मन्त्र बनता है। व्याख्या और परिपूर्णता के लिए—बोध के लिए इसे विस्तृत किया गया। इस पूर्ण मन्त्र को सुविधा के लिए संक्षिप्त किया गया यह भी हम कह सकते हैं।

रंगों की अनुभूति कैसे—दो प्रकार के आसन होते हैं—सगर्भ और अगर्भ। जब हम श्वास को मन्त्र में बदलते हैं तब सगर्भ आसन होता है। जब हम श्वास का दर्शन करते हैं तब अगर्भ आसन होता है। प्राण वायु की गति ऊर्ध्व को है और अपान वायु की नीचे का है। इसको उल्टे रूप में कैसे करें। जिस समय आप सीवन को दबा कर अपान के निस्सरण की प्रक्रिया को रोक देंगे तो अपान वायु स्वतः ही ऊपर को उठना प्रारम्भ कर देगी। अपान वायु ठण्डी है और प्राण वायु गर्म है। जब अपान गर्म हो जाएगी तो ऊपर को भागेगी ही। हर ठण्डी वस्तु को नीचे से गर्मी दी जावे तो वह ऊपर को भागेगी ही। लोहे को गैस से ही काटा जा सकता है। सिर्फ नीली गैस छोड़ते हैं और काटते हैं। वह नीली गैस ही आक्सीजन होती है। उसमें नाइट्रोजन और कार्बन ये सब चीजें मिली हुई हैं। फैक्टरी में गैसों को अलग करते हैं। जो ठण्डी होती है वो

चुप हो जाती है और जो गर्म हो जाती है वो टिक जाती है। जब सिर्फ आक्सीजन रह जाती है तो उसमें काटने की शक्ति बढ़ जाती है।

इस दुनिया में साइकिक (मानसिक इच्छा द्वारा) सर्जरी हो रही है इसका अर्थ है—मानसिक इच्छा द्वारा आपरेशन करना। पेट खोल देना, पेट बन्द कर देना। अपने पर भी तथा दूसरे पर भी यह की जा सकती है। णमोकार मन्त्र का मूलाधर ध्वनि है। ध्वनि ही प्रकृति की ऊर्जा का मूल स्वरूप है। इस प्रकृति में जो मूलभूत शक्ति है उसके अनन्त रूप हैं। वे बनते हैं, स्थिर रहते हैं और नष्ट होते हैं। स्पष्ट है कि प्रकृति ध्वनि के माध्यम से प्रकट होती है। ध्वनि प्रकाश में ढलकर रंग और आकार ग्रहण करती है। महामन्त्र का सस्वर जाप या उच्चारण करते-करते शरीर में अपेक्षित रंग और आकृतियों की अवतारणा होगी। ध्वनि तरंग धीरे-धीरे विद्युत् तरंगों में बदलेगी और फिर यह विद्युत तरंग रंग और आकृति में ढलेगी ही। इसके बाद भक्त स्वयं की पूर्णता का साक्षात्कार कर सके ऐसी क्षमता की स्थिति में पहुंच जाता है।

महामन्त्र में केवल तीन पद हैं—महामन्त्र णमोकार की प्रमुखता है—प्राकृतिक ऊर्जा का जागरण। प्रकृति के अपने क्रम में तीन स्थितियां हैं—उत्पत्ति, स्थिति, और विनाश। णमोकार मन्त्र में णमो उवज्झायाणं पद उत्पत्ति—ज्ञान, उत्पादन का है। णमो सिद्धाणं पद स्थिति का है। णमो अरिहन्ताणं पद नाश-कर्मक्षय का है। आचार्य और साधु परमेष्ठी उपाध्याय में ही गर्भित हैं। अतः इस प्रकृति और ऊर्जा के स्तर पर मन्त्र के तीन ही पद बनते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और व्यय (नाश) और पुनः-पुनः यही क्रम—ये तीन अवस्थाएं ऊर्जा की हैं। मिट्टी, पानी, हवा, अग्नि ये सब ऊर्जा के क्षेत्र है। जब ऊर्जा ठोस (Solid) होती है तो मिट्टी बन जाती है। तरल होने पर जल और जब जलती है तो अग्नि बनती है। बहने पर वायु बनती है। जब केवल ऊर्जा ही—(ऊर्जा मात्र ही) रह जाती है तो वह आकाश हो जाती है। इन पांचों तत्त्वों के अलग रंग हैं। इनके अपने-अपने केन्द्र हैं; इनकी अपनी प्रतीकात्मकता है। इन रंगों की मानव शरीर में न्यूनता का गहरा प्रभाव पड़ता है। ये रंग, शक्ति केन्द्र, प्रतीक, और इनकी न्यूनता को पंच परमेष्ठी के साथ जोड़कर देखने से पूरा चित्र प्रस्तुत हो जाता है। सार चित्र इस प्रकार है—

पंचपरमेष्ठी	वर्ण (रंग)	शक्ति केन्द्र	प्रतीक	रंग न्यूनता का प्रभाव
अरिहन्त	श्वेत	ज्ञान	स्फटिक	अस्वास्थ्य
सिद्ध	लाल	दर्शन	बाल रवि	प्रसाद, विक्षिप्तता
आचार्य	पीला	विशुद्धि	दीपशिखा	बौद्धिक ह्रास
उपाध्याय	नीला	आनन्द	नभ	क्रोध
साधु	काला	शक्ति	कस्तूरी	प्रतिरोध शक्ति

पीत वर्ण या पीला रंग मिट्टी तत्त्व के निर्माण में सहायक है। जल तत्त्व के लिए ऊर्जा को श्वेत रूप धारण करना होता है। अग्नि तत्त्व के लिए लाल रंग आवश्यक है। नीला रंग वायु तत्त्व का जनक है। आकाश तत्त्व के लिए भी नील वर्ण आवश्यक है। राग-द्वेष को स्थिर करके ही जल तत्त्व को नियन्त्रित किया जा सकता है। जल तत्त्व से हमारा मूत्र ही नहीं अपितु रक्त एवं शरीर की सारी इच्छाएं चालित होती हैं। णमो अरिहंताणं में श्वेत तरंग है। अ और ह में जल तत्त्व है। र में अग्नि तत्त्व है। जल और अग्नि से हम गला, नाभि, हृदय को स्वच्छ-स्वस्थ रख सकते हैं। इन अंगों की स्वच्छता श्वेतवर्ण बर्धक होती है। रंग के बिना कोई वस्तु दिखाई नहीं देती। रंगों के द्वारा हमारी बीमारी का पता चलता है। डॉ० बीमार व्यक्ति की आंख, जीभ, पेशाब, थूक, क्यों देखता है? इनके रंगों से वह रोग को तुरन्त जान लेता है। पृथ्वी तत्त्व का पीला रंग शरीर में व्याप्त है। इसकी कमी से रुग्णता आती है। किन्तु यदि मूत्र में पीलापन हो तो वह रोग का कारण होता है। मूत्र का वर्ण जल तत्त्व के कारण श्वेत होना चाहिए। सफेद रंग अरिहन्त का है। एक श्वेत रंग रोग का है और एक श्वेत रंग स्वास्थ्य का है। इस शरीर को तुच्छ, हेय और नाशवान् कहकर उपेक्षा करने से हम णमोकार मन्त्र को नहीं समझ सकते। शरीर की समझ और स्वास्थ्य से हम संसार को समझ सकते हैं।

संसार को समझकर उसे नियन्त्रित कर सकते हैं और फिर आत्म-कल्याण की सहजता को पा सकते हैं।

णमोकार विज्ञान, अरिहन्त विज्ञान या जैन धर्म शक्तिशालियों का धर्म है, कमजोरों का नहीं। परम्परा और मशीन वन जाने से इसकी ऊर्जा और प्राणवत्ता तिरोहित हो गयी है। आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को सन्तुलित दृष्टि से समझकर ही चलना श्रेयस्कर होगा।

निष्कर्ष—महामन्त्र के रंगमूलक अध्ययन से अनेक प्रकार के लाभ हैं।

1. प्रकृति से सहज निकटता एवं स्वयं में भी प्रकृति के समान विविधता, एकता और व्यापकता की पूर्ण सम्भावना बनती है।
2. शब्द से शब्दातीत होने में रंग सहायक हैं। अनुभूति की सघनता, में भाषा लुप्त हो जाती है। धीरे-धीरे आकृति भी विलीन हो जाती है। ध्वनि, प्रकाश और चैतन्य ज्योति की यात्रा है।
3. रंग तो साधन है—सशक्त साधन। सिद्धि की अवस्था में साधन स्वत: लीन हो जाते हैं।
4. तीर्थंकरों के भी रंगों का वर्णन हुआ है। ध्यान में आकृति और रंग का महत्त्व है ही।
5. रंग-चिकित्सा का महत्त्व सुविदित है। णमोकार मन्त्र के पदों के जाप से विभिन्न रंगों की कमी पूरी की जा सकती है। रंगों को शुद्ध भी किया जा सकता है।
6. इन्द्रधनुष के सात रंगों का महत्त्व, रंग चिकित्सा का महत्त्व, रत्न चिकित्सा का महत्त्व और रश्मि चिकित्सा का महत्त्व भी समझना आवश्यक है।
7. स्थूल माध्यम से धीरे-धीरे ही सूक्ष्म भावात्मक लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। रंग हमारे शरीर के एवं मन के संचारक एवं नियन्त्रक तत्त्व हैं अत: इनके माध्यम से हमारी आध्यात्मिक यात्रा अर्थात् मन्त्र से साक्षात्कार की यात्रा सहज ही सफल हो सकती है।

आकृति और रंग का मनो-नियन्त्रण में सर्वाधिक महत्त्व है। कृति आकृति हीन होकर कैसे जीवित रह सकती है ? कृति को जैव धरातल पर आना ही होगा। इसके बाद ही वह भावलोक की अनन्तता में शाश्वत विचरण कर सकती है।

णमोकार मन्त्र के अक्षर, तत्त्व और रंग

वर्ण	तत्त्व	रंग
णमो	आकाश	सफेद
अ	वायु	"
रि	अग्नि	"
हं	आकाश	"
ता	वायु	"
णं	आकाश	"
णमो	आकाश	लाल
सि	जल	"
द्धा	पृथ्वी	"
णं	आकाश	"
णमो	आकाश	पीला
आ	वायु	"
य	वायु	"
रि	अग्नि	"
या	वायु	"
णं	आकाश	"

णमो	आकाश	नीला
उ	पथ्वी	"
व	जल	"
ज्झा	पृथ्वी	"
या	वायु	"
णं	आकाश	"

णमो	आकाश	काला
लो	पृथ्वी	"
ए	वायु	"
स	जल	"
व्व	जल	"
सा	जल	"
हू	आकाश	"
णं	आकाश	"

सम्पूर्ण मन्त्र में पृथ्वी तत्त्व संख्या 4, जल तत्त्व संख्या 5, अग्नि तत्त्व संख्या 2, वायु तत्त्व संख्या 7, आकाश तत्त्व संख्या 12 है।

योग और ध्यान के सन्दर्भ में णमोकार मन्त्र

समस्त विश्व के ऋषियों, सन्तों और विद्वानों ने अपने जीवन के अनुभव के आधार पर मानव के दुःखों का मूल-कारण, चित्त की विकृति से उत्पन्न होने वाली अशान्ति को माना है। शारीरिक कष्टों का प्रभाव भी मन पर पड़ता है। पर, मन यदि स्वस्थ एवं प्रकृत्या शान्त है तो वह उसे सहज एवं निराकुल भाव से सह लेता है। मानसिक रुग्णता सबसे बड़ी बीमारी है। इसी मन की भटकन या दिशान्तरण को रोकने के लिए सबसे बड़ी भूमिका अदा करता है। वस्तुतः चित्त का अवांछित दिशान्तरण रुकना ही योग है। महर्षि पतंजलि ने अपने योग शास्त्र में कहा है 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।' जैन शास्त्रों में भी चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है। आत्मा का विकास योग और ध्यान की साधना पर ही अवलम्बित है। योगबल से ही केवल-ज्ञान की प्राप्ति होती है और समस्त कर्मों का क्षय किया जाता है। सभी तीर्थंकर परमयोगी थे। समस्त ऋद्धियां और सिद्धियां योगियों की दासियां हो जाती हैं परन्तु वे कभी इनका प्रयोग नहीं करते। इनकी तरफ दृष्टिपात भी नहीं करते।

योगशब्द का अर्थ और व्याख्या—युज् धातु से घञ् प्रत्यय के योग से 'योग' शब्द सिद्ध होता है। 'युज्' शब्द द्वयर्थक है। जोड़ना और मन को स्थिर करना ये दो अर्थ योग शब्द के हैं। प्रथम अर्थ तो सामान्य जीवन से सम्बद्ध है। द्वितीय अर्थ ही प्रस्तुत सन्दर्भ में हमारा अभिप्रेत है। मन को संसार से मोड़कर और अध्यातम में जोड़कर स्थिर करना ही योग है। योग के इसी भाव को कर्म योग के प्रसंग में 'श्रीमद् भगवत्गीता' में 'योगः कर्मसु कौशलयम्' कहकर प्रकट किया गया है। 'गीता' में कर्त्तव्य कर्म को प्रधानता दी गयी है। कर्म में कौशल चित्त की एकाग्रता के अभाव में सम्भव नहीं है। जैन शास्त्रों में ध्यान शब्द

का प्रयोग प्राय: योग के अर्थ में किया गया है। योग के आठ अंग माने जाते हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि। इन योगाङ्गों के निरन्तर अभ्यास से साधक का चित्त सुस्थिर हो जाता है। तन के नियन्त्रण और वशीकरण का मन पर सहज ही व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसीलिए व्रत उपवास आदि भी किये जाते हैं।

यम और नियम—जैन धर्म में त्याग और निवृत्ति का प्राधान्य है। अत: यम-नियम के स्वरूप को निवृत्ति के धरातल पर समझना होगा। विभाव अर्थात् ऐसे सभी भाव जो मानव की सांसारिक लिप्सा का पोषण करते हैं उनसे दूर रहकर स्वभाव अर्थात् आत्म स्वरूप में लीन होना यम-नियम का मूल स्वर है। संयम यम का ही विकसित रूप है। यम के मुख्य दो भेद हैं—प्राणि-संयम एवं इन्द्रिय-संयम। मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदन से किसी भी प्राणी की हिंसा न करना और यथासम्भव रक्षा करना प्राणी संयम है। अपनी पंचेन्द्रियों पर मन, वचन, काय से संयम रखना इन्द्रिय संयम है। हमें राग और द्वेष दोनों से ही बचना है। ये दोनों ही संसार के कारण हैं। नियम के अन्तर्गत व्रत, उपवास, सामयिक पूजन एवं स्तवन आदि आते हैं। इनका यथाशक्ति निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए। योगसाधन में हम शारीरिक और मानसिक नियन्त्रण द्वारा आत्मा के विशुद्ध स्वरूप तक पहुंचते हैं। यम, नियम के द्वारा हम इहलोक और परलोक को सही समझकर अपना जीवन सुचारु रूप से चला सकते हैं।

आसन—'इच्छा निरोधस्तप:' अर्थात् इच्छाओं को रोकना और समाप्त करना तप है। एक संकल्पवान् व्यक्ति ही अपने जीवन के सही लक्ष्य तक पहुंच सकता है। मन के नियन्त्रण और उसकी शुचिता के लिए शरीर को भी स्वस्थ एवं अनुकूल रखना होगा। यह कार्य आसन द्वारा सम्भव है। आसन का अर्थ है होने की स्थिति या बैठने की पद्धति। योगी को आसन लगाने का अभ्यास करना परमावश्यक है। योगासन हमें स्वस्थ रखने में तथा हमारे मन को पवित्र एवं जागृत रखने में अचूक शक्ति है। सामान्यतया आसनों की संख्या शताधिक है। हठयोग में तो आसनों की संख्या सहस्रों तक है। जीव यौनियों के समान आसनों की संख्या भी चौरासी लाख बतायी है। प्रधानता के

आधार पर केवल चौरासी आसन ही मान्य एवं प्रचलित हैं। आङ् उपसर्ग पूर्वक सन् धातु से संज्ञारूप आसन शब्द निष्पन्न होता है। आङ् का अर्थ है—मर्यादा पूर्वक तथा पूर्णतया और सन् का अर्थ है—बैठना या ठहरना। स्पष्ट है कि आसन से शरीर का ही नहीं मन का भी परिष्कार होता है। मन्त्र-पाठ में भी आसन का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

योगी अथवा गृहस्थ को चाहिए कि वह ध्यान के लिए उचित स्थान एवं उचित आसन को चुने। सिद्धक्षेत्र, जलाशय (नदी तट, समुद्र तट) पर्वत, अरण्य, गुफा, चैत्यालय अथवा एकान्त, शान्त, पवित्र स्थान आसन के लिए उपयोगी हैं। आसन चौकी पर, चट्टान पर, बालुका पर या स्वच्छ भूमि पर लगाना चाहिए। पद्मासन, पर्यंकासन, वज्रासन, सुखासन, कायोत्सर्ग एवं कमलासन ध्यान के लिए उपयोगी आसन हैं। साधक अपनी शारीरिक शक्ति के अनुरूप आसन लगा सकता है। बिछावन को अर्थात् चटाई आदि को भी आसन कहा गया है। सूत, कुश, तृण एवं ऊन का आसन हो सकता है। ऊन का आसन श्रेष्ठ माना जाता है। शरीर यन्त्र को साधना के अनुरूप बनाना ही आसन का उद्देश्य है। शरीर की पूरी क्षमता श्रेष्ठ योग साधना के लिए परमावश्यक है। योगासन और शारीरिक व्यायाम में अन्तर है। शारीरिक व्यायाम केवल शरीर की पुष्टता तक ही सीमित है। परन्तु योगासन में शारीरिक स्वास्थ्य, मन और वाणी की निर्मलता का साधन मात्र है।

सामान्यतया आसनों के तीन प्रकार हैं—१. **ऊर्ध्वासन**—खड़े होकर किया जाता है। २. **निषीदन आसन**—बैठकर किया जाता है। ३. **शयन आसन**—लेटकर किया जाता है। इन आसनों के कुछ प्रकार ये भी हैं—ऊर्ध्वासन—सम्पाद, एकपाद, कायोत्सर्ग निषीदन-पद्मासन, वीरासन, सुखासन, सिद्धासन, भद्रासन। शयन आसन—दण्डासन, धनुरासन, शवासन, मत्स्यासन, गर्भासन, भुजंगासन।

शुभचन्द्राचार्य कृत ज्ञानार्णव में पद्मासन और कायोत्सर्ग ये दो ही आसन ध्यान करने के लिए श्रेष्ठ बताए गये हैं।

कायोत्सर्गश्चपर्यङ्कः प्रशस्तं केश्चिदीरितम् ।
देहिनावीर्यवैकल्यात् काल दोषेय सम्प्रति ।।

—ज्ञानार्णव प्र. 19, श्लोक 22

प्राणायाम—श्वास एवं उच्छ्वास के साधने की क्रिया को प्राणायाम कहते हैं। शारीरिक सामर्थ्य बढ़ाने के साथ-साथ ध्यान में मानसिक एकाग्रता बढ़ाने के लिए प्राणायाम किया जाता है। वास्तव में शारीरिक वायु को (पंच पवन या पंच प्राण) साधना ही प्राणायाम है। प्राणायाम के सामान्यतया तीन भेद हैं—पूरक, रेचक, कुम्भक।

पूरक—नासिका छिद्र के द्वारा वायु को खींचकर शरीर में भरना पूरक प्राणायाम कहलाता है। **रेचक**—इस खींची हुई पवन को धीरे-बाहर निकालना रेचक है। **कुम्भक**—पूरक पवन को नाभि के अन्दर स्थिर करना कुम्भक प्राणायाम है।

वायुमंडल चार प्रकार का है—पृथ्वीमंडल, जलमंडल, वायुमंडल एवं अग्निमंडल। इन चारों प्रकार के पवनों को भीतर लेने और बाहर फेंकने से जय, पराजय, लाभ, हानि संभव होते हैं। योगी इन पवनों को नियन्त्रित करके अनेक प्रकार के लौकिक एवं पारलौकिक चमत्कारों का अनुभव करते हैं। नियन्त्रित प्राणवायु के साथ मन को हृदयकमल में विराजित करने वाला योगी परमशान्त निर्विषयी और सहजानन्दी होता है।

प्राण के प्रकार—प्राण एक अखंड शक्ति है उसे विभाजित नहीं किया जा सकता। फिर भी सुविधा और जीवन-संचालन की दृष्टि से उसके पांच भाग किये जाते हैं—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान।

प्राण—प्राण का मुख्य स्थान कंठ नली है। यह श्वास पटल में है। इसका कार्य अविराम गति है। श्वास-प्रश्वास एवं भोजन नलिका से इसका सीधा सम्बन्ध है। **अपान**—नाभि से नीचे इसका स्थान है। यह मूलाधार से जुड़ी हुई शक्ति है। यह वायु स्वाभावतः अधोगामिनी है। यह प्राण वायु (अपान वायु) गुदा, आंत एवं पेट का नियन्त्रण करती है। यह ऊर्ध्वमुखी होने पर प्राण घातक हो सकती है। प्रायः यह ऊर्ध्व-मुखी होती नहीं है। **समान**—हृदय और नाभि के मध्य इसकी स्थिति है। पाचन क्रिया में यह सहायक है। **उदान**—इससे नेत्र, नासिका, कान

एवं मस्तिष्क प्रभावित एवं सक्रिय होते हैं। **व्यान**—समस्त शरीर को प्रभावित करता है। अंगों की संधियां, पेशियां और कोशिकाएं इससे क्रियाशील रहती हैं। **ध्यान रखें**—1. आसन के बाद प्राणायाम करें। 2. दूषित वातावरण में प्राणायम न करें। 3. भोजन के बाद 3 घंटे तक प्राणायाम न करें। 4. प्राणायाम प्रातः (6 से 7 बजे) तथा सांय (5 से 6 बजे) करें। 5. प्राणायाम के लिए पद्मासन एवं सिद्धासन उत्तम है। 6. प्राणायाम के पूर्व मलाशय एवं मूत्राशय रिक्त हो। 7. तेज हवा में प्राणायाम न करें। 8. प्राणायाम के समय शरीर शिथिल एवं मुखाकृति सौम्य रहे। मन तनाव रहित रहे।

प्राणायाम की महत्ता के विषय में 'ज्ञानार्णव' में कहा गया है—

"जन्मशत जनितमग्रं, प्राणायामात् विलीयते पापम्।
नाड़ी युगलस्यान्तं, यतेर्जिताक्षस्य वीरस्य।।"

अर्थात् प्राणायाम से सैकड़ों जन्मों के उग्र पाप दो घण्टों में समाप्त हो जाते हैं। साधक जितेन्द्रिय बनता है।

प्रत्याहार—इन्द्रियों और मन को विषयों से पृथक् कर आत्मोन्मुख करने की प्रक्रिया है। मन को ऊपर उठाना अर्थात् मन का ऊर्ध्वीकरण करना (आज्ञाचक्र में ले आना) प्रत्याहार की पूर्णता है। प्रत्याहार फलीभूत हो जाने पर योगी को संसार की कोई भी वस्तु प्रभावित नहीं कर पाती है। प्राणायाम के पश्चात् इस चिन्तन में लीन होना होता है। प्राणायाम से शरीर और श्वास वश में होती है। प्रत्याहार से मन निर्मल और निराकुल होकर आत्मा में निमज्जित हो जाती है।

धारणा, ध्यान और समाधि—युवाचार्य महाप्रज्ञ अपनी पुस्तक 'जैन योग' में कहते हैं—"जैन धर्म की साधना पद्धति का नाम मुक्ति-मार्ग था। उसके 3 अंग है। सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक् चरित्र। महर्षि पंतजलि के योग की तुलना में इस रत्नत्रयी को जैन योग कहा जा सकता है। जैन साधना पद्धति में अष्टांग योग के सभी अंगों की व्यवस्था नहीं है। वहां प्राणायाम, धारणा और समाधि नहीं है। शेष अंगों का भी प्रतिपादन नहीं है।"

प्रत्याहार के अन्तर्गत मन आत्मा में लीन हो जाता है। इसमें स्थिरता और लीनता की दिशा में धारणा समर्थ है। धारणा से

ध्यान में निश्चलता आती है। आत्मोपलब्धि या सत्योपलब्धि के लिए संकल्प चाहिए और इस संकल्प की आवृत्ति सदा एकाग्र ध्यान में होती रहे, यह आवश्यक है। संकल्प का एक दिन हिमालय को हिला सकता है, जबकि अनिश्चितता की पूरी उम्र हिमालय का एक कण भी नहीं हिला सकती। संकल्प से ही ऊर्जा का प्रस्फुटन होता है। प्रचलित अर्थ में ध्यान का अर्थ होता है किसी आवश्यक कार्य में तात्कालिक रूप से लगना-मन को एकाग्र करना। काम हो जाने पर निश्चिन्त हो जाना। फिर अपनी आलस्य और प्रमाद की स्थितियों में खो जाना। यह बात योगपरक ध्यान में नहीं होती है। वहां तो स्थिरता और लौटने की संकल्पात्मकता होती है। योग, ध्यान और समाधि ये शब्द प्रायः समानार्थी भी माने गये हैं। ध्यान की चरम सीमा ही समाधि है। शरीर और मन की एकरूपता न हो तो ध्यान का पूर्ण स्वरूप नहीं बनता है। हाथ में माला फेरी जा रही हो और मन मदिरालय में हो तो क्या होगा? पहली स्थिति तो निश्चित रूप से असाध्य रोग की है। दूसरी स्थिति में वर्तमान तो ठीक है पर आगे कभी भी खतरा हो सकता है। इन्द्रियां और विषय आकृष्ट कर सकते हैं। अतः ध्यान में शरीर और मन की एकरूपता आत्यावश्य है। संकल्प आवृत्ति और सातत्य चाहता है।

ध्यान चार प्रकार का बताया गया है—आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। इनमें आर्त और रौद्र ध्यान कुध्यान हैं तथा धर्म और शुक्ल ध्यान शुभ ध्यान है। सांसारिक व्यथाओं को दूर करने के लिए अथवा कामनाओं की पूर्ति के लिए तरह-तरह के संकल्प करना आर्तध्यान है और हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि के सेवन में आनन्दित होना रौद्र ध्यान है। इन्हें पाने के लिए तरह-तरह के कुचक्रों की कल्पना करना भी रौद्र ध्यान ही है। धार्मिक बातों का निरन्तर चिन्तन करना और नैतिक जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठा रखना धर्म ध्यान है। शुक्ल ध्यान श्वेतवर्ण के समान परम निर्मल होता है और इसे अपनाने वाला साधक भी परम निर्मल चित्त का होता है।

णमोकार महामन्त्र का योग के साथ गहरा सम्बन्ध है। योग साधना के द्वारा हम शरीर और मन को सुस्थिर करके शान्त चित्त से पंच परमेष्ठी की आराधना कर सकते हैं। "ध्यान चेतना की वह

अवस्था है जो अपने आलम्बन के प्रति पूर्णतया एकाग्र होती है। एकाकी चिन्तन ध्यान है। चेतना के विराट आलोक में चित्त विलीन हो जाता है।"

श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया से प्राणायाम का सम्बन्ध बहुत अधिक नहीं है, यह ध्यान में रखना है। प्राणायाम की साधना के विभिन्न उपाय हैं। श्वास-प्रश्वास की क्रिया उनमें से एक है। प्राणायाम का अर्थ है प्राणों का संयम। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार सम्पूर्ण जगत् दो पदार्थों से निर्मित है। उनमें से एक है आकाश। यह आकाश एक सर्वानुस्यूत सत्ता है। प्रत्येक वस्तु के मूल में आकाश है। यही आकाश वायु, पृथ्वी, जल आदि रूपों में परिचित होता है। आकाश जब स्थूल तत्त्वों में परिचित होता है। तभी हम अपनी इन्द्रियों से इसका अनुभव करते हैं। सृष्टि के आदि में केवल एक आकाश तत्त्व रहता है यह आकाश किस शक्ति के प्रभाव से जगत् में परिणत होता है—प्राण शक्ति से। जिस प्रकार इस प्रकट जगत् का कारण आकाश है उसी प्रकार प्राण शक्ति भी है।

प्राण का आध्यात्मिक रूप—योगियों के मतानुसार मेरुदंड के भीतर इड़ा और पिंगला नाम के दो स्नायविक शक्ति प्रवाह और मेरुदंडस्थ मज्जा के बीच एक सुषुम्ना नाम की शून्य नली है। इस शून्य नली के सबसे नीचे कुण्डलिनी का आधारभूत पद्म अवस्थित है। वह त्रिकोणात्मक है। कुण्डलिनी शक्ति इस स्थान पर कुंडलाकार रूप में अवस्थित है जब यह कुंडलिनी शक्ति जगती है, तब वह इस शून्य नली के भीतर से मार्ग बनाकर ऊपर उठने का प्रयत्न करती है और ज्यों-वह एक-एक सोपान ऊपर उठती है, त्यों त्यों मन के स्तर पर स्तर खुलते चले जाते हैं और योगी को अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियों का साक्षात्कार होने लगता है। उनमें अनेक शक्तियां प्रवेश करने लगती हैं। जब कुंडलिनी मस्तक पर चढ जाती है, तब योगी सम्पूर्ण रूप से शरीर और मन से पृथक् होकर अपनी आत्मा में लीन हो जाता है। इस प्रकार आत्मा अपने मुक्त स्वभाव की उपलब्धि करती है।

कुंडलिनी को जगा देना ही तत्त्व-ज्ञान, अनुभूति या आत्मानुभूति का एकमात्र उपाय है। कुंडलिनी को जागृत करने के अनेक उपाय हैं। किसी की कुंडलिनी भगवान के प्रति उत्कट प्रेम से ही जागृत होती है।

किसी को सिद्ध महापुरुषों की कृपा से, और किसी को सूक्ष्म ज्ञान विचार द्वारा। लोग जिसे अलौकिक शक्ति या ज्ञान कहते हैं, उसका जहां कुछ प्रकाश दृष्टिगोचर हो तो समझना चाहिए कि वहां कुछ परिमाण में यह कुंडलिनी शक्ति सुषुम्ना के भीतर किसी तरह प्रवेश कर गई है। कभी कभी अनजाने में मानव से कुछ अद्भुत साधना हो जाती है और कुंडलिनी सुषुम्ना में प्रवेश करती है।

उल्लिखित विवेचन अनेक विद्वानों और सन्तों के सुदीर्घ चिन्तन और अनुभव का सार है। इससे स्पष्ट है कि हमारे अन्दर एक सर्व-नियन्त्रक सूक्ष्म शक्ति है जो प्रायः सुषुप्त अवस्था में रहती है। मानव के चैतन्य में इसका जागृत होना परम आवश्यक है, परन्तु प्रायः सभी प्राणी इस शक्ति को समझ ही नहीं पाते हैं। अलग-अलग धर्मों ने इसे अलग-अलग नाम दिये हैं। ब्रह्मचर्य और मानसिक पवित्रता इसके जागरण के प्रमुख आधार हैं। **ब्रह्मचर्य सर्वोपरि है**—मानव शरीर में जितनी शक्तियां हैं उनमें ओज सबसे उत्कृष्ट कोटि की शक्ति है। यह ओज मस्तिष्क में संचित रहता है। यह ओज जिसके मस्तिष्क में जितने परिमाण में रहता है, वह मानव उतना ही अधिक बली, बुद्धिमानी और अध्यात्मयोगी होता है। एक व्यक्ति बहुत सुन्दर भाषा में बहुत सुन्दर भाव व्यक्त करता है परन्तु श्रोतागण आकृष्ट नहीं होते। दूसरा व्यक्ति न सुन्दर भाषा प्रयोग करता है और न सुन्दर भाव ही व्यक्त करता है, फिर भी लोग उसकी बात से मुग्ध हो जाते हैं। ऐसा क्यों? वास्तव में यह चमत्कार ओज शक्ति की सम्मोहकता का ही है। ओज तत्त्व चुप रहकर भी बोलता और मोहित करता है। यही मूल बात भीतरी नैतिकता और निष्ठा से प्रसूत वाणी की है, यह सब में नहीं होती है।

मानव अपनी सीमित ओज शक्ति को बढ़ा सकता है। मानव यदि अपनी काम क्रिया और दुर्व्यसनों में नष्ट हो रही शक्ति को रोक ले और सहज अध्यात्म मूलक ओज में लग सके तो वह विश्व में स्वयं का और दूसरों का अपार हित कर सकता है। मानव की शक्ति और आयु का सबसे अधिक क्षय कामलोलुपता के कारण होता है।

हमारे शरीर का सबसे नीचे वाला केन्द्र (मूलधारक चक्र) शक्ति का नियामक एवं वितरक केन्द्र है! योगी इसीलिए इस पर विशेष

ध्यान देते हैं। ये सारी काम शक्ति को ओज धातु में परिणत करते हैं। कामजयी स्त्रीपुरुष ही इस ओज धातु को मस्तिष्क में संचित कर सकते हैं। यही कारण है कि समस्त देशों में ब्रह्मचर्य को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। स्पष्ट है कि णमोकार मन्त्र के साधक में ब्रह्मचार्य पालन भी पूर्ण शक्ति आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। कुंडलिनी जागरण और आध्यात्मिक साक्षात्कार ब्रह्मचर्य पालन पर आधृत है। मन्त्र शक्ति का प्रस्फुटन कामी व्यक्ति में नहीं हो सकता।

योग साधना और मन्त्र साधना कामजयी व्यक्ति ही कर सकता है। योग से कामजय संभव है और कामजयी को मन्त्रसिद्धि संभव है। काम समस्त अनर्थों का मूल है—

"विषयासक्तचित्तानां गुणः कोवा न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्॥

अर्थात् विषयी-कामी पुरुषों का कौन-सा गुण नष्ट नहीं होता? सभी गुण ध्वस्त हो जाते हैं। वैदुष्य, मानुष्य, आभिजात्य एवं सत्यवाक् आदि सभी गुण नष्ट हो जाते हैं और गुण हीन व्यक्ति शव ही है। योग की सम्पूर्णता के लिए और उसकी मन्त्र सम्बद्धता के लिए शरीर की भीतरी रचना की जानकारी और उपयोगिता परमावश्यक है।

योग और शरीर चक्र—मनुष्य स्थूल शरीर तक ही सीमित नहीं है। वह सूक्ष्म शरीर एवं स्वप्न शरीर आदि भेदों से आगे बढ़ता हुआ समाधि की ओर गतिशील हो जाता है। शरीर के इन सभी रूपों को पांच शरीर भी कहा गया है। अन्नमय शरीर, प्राणमय शरीर, मनोमय शरीर, विज्ञानमय शरीर और आनन्दमय शरीर। इन शरीरों को कोश भी कहा गया है। इसी प्रकार औदारिक, वैक्रियक, तैजस, आहारक एवं कार्माण के रूप में जैन शास्त्रों में शरीर भेदों का वर्णन है। इनसे परे आत्मा है। इन शरीरों की ऊपरी सतह पर ईथर शरीर (आकाश-वायु शरीर) है। ईथर के भण्डार स्थान शरीर चक्र कहलाते हैं। ये चक्र ईथर शरीर के ऊपर रहते हैं। प्रत्येक चक्ररूपी फूल मेरूदण्ड (रीढ) के पिछले भाग से अलग-अलग स्थान से प्रकट होता है। मेरूदण्ड से (पीठ की तरफ से) चक्र-रूपी पुष्प निकलकर ईथर शरीर की ऊपरी सतह पर खिलते हैं।

प्रमुख सात चक्र हैं—

चक्र	स्थान
1. मूलाधार चक्र	मेरुदंड के नीचे मूल में
2. स्वाधिष्ठान चक्र	गुप्तांग के ऊपर
3. मणिपुर चक्र	नाभिक के ऊपर
4. अनाहत चक्र	हृदय के ऊपर
5. विशुद्ध चक्र	कंठ में
6. आज्ञा चक्र	दोनों भौंहों के नीचे
7. सहस्त्रार चक्र	मस्तक के ऊपर

ये चक्र सदैव क्रियाशील रहते हैं और अपने मुख छिद्र में दिव्य-शक्ति (प्रणावायु) भरते रहते हैं। इस शक्ति के अभाव में स्थूल शरीर जीवित नहीं रह सकता।

कुण्डलिनी-स्वरूप, क्रिया और शक्ति—यह मानव-मानवी के मेरुदण्ड के नीचे विद्यमान एक विकासशील शक्ति है। यही जीवन का मूलाधार है। यह हमारी रीढ़ के नीचे सुषुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। इसको ठीक समझने और उपयोग करने की शक्ति प्रायः मानव में नहीं होती है। यह शक्ति लाभकारी भी है और नाशकारी भी। यदि पूर्ण जानकारी न हो तो इसे न छेड़ना ही उचित है। अनेक मनुष्यों में कभी-अद्भुत अतिमानवीय एवं अति प्राकृतिक दैवी एवं दानवी क्रियाएं देखी जाती हैं। यह सब अज्ञात रूप से जागी हुई कुण्डलिनी का ही कार्य है—आंशिक कार्य है। कुण्डलिनी-जागरण में बहुत-सी बातें घटित होती हैं—जैसे सोते-सोते चलना, रात्रि में स्वप्न दर्शन, अतिनिद्रा एवं अनिद्रा। किसी समस्या का त्वरित समाधान मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध जाना भी इसका ही चमत्कार है। मूलाधार में शक्ति संग्रहीत होती है। वहीं से सम्पूर्ण चक्रों में वितरित होती है। पृथ्वी और सूर्य के केन्द्रों से हम शक्ति-संग्रह करके मूलाधार में भरते हैं। इसी शक्ति को चक्रों की उत्तेजना के लिए वितरित भी करते हैं। कुण्डलिनी जागृत होने पर बर्छी की नोक की तरह ऊपर को चढ़ती हुई अन्ततः जीवात्मा में प्रवेश करती है और लोकोत्तर चैतन्य उत्पन्न करती है। कुण्डलिनी-जागरण के प्रभाव के सम्बन्ध में अनेक ऋषियों, सन्तों एवं

महर्षियों ने अपने अनुभव समय-समय पर प्रकट किये हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस कुण्डलिनी उत्थान का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि कुछ झुनझुनी-सी पांव से उठकर सिर तक जाती है। सिर में पहुंचने के पूर्व तक तो होश रहता है, पर उसके सिर में पहुंचने पर मूर्च्छा आ जाती है। आंख, कान अपना कार्य नहीं करते। बोलना भी संभव नहीं होता। यहां एक विचित्र निःशब्दता एवं समत्त्व की स्थिति उत्पन्न होती है। मैं और तू की स्थिति नहीं रहती। कुण्डलिनी जब तक गले में नहीं पहुंचती; तब तक बोलना संभव है। जो झन-झन करती हुई शक्ति ऊपर चढ़ती है, वह एक ही प्रकार की गति से ऊपर नहीं चढ़ती। शास्त्रों में उसके पांच प्रकार हैं। 1. चींटी के समान ऊपर चढ़ना। 2. मेंढक के समान दो-तीन छलांग जल्दी-जल्दी भरकर फिर बैठ जाना। 3. सर्प के समान वक्रगति से चलना। 4. पक्षी के समान ऊपर की ओर चलना। 5. बन्दर के समान छलांग भरकर सिर में पहुंचना। किसी ज्योति अथवा नाद का ध्यान करते-करते मन और प्राण उसमें लय हो जाएं तो वह समाधि है। कुण्डलिनी-जागरण या चैतन्य स्फुरण ही योग का लक्ष्य होता है। कुण्डलिनी पूर्णतया जागृत होकर सहस्त्रार चक्र में पहुच कर अन्ततः समाधि में परिणत हो जाती है।

ध्रुव सत्य तक पहुंचने के दो साधन हैं—एक है तर्क और दूसरा है अनुभव या साक्षात्कार। पदार्थमय जगत् भी स्थूल और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार का है। स्थूल जगत् को तो तर्क या विज्ञान द्वारा समझा जा सकता है, परन्तु सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थ की भीतरी परिस्थितियां तर्क द्वारा स्पष्ट नहीं होती। प्रयोग भी असफल होते हैं। इन्द्रिय, मन और बुद्धि की सीमा समाप्त हो जाती है। योगियों, सन्तों और ऋषियों का चिर साधनापरक अनुभव वहां काम करता है। पदार्थसत्ता से परे भावजगत् है। भावजगत के भी भीतर स्तर पर स्तर है। प्रकट मन, अर्धप्रकट मन और अप्रकट मन—ये तीन प्रमुख स्तर हमारे मन के हैं। मनोविज्ञान भी कहीं थक जाता है इन्हें समझने में। सन्तों और योगियों का अनुभव कुछ ग्रन्थियां खोलता है, परन्तु सबका अनुभव एक-सा नहीं होता है अनुभूति की क्षमता भी सब की एक-सी नहीं होती। उस अनुभव का साधारणीकरण कैसे हो, यह भी एक समस्या रहेगी ही।

अनुभव और प्रामाणिकता या विश्वसनीयता का मेल होना ही चाहिए। अब तक का समस्त विवेचन जो अन्यान्य स्रोतों पर आधारित है, केवल मन्त्रसाधना में योग की भूमि को प्रस्तुत करने का एक प्रयत्न है। योग साधना स्वयं में एक सिद्धि है, किन्तु यहां हमने योग को मन्त्राराधना या मन्त्रसाधना का एक सशक्त एवं अनिवार्य साधन माना है। हम उक्त योग स्वरूप, सिद्धान्त या प्रयोग पद्धति को माने या किसी अन्य स्रोत की बात को मानें यह निर्विकार है कि मन, वाणी एवं कर्म-कायगत सम्पूर्ण नियन्त्रण के अभाव में महामन्त्र तो क्या, साधारण सांसारिक जादू टोना भी सिद्ध न होगा !

योग साधना, ध्यान और जाप से हम अपनी आत्मा में पवित्रता लाना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हम महामन्त्र से साक्षात्कार कर सकें। इसी के लिए हम योग साधना रूपी साधन को अपनाते हैं। इससे हमारे शरीर में शक्ति, वाणी में संयम और मन में दृढ़ता और अचंचलता आती है। शारीरिक स्वस्थता और मनगत निश्चलता से हम मन्त्रराधना में लगेंगे तो अवश्य ही वीतराग अवस्था तक पहुंच सकेंगे। केवलज्ञान का साक्षात्कार कर सकेंगे—अपनी आत्मा की विशुद्धवस्था पा सकेंगे। अन्तिम सत्य एक ही होता है और उसकी स्थिति भी एक ही होती है, उसके पाने के प्रकार और रास्ते अलग-अलग हो सकते हैं। उत्कृष्ट योगी में लक्ष्य की महानता होती है, रास्तों का आग्रह नहीं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है--योग का अर्थ है जुड़ना। स्वयं के द्वारा, स्वयं के लिए, स्वयं में (स्वात्मा में) जुड़ना ही योग है। अयोग या कुयोग (सांसारिकता) से हटना और अपने मूल में परम शान्तभाव से रहना योग है। वस्तुतः मन, वाणी और कर्म का समन्वय, नियन्त्रण एवं उदात्तीकरण भी योग है। मन्त्रों के आराधन के लिए यह आधार शिला है। योगपूत व्यक्ति सहज ही मन्त्र से साक्षात्कार कर सकता है, जबकि योगहीन असंयमी एवं अवसरवादी व्यक्ति सौ वर्षों के तप और योग से शतांश भी मन्त्र-सान्निध्य प्राप्त नहीं करेगा। संसार के तुच्छ कार्यों की सफलता के लिए भी लोग जी-जान से एक तान होकर जुट जाते हैं—यह स्वयं में योग का भौतिक लघु रूप है। तब मन्त्रों के

सान्निध्य एवं आध्यात्मिक उन्नयन के लिए योग-साधना की महनीयता स्वतः सिद्ध है।

"योग समाप्त होते हैं, वही योग का आदि विन्दु है। योग का मूल स्रोत अयोग का अर्थ है केवल आत्मा। योग का अर्थ है आत्मा के साथ सम्बन्ध की स्थापना। अयोग अयोग होता है, योग-योग होता है, वह न जैन होता है, न बौद्ध और न पातंजल।" योग विज्ञान है और है प्रयोगात्मक मनोविज्ञान। जीवन को अमर सार्थकता योगमय नियमित कार्यक्रम ही दे सकता है।

णमोकार महामन्त्र का प्रत्येक अक्षर अक्षय शक्तियों का भण्डार है। इनके उद्‌घाटन और तादात्म्य की स्थिति योग द्वारा ही जीव में संभव है। अतः स्पष्ट है कि योग-मार्ग से साक्षात्कृत मन्त्र स्वतः जीव में या साधक में सहज ही विश्वजनीन समत्व एवं शान्ति का परात्पर उद्‌घोष करता है। दृष्टि और दृष्टिकोण का यही सर्वांगीण विस्तार मन्त्रों का मर्म है। शत प्रतिशत लक्ष्यात्मकता योग का प्राण है। □

महामन्त्र णमोकार अर्थ, व्याख्या (पदक्रमानुसार)

विश्व के प्रत्येक धर्म में चित्त की निर्मलता और तदनुसार आचरण की विशुद्धता को स्वीकार किया गया। इसके लिए सभी धर्मों ने एक अत्यन्त संक्षिप्त, पूर्ण एवं परम प्रभावकारी साधन के रूप में मन्त्रों को अपनाया है। मन्त्रों में भी सर्वत्र एक महामन्त्र होता ही है। वैदिक परम्परा में गायत्री महामन्त्र, बौद्ध परम्परा में त्रिसरण महामन्त्र, ईसाई, मुसलमान और सिक्ख धर्म में भी इबादत और ईशनाम स्मरण को महामन्त्रों की संज्ञा दी गयी है। जैन धर्म इस परम्परा का अपवाद नहीं है, अपितु इस धर्म में तो 'णमोकार महामन्त्र' को अनाद्यनन्त माना गया है।

मूल महामन्त्र :

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

अरिहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक के समस्त साधुओं को नमस्कार हो।

मन्त्र के प्रथम पद में अरिहन्त परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है। 'अरि' अर्थात् शत्रुओं को हन्त अर्थात् नष्ट करने वाले अरिहन्तों को नमस्कार हो। यह महामन्त्र अपनी मूल प्रकृति के अनुसार नमन और विनय गुण की आधार शिला पर स्थित है। विनय और नमन के मूल में श्रद्धा, गुणग्राहकता और अहिंसक दृष्टि के ठोस तत्त्व विद्यमान होने पर ही उसकी सार्थकता सिद्ध होती है। आशय यह है कि अरिहन्त परमेष्ठी आत्म-विकास के सशक्ततम विरोधी मोहनीय कर्म का क्षय करके ही अरिहन्त बनते हैं। अन्य तीन घातिया कर्म (ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय) तो अस्तित्ववान होकर भी निर्जीव होकर

अकिंचित्कर हो जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि मानव के आध्यात्मिक विकास में सबसे बड़ी बाधा है सांसारिक रिश्तों में घोर रागात्मकता, सांसारिक सुख-सम्पत्ति के प्रति अटूट लगाव।

यह आसक्ति यह लगाव एक ऐसी मदिरा है जिसमें मानव का समस्त विवेक पूर्णतया नष्ट हो जाता है। इस एक अवगुण के आ जाने पर अन्य अवगुण तो अनायास आ ही जाते हैं। इसी प्रकार मन से आसक्ति हट जाने पर सारे विषय भोग स्वतः सूखकर समाप्त हो जाते हैं। णमोकार मन्त्र के द्वारा भक्त की उत्कट चैतन्य शक्ति (आभामंडल) निर्णायक एवं निर्माणकारी दिशा में परिवर्तित होती है। ज्यों-ज्यों मन्त्र भक्त के चैतन्य में उतरता जाता है त्यों-त्यों उसका सब कुछ उदीप्तीकृत होता जाता है।

"मन्त्र आभामण्डल को बदलने की आमूल प्रक्रिया है। आपके आस-पास की स्पेस और इलेक्ट्रो डायनेमिक फील्ड बदलने की प्रक्रिया है।[1]

× × ×

अरिहन्त मंजिल है, जिसके आगे फिर कोई यात्रा नहीं है। कुछ करने को न बचा जहां, कुछ पाने को न बचा जहां, कुछ छोड़ने को भी न बचा जहां, सब समाप्त हो गया। जहां शुद्ध अस्तित्व रह गया, प्योर एक्जिस्टेंस जहां रह गया, जहां गन्ध मात्र रह गया, जहां होना मात्र रह गया, उसे कहते हैं अरिहन्त।

× × ×

लेकिन अरिहन्त शब्द है निगेटिव—नकारात्मक। उसका अर्थ है जिनके शत्रु समाप्त हो गये। यह 'पॉजिटिव' नहीं है, विधायक नहीं है। असल में इस जगत् में जो श्रेष्ठतम अवस्था है, उसको निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है।" है ससीम है, छोटा है, नहीं असीम है बड़ा है। नहीं बहुत विराट है। इसीलिए परमशिखर पर रखा है अरिहन्त को।

1. 'महावीर वाणी'—पृ० 41-42—ले० श्री रजनीश

धवला टीका प्रथम भाग में अरिहन्त शब्द की व्याख्या 'रज' अर्थात् रजोहनन शब्द से की गयी है।[1] इसका आशय यह है कि ज्ञानावरणी एवं दर्शनावरणी कर्म मानव के त्रिलोक एवं त्रिकालजीवी विषय बोध के अनुभोक्ता ज्ञान और दर्शन को प्रतिबन्धित कर देते हैं। जैसे धूल भर जाने पर दृष्टि में धुंध छा जाती है उसी प्रकार ये दोनों कर्म मानव का विकास रोक देते हैं। अतः इन्हें नष्ट करने के कारण ही अरिहन्त कहलाते हैं। शेष कर्म तो फिर स्वतः नष्ट होते ही हैं। इसी प्रकार रहस्य अभाव के साथ भी अरिहन्त शब्द का अर्थ किया गया है। रहस्य भाव का अर्थ है अन्तराय कर्म। शास्त्रानुसार अन्तरायकर्म का नाश शेष तीन घातिया कर्मों के अविनाभावी नाश का कारण है। ये व्याख्याएं आचार्यों ने आपेक्षिक दृष्टि से की हैं। सातिशय पूजा अरिहन्तों की होती है इस दृष्टि से भी अरिहन्तों को नमस्कार किया जाना सम्भव है। भगवान् के गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण इन पंच कल्याणकों में देवों द्वारा की गयी पूजाएं, मानवों द्वारा की गयी पूजाओं की तुलना में अपना वैशिष्ट्य रखती हैं। निश्चय नय की दृष्टि से सिद्ध अरिहन्तों से अधिक पूज्य हैं क्योंकि वे अष्ट कर्मों को नष्ट करके मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं। परन्तु अरिहन्तों से जीवमात्र को जो प्रत्यक्ष दर्शन एवं उपदेश का लाभ होता है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक सत्य है। अतः इसी दृष्टि से अरिहन्तों को महामन्त्र में प्राथमिकता दी गयी है।

महामन्त्र में पंच परमेष्ठी को समान रूप से नमस्कार किया गया है, किसी प्रकार का भेद रखकर न्यूनाधिकता से नमन नहीं किया गया है। तथापि मंथन विवक्षा में तो क्रम को अपनाना अनिवार्य होता ही है। इसी प्रकार यह एक प्रकार से स्वयम्भू मन्त्र है—अनादि—अनन्त मन्त्र है अतः इसकी महानता में शंका का कोई महत्त्व नहीं है। हां, इतना जरूर है कि मानव-मन, पद-क्रम के अनुसार अर्थ और महत्ता को घटित करता ही है, वह तर्क का सहारा भी लेता ही है। अरिहन्त

---

1. 'रजो हननाद्वा अरिहन्ता। ज्ञानदृगावरणानि रजांसीव।
रहस्यमावाद्वा अरिहन्ता। रहस्यमन्तरायः। तस्य शेष घातित्रियविनाशाविनाभाविनो भ्रष्ट बीजवन्निः शक्तीकृता घातिकर्मणो हननादरिहन्ता।'
"अतिशय पूजार्हत्वाद् वा अरिहन्ता"—धवला टीका प्रथम भाग 42

परमेष्ठी की गरिमा प्राथमिकता और अतिशयता सिद्ध करने में भी ऐसा हुआ भी है। इस पर दृष्टिपात आवश्यक है।

"जिसके आदि में अकार है, अन्त में हकार है और मध्य में बिन्दु सहित रेफ है वही (अर्हं) उत्कृष्ट तत्त्व है। इसे जानने वाला ही तत्वज्ञ है।"[1] अरिहन्त परमेष्ठी वास्तव में एक लोक-परलोक के संयोजक सेतु परमेष्ठी हैं। ये स्वयं परिपूर्ण हैं, प्रेरक हैं और हैं जीवन्मुक्त। अरिहन्त परमेष्ठी स्वयं तप, आराधना एवं परम संयम का जीवन व्यतीत करते हैं अतः सहज ही भक्त का उनसे तादात्म्य-सा हो जाता है और अधिकाधिक श्रद्धा उमड़ती है। अरिहन्त जीव दया और जीवकल्याण में जीवन का बहुभाग व्यतीत करते हैं। वास्तव में णमोकार मन्त्र का प्रथम पद ही उसकी आत्मा है—उसका प्राणाधार है। अरिहन्त विशेष रूप से वन्दनीय इसलिए हैं क्योंकि वे प्राणी मात्र की विशुद्ध अवस्था के पारखी हैं और इसी आधार पर 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' तथा 'भित्ती मे सब्बभूदेषु' उनकी दिनचर्या में हस्तामलकवत झलकते हैं—दिखते हैं। अरिहन्त की विराटता और जीव मात्र से निकटता इतनी अधिक है कि आज केवल अर्हत् में ही पंच परमेष्ठी के गर्भित कर लेने की बात जोर पकड़ती जा रही है। अर्हत् सम्प्रदाय की वर्धमान लोकप्रियता और देश-विदेश में उसकी नवचैतन्यमयी दृष्टि का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। अर्हत् नाद, अर्थ, आसन, ध्यान, मंगल, जप आदि के स्तर पर भी पूर्णतया खरे उतर चुके हैं। अर्हत् में अ से लेकर सम्पूर्ण मूलभूत का समाहार हो जाता है। अतः समस्त मन्त्र मातृकाओं के अर्हत् में गर्भित होने से इसकी स्वयं में पूर्ण मन्त्रात्मकता सिद्ध होती है। अरिहन्त ही मूलतः तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकरों में अतिशय और धर्मतीर्थ प्रवर्तन की अतिरिक्त विशेषता पायी जाती है अतः वे अरिहन्त तीर्थंकर कहलाते हैं। "राग द्वेष और मोह रूप त्रिपुर को नष्ट करने के कारण त्रिपुरारि, संसार में शान्ति स्थापित करने के कारण शंकर, नेत्रद्वय और केवलज्ञान से संसार के समस्त पदार्थों को देखने के कारण त्रिनेत्र एवं कर्म विचार को जीतने के कारण कामारि के रूप में अर्हत् परमेष्ठी मान्य होते हैं।"*

---

* मंगल मन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन—पृ॰ 41

पंचाध्यायीकार ने अरिहन्त की सबसे बड़ी विशेषता उनके लोकोपकारी एवं धर्मोपदेशक होने में मानी है।

> "दिव्यौदारिक देहस्थो धौतघाति चतुष्टयः
> ज्ञानदृग्वीर्य सौख्याद्: सोऽर्हन् धर्मोपदेशकः ॥"[1]

महामन्त्र है, इसे प्रमुख रूप से आध्यात्मिक जिजीविषा के लिए माना जाता है। इसमें चमत्कार को कोई स्थान नहीं है। "जो णमोकार मन्त्र की साधना नहीं कर सकते उन्हें चमत्कार की भाषा ही समझ में आती है। साधना करने के बाद जब अनुभूति हो जाती है तो मनुष्य को अन्दर में ही शक्ति का अनुभव होने लगता है। चमत्कार अरिहन्त परम्परा के विरुद्ध है क्योंकि अरिहन्त की परम्परा में धारणा के द्वारा सप्रविजयस्वत: हो जाती है। धारणा और ध्यान इनका मूल कारण है।"[2]..."अरिहंताणं में दो प्रकार की साधना की जाती है। एक अ, र—कंठ से नाभि की ओर, और फिर हं—शुरू करो—कण्ठ से नाभि तक जाओ। फिर बाद में सुषुम्ना के बीच तक। कण्ठ से नाभि तक फिर नाभि से सुषुम्ना तक शुद्ध करके मस्तिष्क तक पहुंचना, फिर इस शरीर में यात्रा करना, यह जो तरीका है, यही सिद्धि का रास्ता है। इसमें चमत्कार जैसी कोई बात नहीं है।"

मन्त्र की प्रभाव प्रक्रिया—

जिस प्रकार औषध का हमारे शरीर पर रासायनिक प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार मन्त्र का भी पड़ता है। मन्त्र का प्रभाव शरीर को पार कर, चैतन्यशक्ति पर भी पड़ता है। धीरे-धीरे हमारे मन को कसने वाली, दबोचने वाली प्रवृत्तियां क्षीण होकर समाप्त हो जाती हैं। मन्त्र का प्रत्येक अक्षर चिन्तन, मृदु उच्चारण एवं दीर्घ उच्चारणों के आधार पर प्रभाव क्रम पैदा करता है।

हमारी चेतना के प्रमुख तीन प्रवाह केन्द्र हैं— इडा, पिंगला और सुषुम्ना। वास्तव में ये तीन श्वास-स्वर हैं। इडा बायां स्वर है, पिंगला दायां स्वर है और सुषुम्ना मध्य स्वर है। बायां और दायां स्वर ही

---

1. पञ्चाध्यायी, अ० 2
2. तीर्थंकर, दिस० 1980—पृ० 100—मुनि सुशील कुमार जी

प्रायः सक्रिय रहता है। ये दोनों सांसारिक जिजीविषा के वाहक हैं और हमारे चित्त को अशान्त रखते हैं जब मध्य स्वर अर्थात सुषुम्ना गतिशील हो उठता है तो मन में स्थिरता और शान्ति आती है। वास्तव में यहीं से अर्थात् सुषुम्ना के जागरण से हमारी आध्यात्मिक यात्रा का शुभारम्भ होता है। सुषुम्ना के जागरण और सक्रियता में 'णमो अरिहंताणं' के मनन और जपन का अनुपम योग होता है। वास्तव में अर्हत् के पूर्ण ध्यान का अर्थ है स्वयं से साक्षात्कार अर्थात् अपनी परम+आत्मा (परमात्मा) दशा में प्रस्थान। इस पद की एतादृश अनेक विशेषताओं की विस्तृत एवं प्रामाणिक चर्चा आगे एक स्वतन्त्र अध्याय में निर्धारित है।

णमो सिद्धाणं—

सिद्धों को नमस्कार हो मोक्ष रूपी साध्य की सिद्धि अर्थात् प्राप्ति करने वाले सिद्ध परमेष्ठियों को नमस्कार हो। जिन सिद्धों ने अपने शुक्ल ध्यान की अग्नि द्वारा समस्त—अष्टकर्म रूपी ईंधन को भस्म कर दिया है और जो अशरीरी हो गये हैं, उन सिद्धों को नमस्कार हो। जिनका वर्ण तप्त स्वर्ण (कुन्दन) के समान लाल हो गया है और जो सिद्ध शिला के अधिकारी हैं, उन सिद्धों को नमस्कार हो। पुनर्जन्म और जरा-मरण आदि के बन्धनों को सर्वथा काटकर जो सदा के लिए बन्धन मुक्त हो गये हैं ऐसे उज्ज्वलसिद्ध परमेष्ठियों को नमस्कार हो।[1] आत्मा की पूर्ण विशुद्ध अवस्था सिद्ध पर्याय में ही प्राप्त होती है। आत्मा के अष्ट गुणों की पूर्णता से युक्त, कृतकृत्य एवं त्रैलोक्य के शिखर पर विराजमान एवं वन्द्य सिद्ध परमेष्ठियों का, नमन इस पद में किया गया है। नमनकर्ता स्वयं में उक्त गुणों को कभी ला सकेगा, या कम-से-कम आंशिक रूप से ही लाभान्वित हो सकेगा, इसी भावना से वह पूर्ण-निर्विकार परमेष्ठी को परम विनीत भाव से नमन कर रहा है। सिद्ध परमेष्ठी के प्रति नमन आत्मा की पूर्ण विद्धता के प्रति नमन है। मानव विकल्पों से जन्म-जन्मान्तर से जूझता चला आ रहा है। वह

1. "अट्ठविह कम्म वियला, सीदी भूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।"
गोम्मटसार जीवनकाण्ड गाथा-68

संकल्पात्मक निर्विकल्पता को प्राप्त करना चाहता है। वह सिद्ध परमेष्ठी से—उनके दर्शन, गुणानुवाद एवं पूर्णनमन से ही प्राप्त हो सकती है। निर्विकार और परम शान्त अवस्था प्राप्त करने के लिए णमो सिद्धाणं का ध्यान एवं जाप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। णमो अरिहंताणं में श्वेत रंग के साथ तीन भाव से ध्यान किया जाता है। इससे हमारी मानसिक स्वच्छता और आन्तरिक शक्तियों का उन्नयन होता है। णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठी के ध्यान और जाप के समय, लाल रंग के साथ हम सहज ही जुड़ जाते हैं। सिद्ध परमेष्ठी के नमन के समय हमारे मानस पटल पर वह चित्र उभरना चाहिए जबकि सिद्ध परमेष्ठी अष्टकर्मों का दहन कर निर्मल रक्तवर्ण कुन्दन की भांति देदीप्यमान हो उठते हैं। हमारे शरीर में रक्त की कमी हो अथवा रक्त में दोष आ गया हो तो णमो सिद्धाणं का पंचाक्षरी जाप करना वांछनीय है। 'णमो सिद्धाणं' का ध्यान दर्शन केन्द्र में रक्त वर्ण के साथ किया जाता है। बाल सूर्य जैसा लाल वर्ण। दर्शन केन्द्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। लाल वर्ण हमारी आन्तरिक दृष्टि को जागृत करने वाला है।...इस रंग की यही विशेषता है कि वह सक्रियता पैदा करता है। कभी सुस्ती या आलस्य का अनुभव हो, जड़ता आ जाए तो दर्शन केन्द्र में दस मिनट तक लाल रंग का ध्यान करें। ऐसा अनुभव होगा कि स्फूर्ति आ गयी है।"[1] विशुद्ध दृष्टि से सिद्ध परमेष्ठी ही पंचपरमेष्ठियों में श्रेष्ठतम हैं और प्रथम पद के अधिकारी हैं। प्रस्तुत मन्त्र में विवक्षा भेद से या संसारी जीवों के प्रत्यक्ष और सीधे लाभ तथा उपदेश प्राप्ति आदि की दृष्टि से ही अरिहन्त परमेष्ठी का प्रथम स्मरण किया गया है। स्पष्ट है कि अरिहन्तों को भी अन्ततः सिद्ध अवस्था प्राप्त करना ही है। सिद्ध या सिद्धावस्था तो अरिहन्तों द्वारा भी वन्दय है। वास्तव में सिद्ध परमेष्ठी पूर्ववर्ती चार परमेष्ठियों की अवस्थाएं पार कर चुके हैं और अन्य परमेष्ठियों से गुणात्मक धरातल पर आगे हैं। अन्य परमेष्ठियों को अभी सिद्ध अवस्था प्राप्त करना है। अतः सिद्ध परमेष्ठी मात्र का वन्दन, नमन, चिन्तन, स्मरण पंचपरमेष्ठी—वन्दन ही है। फिर भी पूरे मन्त्र के जप, ध्यान एवं भाष्य अवश्य ही विशेष फलदायी

---

1. "एसो पंच णमोकारो"—पृ० 78 युवाचार्य महाप्रज्ञ

होगा। अतः सिद्ध परमेष्ठी की सर्वोपरि महत्ता स्वयंसिद्ध है। आचार्य हेमचन्द्र का महामन्त्र के प्रति यह भाव वास्तव में सिद्ध सन्दर्भ में ध्यातव्य है—

"हरइ दुहं, कुणइ सुहं, जणइ जसं सोमए भव समुद्दं।
इह लाह परलोकय-सुहाण मूलं णमुक्कारो॥"

अर्थात् महामन्त्र णमोकार दुखहर्ता एवं सुखदाता है। यश उत्पन्न करता है, भव समुद्र को सुखाता है। यह मन्त्र इस लोक एव परलोक में सुखों का मूल है।

सिद्धों के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने की है—सामान्यतया कुल सात रंग माने जाते हैं—लाल, नीला, पीला, नारंगी, हरा, नीलाबैंगनी, बैंगनी (वायलेट)। इनमें कुल तीन ही मूल रंग हैं—लाल, नीला, पीला। बाकी रंग इन रंगों के मिश्रण से बनते हैं। आश्चर्य यह है कि सफेद और काला रंग भी मिश्रण से बनता है, मौलिक नहीं हैं। मिश्रण से तो फिर सहस्रों रंग बनते हैं। उक्त तीन मूल रंगों में भी लाल रंग ही प्रमुख है। वही ऊष्मा और जीवन का रंग है। यही सिद्ध परमेष्ठी का रंग है। अतः इस स्तर पर भी सिद्धों की सर्वोपरि महत्ता प्रकट होती है।[1]

णमो आइरियाणं—

आचार्य परमेष्ठियों को नमस्कार हो। जिनके मन, वचन और आचरण में एकरूपता है, वे ही विश्व-जीवों के उद्धारक—पथ-प्रदर्शक आचार्य हैं। ये आचार्य स्वयं के आचरण में ज्ञान को परीक्षित एवं पवित्र करके ही प्राणियों को संयम, तप एवं ज्ञान का उपदेश देते हैं। वास्तव में आचार्य परमेष्ठी अपने आचरण द्वारा ही प्रमुख रूप से जीवों में स्थायी आध्यात्मिक गुणों का संचार करते हैं। आचार्य परमेष्ठी के निजी आचरण द्वारा ही उनके निर्मल विचार प्रकट होते हैं। ये उपदेश

---

1. "णमो नमस्कारः पंचविधमाचारं चरन्ति चारयन्तीत्याचार्याः।"
धवला टीका प्रथम—पृ० 48

का सहारा कम ही लेते हैं। ये आचार्य परमेष्ठी समदृष्टि, परमज्ञानी, आत्मनिर्भर, निर्लोभी, निर्लिप्त एवं गुण ग्राहक भी हैं। ये जीवन के अनुशास्ता हैं। ये आचारी एवं आचार्य के भव्य संगम तीर्थ हैं। इनमें आचार और ज्ञान का श्रेष्ठ सम्मिलन हुआ है। यहां आचार्य परमेष्ठी के सम्बन्ध में विचार करते समय यह विवेक दृष्टि परमावश्यक है कि इनका प्रमुख व्यक्तित्व आचार प्रधान है—प्रयोगात्मक है। ये दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पांच आचार्यों का स्वयं पालन करते हैं और संघ के सभी साधुओं को भी उक्त आचरण में लीन रखते हैं। ये मेरु के समान दृढ़ और पृथ्वी के समान क्षमाशील होते हैं। (आचार्य परमेष्ठी के) 36 मूलगुण होते हैं—12 तप, 10 धर्म, 5 आधार, 6 आवश्यक और 3 गुप्ति। ये आचार्य परमेष्ठी श्रावकों को दीक्षा देते हैं—व्रतों में लगाते हैं। दोषी श्रावकों या साधुओं की प्रायश्चित द्वारा शुद्धि भी कराते हैं। आचार्य स्वर्ण के समान निर्मल, दीप ज्योति के समान ज्योतिर्मय हैं। उनका पीतवर्ण जीवन की पुष्टि और शुद्धता का द्योतक है।

तीर्थंकर जिस धर्म मार्ग का प्रवर्तन करते हैं और चार तीर्थों की—श्रावक, श्राविका, साधु-साध्वी—स्थापना करते हैं, उन्हें विधिवत् चलाते रहने का प्रशासनिक उत्तरदायित्व, आचार्य परमेष्ठी का होता है।

आचार्य परमेष्ठी पंच परमेष्ठी के ठीक मध्य में विराजमान हैं। अरिहन्तों और सिद्धों की धर्म परम्परा युगानुरूप विवेचन करने-कराने में ही आचार्य परमेष्ठी की महत्ता है। स्पष्ट है कि आचार्य परमेष्ठी अरिहन्तों और सिद्धों से सब कुछ ग्रहण करते हैं तो दूसरी ओर उपाध्यायों और साधु परमेष्ठियों में अपना चारित्रिक एवं अनुशासनात्मक सन्देश भरते रहते हैं। आगे चलकर आचार्य को साधु या मुनि वेष धारण करके ही मुक्ति प्राप्त करना है। अतः इस दृष्टि से साधु का स्थान ऊंचा ही है। बस बात इतनी ही है कि साधु अवस्था तक पहुंचने की स्थिति का निर्माण, आचार्य परमेष्ठी द्वारा ही होता है अतः आधारशिला के रूप में आचार्य परमेष्ठी की महत्ता को स्वीकार करना ही होगा। किसी भवन या दुर्ग के लिए नींव की महत्ता किसी से छिपी नहीं है। "आचार्य वे हैं जिनका ज्ञानयुक्त आचरण स्वयं को श्रेष्ठ

बनाने के साथ अन्यों के लिए प्रेरणा, आदर्श और अनुकरण का विषय बनता है। आचार्य का निर्णय चतुर्विध संघ करता है और तदनुसार उन्हें अपने नेतृत्व में साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका—चारों के ज्ञान-चरित्र के उत्तरोत्तर विकास में सहायता करनी पड़ती है।"[1] इस प्रकार आचार्य परमेष्ठी वीतराग भगवान के गुरुकुल के संचालक होते हैं और चारों तीर्थों के नेता होते हैं।

णमो उवज्झायाणं—

उपाध्येय परमेष्ठियों को नमस्कार हो। आचार्य परमेष्ठी आचार (चारित्र्य) पालन और अनुशासन पक्षों पर प्रमुख रूप से ध्यान देते हैं। इन्हीं पक्षों से सम्बन्धित विषयों का अध्यापन (उपदेश) भी आवश्यकतानुसार देते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी में आचार्य के पूर्वोक्त प्रायः सभी गुण होते हैं। इनका प्रमुख कार्य मुनियों को द्वादशाङ्ग वाणी के सभी पक्षों का विशद एवं तात्विक अध्ययन कराना है। उप अर्थात् जिनके समीप बैठकर मुनिगण अध्ययन करते हैं वे उपाध्याय कहलाते हैं। अथवा ज्ञान की सर्वोच्च उपाधि 'उपाध्याय' से जो विभूषित हो वे उपाध्याय कहलाते हैं। "जो मुनि परमागम का अभ्यास करके मोक्ष मार्ग में स्थित हैं तथा मोक्ष के इच्छुक मुनियों को उपदेश देते हैं, उन मुनीश्वरों को उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। उपाध्याय ही जैनागम के ज्ञाता होने के कारण मुनिसंघ में पठन-पाठन के अधिकारी होते हैं···ग्यारह अंग और चौदह पूर्व के पाठी, ज्ञान, ध्यान में लीन, परम निर्ग्रन्थ श्री उपाध्याय परमेष्ठी को हमारा नमस्कार हो।"[2] सम्यग्ज्ञान की समस्त उच्चता, गाम्भीर्य और विस्तार के पूर्ण ज्ञाता और विवेचनकर्ता उपाध्याय होते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी श्रुतज्ञान के अधिष्ठाता होने के साथ-साथ व्याख्या और विवेचन की नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा से भी समलंकृत होते हैं। उनका समस्त जीवन ज्ञानार्जन एवं ज्ञानदानार्थ समर्पित रहता है। उनमें किसी प्रकार का स्वार्थ, हीनता ग्रन्थि अथवा व्यापार बुद्धि का सर्वथा अभाव रहता है। वे बाहर और भीतर से एक से होते हैं। उन्हें सांसारिकता से कोई

---

1. 'सर्वधर्म सार महामन्त्र नवकार'—पृ० 53, कांति ऋषीजी
2. 'मंगलमन्त्र णमोकार : एक चिन्तन'—पृ० 48, डॉ० नेमिचन्द्र जैन

लगाव नहीं होता है। उनका संसार होता ही नहीं है अतः उनकी समस्त चित्तवृत्तियां स्वाध्याय और नये-नये चिन्तन में लगी रहती है। आज का अध्यापक, प्राध्यापक एवं प्राचार्य प्रायः यान्त्रिक चेतना से अनुचालित होता है और व्यापार बुद्धि से ही पाठ्यक्रममूलक अध्यापन करता है। उसका अपने विषय के प्रति प्रायः तादात्म्य या रागात्मक सम्बन्ध नहीं रहता है। वह केवल 'अनिवार्य कार्य भार' तक ही सीमित रहता है। अपवाद स्वरूप कतिपय विद्वान ऐसे भी होते हैं जो अद्भुत प्रतिभा के धनी होते हैं, निरन्तर स्वाध्याय और अनुसंधान करते रहते हैं। परन्तु वे गृहस्थ होते हैं एवं संसार से बद्ध होते हैं अतः उनका अधिकांश समय ज्ञान-साधना में व्यतीत नहीं होता है। उनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास सम्भव नहीं हो पाता है। उपाध्याय विशुद्ध गुरु होते हैं। उनमें ज्ञान और चारित्र्य की अगाध गुरुता रहती है। वे परम निर्लोभी होते हैं। कभी व्यापार भाव से विद्यादान नहीं करते हैं। ऐसे परम गुरु का शिष्य होना किसी का भी अहोभाग्य हो सकता है। गुरु को किसी भी स्तर पर लघु नहीं होना चाहिए। उपाध्याय परमेष्ठी उस विद्या और उस ज्ञान को देते हैं जिससे समस्त सांसारिकता अनायास प्राप्त होती है और शिष्य उसे त्यागता हुआ आत्मा के परमधाम मोक्ष में दत्तचित्त होता चला जाता है। महाकवि भर्तृहरि ने विद्या की विशेषता के विषय में बहुत सटीक कहा है—

"विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति, धनाति धर्मं ततः सुखम्॥"

—नीतिशतकम्

अर्थात् विद्या से विनय, विनय से सत्पात्रता, सत्पात्रता से धन, धन से धर्म, धर्म से सुख—और आत्मा की चरम उपलब्धि—मुक्ति का सुख प्राप्त होता है। ज्ञानहीन मानव पशु के समान है, वह शव है। ज्ञान से ही शव में शिवत्व अर्थात् चैतन्य और परकल्याण एवं आत्मकल्याण के भाव जागृत होते हैं। यह लोकोत्तर कार्य उपाध्याय परमेष्ठी द्वारा ही सम्भव होता है।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की ज्ञानाश्रयी निर्गुण धारा के प्रमुख कवि कबीरदासजी ने तो गुरु को साक्षात् ईश्वर ही माना है—

"गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पायं।
बलिहारी गुरु आपने गोबिन्द दिया बताय ।।"

इस साखी में गुरु का विनय गुण और महिमा वर्णित है। गुरु को देव, ब्रह्म, विष्णु और महेश्वर मानने की भारतीय आस्था आज भी अक्षुण्ण है।

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुदेवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः ।।"

"ज्ञान के पांच भेद हैं किन्तु उनमें श्रुतज्ञान को छोड़ शेष चार तो स्वगुण मौनधर्मी हैं। श्रुतज्ञान ही स्व एवं अन्य सभी का उपकार कर सकता है। अतः श्रुतज्ञान को ज्ञान का जनक कहा जाता है जिससे चारों ज्ञान रूप पुत्र पैदा हो सकते हैं। हमें ऐसे श्रुतज्ञानधारी उपाध्याय महाराज से श्रुतज्ञान प्राप्त कर उत्तरोत्तर केवलज्ञान की प्राप्ति करनी है और इसके लिए एकमात्र आधार उपाध्याय परमेष्ठी हैं।"* विश्वास धर्म की जड़ है और इस जड़ की जड़ है। जब तक ज्ञानहीन विश्वास रहेगा तब तक प्राणी का चित्त अस्थिर रहेगा। ज्ञान नेत्र ही वास्तविक नेत्र है। यह नेत्र उपाध्याय परमेष्ठी अर्थात् विद्यागुरु की सत्कृपा से ही क्रियाशील होता है। मानव एक अनगढ़ पाषाण है उसमें अन्तर्निहित प्रतिभा और ज्ञान का प्रकाशन—सौन्दर्य और देवत्व का उद्भावन—उद्ंकन शिल्पी गुरु—उपाध्याय द्वारा ही होता है।

णमोलोए सव्व साहूणं—

नरलोक के समस्त साधुओं को नमस्कार हो। ये मुनि निरन्तर अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं वीर्य आदि रूप विशुद्ध आत्मा के स्वरूप में लीन रहते हैं। शेष चार परमेष्ठी मुनि या साधु अवस्था में दीक्षित होकर सुदीर्घ साधना के अनन्तर ही मुक्ति के अधिकारी होते हैं। अतः साक्षात् मुक्ति-स्वरूप इन परम विरागी साधुओं को मनसा, वाचा, कर्मणा नमस्कार हो। अरिहन्त और सिद्ध तो साक्षात् देवस्वरूप हैं, परन्तु साधु तो अभी देव मार्ग पर हैं और मुक्ति के आकांक्षी हैं। यह

---

* 'सर्वधर्मसार—महामन्त्र नवकार'—पृ० 92

क्रम का अन्तर होने पर भी साधु भी पूर्णतया वन्दय पंचम परमेष्ठी हैं। लक्ष्य सब परमेष्ठियों का एक है और वह अटल है। ये 28 मूलगुणों के धारक हैं। समस्त अन्तः बाह्य परिग्रह को त्यागकर शुद्ध मन से मुनिधर्म को अंगीकृत करके हो ये साधु बनते हैं। ये साधु परम अहिंसक, अपरिग्रही एवं तपोनिष्ठ होते हैं।

आचार्य, उपाध्याय और साधु को देव या परमेष्ठी मानने में कभी-कभी श्रावकों या भक्तों के मन में शंका उठती है कि अरिहन्त और सिद्ध तो आत्मस्वरूप को प्राप्त कर चुके हैं, निष्कर्मता भी उन्हें प्राप्त हो चुकी है अतः उनका देवत्व निश्चित हो चुका है—उनका परमेष्ठीत्व प्रमाणित हो चुका, परन्तु आचार्य, उपाध्याय और साधु में तो अभी रत्नत्रय की पूर्णता का अभाव है। आत्मस्वरूप की प्राप्ति अभी नहीं हुई है, अभी घातिया कर्मों का नाश भी नहीं किया है, अतः इन्हें देव या परमेष्ठी मानना उचित नहीं है।

इस शंका का समाधान यह है कि उक्त शंका अंशतः ठीक है परन्तु पूर्णतया ठोक नहीं है। उक्त तीन परमेष्ठी सुनिश्चित रूप से रत्नत्रय के आराधक हैं और अभी उनकी आराधना अधूरी है परन्तु उसकी पूर्णता सुनिश्चित है। रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, एवं सम्यक् चारित्र्य के अनन्त भेद हैं और इन सबमें देवत्व है। अतः इनका आंशिक पालन करने वाले और पूर्णता के प्रति कृतसंकल्प उक्त आचार्य, उपाध्याय एवं साधु परमेष्ठी भी वास्तविक परमेष्ठी हैं। आत्म-विकास की अपेक्षा से उक्त पांचों को परमेष्ठी मानकर नमस्कार किया गया है। प्रशस्त विचारक आचार्य तुलसी जी ने भी उक्त शंका का समुचित समाधान प्रस्तुत किया है—"आचार्य और उपाध्याय अरिहन्तों के प्रतिनिधि होते हैं। अरिहन्तों की अनुपस्थिति में आचार्य और उपाध्याय उनका काम करते हैं। इसीलिए उन्हें भी परमेष्ठी मान लिया गया। अब प्रश्न रहा साधु का। इसका सीधा समाधान यही है कि अर्हत् हो, आचार्य हो या उपाध्याय हो—ये सब पहले साधु हैं और बाद में और कुछ। वास्तव में तो साधु ही परमेष्ठी का रूप है। भगवद्-गीता की टीका में एक पद्य है—

कान्ताकाञ्चनचक्रेषु भ्राम्यतिभुवनत्रयम्।
तासु तेषु विरक्तोयः द्वितीयः परमेश्वरः॥

सारा संसार स्त्री और कांचन के चक्र में घूम रहा है, जो व्यक्ति इनसे विरक्त रहता है, वह दूसरा परमेश्वर है। साधु अर्हत् बनने की साधना कर रहा है, इससे वह भी परमेष्ठी बन जाता है।*

मथितार्थ—उक्त महामन्त्र विशुद्ध रूप से गुणों को सर्वोपरि महत्त्व देकर उनकी वन्दना का मन्त्र है। किसी व्यक्ति, जाति या धर्म विशेष का इसमें उल्लेख नहीं है। अतः यह सार्वजनिक, सार्वधार्मिक एवं देश-कालजयी सर्वप्रिय नमस्कार महामन्त्र है। इसमें नमः शब्द के द्वारा भक्त की निरहंकारी निर्मल मनःस्थिति प्रकट की गयी है तो दूसरी ओर गुणात्मकता के कारण विश्व विश्रुत शक्तियों की महत्ता को स्वीकारा गया है; किसी सांसारिक या पारलौकिक लाभ का संकेत भी भक्त नहीं देता है। अतः भक्त की भी महानता का पता लगता ही है। संसार में सरल और विशुद्ध विनयी होना सबसे कठिन काम है। यह मन्त्र सरलता की नींव पर ही खड़ा है। सरलता का अर्थ है निर्विकार—निष्कर्म अवस्था।

पदक्रम—

णमोकार महामन्त्र में पदक्रम रखा गया है—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। इन पंच परमेष्ठियों के गुणों के आधार पर जो वरिष्ठता का क्रम बनता है उसके अनुसार णमोकार मन्त्र का क्रम ठीक नहीं बैठता है। सिद्ध परमेष्ठी में रत्नत्रय की पूर्णता होती है और अष्ट कर्मों का पूर्ण क्षय भी वे कर चुके होते हैं। ये बातें अरिहन्त परमेष्ठी में नहीं होती हैं अतः सिद्धों को मन्त्र में प्रथम स्थान प्राप्त होना चाहिए था। यह शंका स्वाभाविक है। परन्तु यह महामन्त्र अति-प्राचीन है और अनाद्यनन्त है। इसके रचयिता भी यदि रहे हों तो कम-से-कम परममेधावी तीर्थंकर कोटि के ही रहे होंगे। उनकी वाणी को ही गणधरों ने ग्रथित किया होगा। तब क्या उन्हें इस वरिष्ठता क्रम का ज्ञान न था? अवश्य था। तब उक्त क्रम के लिए उनके मन में कोई

---

* 'तीर्थंकर', नव-दिस० 80, पृ० 36

बात अवश्य रही होगी। विद्वानों ने इस पर विचार किया है और समाधान भी प्राप्त किया है। निश्चय नय की दृष्टि से तो सिद्ध परमेष्ठी ही क्रम में प्रथम आते हैं परन्तु अरिहन्तों के द्वारा ही जन-समुदाय को उपदेश का लाभ होता है और मुक्ति का मार्ग खुलता है, सिद्धों से इस बात में वे आगे हैं। दूसरी बात यह है कि अरिहन्तों के कारण सिद्धों के प्रति लोगों में अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है। अतः उपकार की अपेक्षा से ही अरिहन्तों को प्राथमिकता दी गयी है।

पंच परमेष्ठियों पर वास्तविक गुणों के धरातल पर विचार किया जाए तो अरिहन्त और सिद्ध तो आत्मोपलब्धि के निश्चय के कारण साक्षात् देव कोटि (प्रभु कोटि) में आते हैं। शेष तीन परमेष्ठी अभी साधक मात्र हैं अतः वे गुरु कोटि में आते हैं। ये तीन तो अभी अरिहन्त एवं सिद्ध के उपासक हैं और गृहस्थों एवं श्रावकों द्वारा पूज्य हैं।

इसी प्रकार दूसरी शंका यह उठती है कि साधु परमेष्ठी आचार्य और उपाध्याय से श्रेष्ठ हैं क्योंकि आचार्य और उपाध्याय साधु अवस्था धारण करके ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं और अभी वे साधु नहीं हैं। यहां ध्यान फिर द्रव्य और भाव पक्ष पर देना है। मुनि या साधु को उपदेश देने का कार्य आचार्य एवं उपाध्याय ही करते हैं। अतः इसी भाव या अन्तरंग पक्ष का ध्यान रखकर उक्त क्रम रखा गया है।

ज्ञान के धरातल पर उपाध्याय आचार्य से भी आगे होते हैं परन्तु आचार्य परमेष्ठी द्वारा प्रकट शासन व्यवस्था और धार्मिक संघों का चरित्र पालन होता है अतः उन्हें इसी उपकार एवं व्यवहार भावना के कारण उपाध्याय से पहले स्थान दिया गया है।

डॉ० नेमीचन्द ज्योतिषाचार्य का विचार भी पदक्रम के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण एवं विश्वसनीय है—' ऐसा प्रतीत होता है कि इस महामन्त्र में परमेष्ठियों को रत्नत्रय गुण की पूर्णता और अपूर्णता के कारण दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम विभाग में अरिहन्त और सिद्ध हैं। द्वितीय विभाग में आचार्य उपाध्याय और साधु हैं। प्रथम विभाग में रत्नत्रय गुण की न्यूनता वाले परमेष्ठी को पहले और रत्नत्रय गुण की पूर्णता वाले परमेष्ठी को पश्चात् रखा गया है। इस क्रम के अनुसार

अरिहन्त को पहले और सिद्ध को बाद में पठित किया गया है। दूसरे विभाग में भी यही क्रम है। आचार्य और उपाध्याय की अपेक्षा मुनि का (साधु का) स्थान ऊंचा है; क्योंकि गुणस्थान आरोहण मुनिपद से ही होता है, आचार्य और उपाध्याय पद से नहीं। यही कारण है कि अन्तिम समय में आचार्य और उपाध्याय को अपना-अपना पद छोड़कर मुनिपद धारण करना पड़ता है। मुक्ति भी मुनिपद से ही होती है तथा रत्नत्रय की पूर्णता इसी पद में सम्भव है। अतः दोनों विभागों में उन्नत आत्माओं को पश्चात् पठित किया गया है।"*

विचार करने पर यह समाधान उतना ही विश्वसनीय एवं तर्काश्रित नहीं लगता जितना कि यह तर्क कि परमेष्ठियों के वर्तमान पदक्रम में लोकोपकार भाव को अग्रिमता के कारण ही मौजूदा क्रम अपनाया गया है। आत्मकल्याण और लोकोपकार को दृष्टि में रखकर यह क्रम अपनाया गया है। बात यह है कि वर्तमान क्रम की सार्थकता, महत्ता और औचित्य में कोई-न-कोई ठोस कारण जो विश्वसनीय हो, होना ही चाहिए।

महामन्त्र णमोकार और मातृकाओं का सम्बन्ध—

वर्णमातृका के स्वरूप और महत्त्व पर संक्षेप में इतःपूर्व इंगित किया जा चुका है। अक्षर, वर्ण एवं शब्द रूप में मातृका शक्ति का विस्तार है। हमारे समस्त जीवन में यह शक्ति कार्य करती है। जब तक हम इसे जानते नहीं हैं और संकल्पपूर्वक इसका प्रयोग नहीं करते हैं, तब तक अनुकूल फल सम्भव नहीं होता है।

णमोकार महामन्त्र में समस्त मातृका शक्ति का प्रयोग हुआ है। अन्य किसी भी मन्त्र में यह बात नहीं है। यह इस महामन्त्र की अद्भुत विशेषता है। इससे भी इस मन्त्र का लोकोत्तरत्व सिद्ध होता है। पदक्रम के अनुसार मातृका विश्लेषण—

---

* मंगलमन्त्र णमोकार—पृ० 56

1. णमो अरिहंताणं—

1 3 2
ण् + अ, म् + ओ, अ + र् + इ, ह् + अं, त् + आ, ण + अं।

2. णमो सिद्धाणं—

4
ण + अ, म + ओ, स + इ, द् + ध् + आ, ण् + अं।

3. णमो आइरियाणं—

7 + 8 15 + 16
ण + अ, म + ओ, आ + इ, र + इ, य् + आ, ण् + अं।

4. णमो उवज्झायाणं—

5
ण + अ, म + ओ, उ, व् + अ, ज्, झ् + आ, य + आ, ण + अं।

5. णमो लोए सव्व साहूणं—

9 + 10 13 + 14 11 + 12
ण + अ, म + ओ, ल् + ओ, ए, स + अ, व् + व् + अ
6
स + आ, ह् + ऊ, ण + अ।

उक्त विश्लेषण में स्वर मातृकाएं—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः

उक्त सभी सोलह (16) स्वर णमोकार मन्त्र में संयोजन प्रक्रिया से प्राप्त होते हैं। कुछ स्वर यथा—

ई, ऋ, लृ, ऐ, औ, अः

सीधे प्राप्त नहीं होते हैं। इनके मूल योजक तत्त्वों के माध्यम से इन्हें प्राप्त किया जा सकता है।

यथा—इ + इ = ई। र ऋ का प्रतीक है। ल् लृ का प्रतीक है। अ + इ = ऐ। अ + ओ = औ। अं + अ = अः।

पुनरुक्त स्वरों को पृथक् कर देने पर पूरे 16 स्वर मिलते हैं।

व्यंजन मातृकाएं—

क ख ग घ ङ्, च छ ज झ, ट, ठ, ड ढ ण, त थ द ध न,
प फ ब भ म, य र ल व, श ष, स, ह

ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार उच्चारण स्थान की एकता के कारण कोई भी वर्गाक्षर वर्ग का प्रतिनिधित्व कर सकता है। णमोकार मन्त्र में व्यंजन मातृकाओं को समझने में इस सिद्धान्त का ध्यान रखना है।

पुनरुक्त व्यंजनों के बाद कुल व्यंजन मन्त्र में हैं—

ण्+म्+र्+ह+त्+स्+य+र्+ल्+व्+ज्+झ+ह्

उक्त व्यंजन ध्वनियों को वर्ण मातृकाओं में इस प्रकार घटित किया जा सकता है—

घ=कवर्ग, ज=चवर्ग, ण्=टवर्ग, ध=तवर्ग, म=पवर्ग, य, र, ल, व, स=श, ष, स, ह।

अतः णमोकार महामन्त्र में समस्त स्वर एवं व्यंजन मातृका ध्वनियां विद्यमान हैं

मन्त्र सूत्रात्मक ही होते हैं। अतः मातृका ध्वनियों को सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक पद्धति में ही ग्रहण किया जा सकता है। संकेत अवश्य ही व्याकरण एवं भाषा विज्ञान सम्मत होना चाहिए। डॉ० नेमीचन्द्र शास्त्री जी ने उक्त विश्लेषण क्रम अपनाया है। इस विश्लेषण में उनके क्रम से सहायता ली गयी है। क्ष, त्र, ज्ञ ये तीन स्वतन्त्र व्यंजन नहीं हैं, ये संयुक्त हैं। इन्हें इसीलिए मातृकाओं में सम्मिलित नहीं किया गया है। संयुक्त रूप से अंशान्वय से इन्हें भी क्, त्, ज् के रूप में उक्त मन्त्र में स्थान है ही।

विभिन्न नाम—

इस महामन्त्र को भक्ति, श्रद्धा और तर्क के आधार पर अनेक नाम दिए गए हैं। इनमें णमोकार मन्त्र, पंच नमस्कार मन्त्र, पंच परमेष्ठी मन्त्र, महामन्त्र और नवकार मन्त्र। नवकार मन्त्र को छोड़कर अन्य नामों में नाम मात्र का ही अन्तर है बाकी तो मूल मन्त्र वही है जिसमें पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है।

नवकार—

नवकार मन्त्र कहने वालों ने इस मन्त्र में एक चार चरणों या पदों वाला मंगल श्लोक भी सम्मिलित कर लिया है। वास्तव में मूलमन्त्र तो पांच पदों का ही है। परन्तु चूलिका रूप चार पद जो मूल मन्त्र के फल को बताते हैं, उन्हें भी भक्तिवश मन्त्र के उत्तरार्ध के रूप में स्वीकार किया गया है।

मूलमन्त्र : पांच पद—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमोलोए सव्वसाहूणं।

चूलिका या मन्त्र का उत्तरार्ध—

एसो पंच णमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

अर्थात् यह पंच नमस्कार मन्त्र समस्त पापों का नाशक है और समस्त मंगलों में प्रथम मंगल है।

मंगल पाठ के समय अर्थात् किसी साधु या साध्वी के प्रवचन के पश्चात् और कभी-कभी प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में भी इसका पाठ किया जाता है। इसके साथ निम्नलिखित पाठ भी बोला जाता है—

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं,
सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं,
केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलम्।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा,
सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,
केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंता सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धा सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलीपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

मंगल पाठ की इन पंक्तियों में चार को ही मंगल स्वरूप माना गया है। ये चार हैं—अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली द्वारा प्रणीतधर्म। उक्त चार ही संसार में श्रेष्ठ हैं। मैं इन चारों की शरण लेता हूं और किसी की नहीं।

यहां ध्यान देने की बात यह है कि णमोकार मन्त्र को नवकार का विस्तार देते समय उसके अक्षुण्ण रूप की रक्षा करते हुए उसके फल और महत्त्व को भी उसमें मिला लिया गया है। परन्तु मंगल पाठ में केवल अरिहन्त, सिद्ध और साधु को ही लिया गया गया है, केवली प्रसीण धर्म की महत्ता की शरण ली गयी है। आचार्यों और उपाध्यायों को छोड़ दिया गया है। वास्तव में रत्नत्रय की विशदता और चारित्र्य की उदात्तता के ध्यान से सम्भवतः ऐसा किया गया होगा। अरिहन्त और सिद्ध तो देव ही हैं और साधु भी देवतुल्य ही हैं। आचार्य और उपाध्याय को केवली प्रणीत धर्म के व्याख्याता के रूप में चतुर्थ मंगल के अन्तर्गत गर्भित करके समझना समीचीन होगा।

ओंकारात्मक—

संक्षिप्तता और सुकरता के कारण इस महामन्त्र को ओंकारात्मक भी माना गया है। विद्वानों और भक्तों का एक शक्तिशाली वर्ग है जो पंच नमस्कार मन्त्र का ओंकार का ही विकसित रूप मानता है। ओंकार में पंच परमेष्ठी गर्भित हैं ऐसी उस वर्ग की मान्यता है। सभी वर्गों में इस मान्यता का आदर है।

ओंकार में पंचपरमेष्ठी इस प्रकार गर्भित हैं—

1. अरिहन्त	—	अ	
2. (सिद्ध) अशरीरी	—	अ	
3. आचार्य	—	आ	अ+अ+आ=आ
4. उपाध्याय	—	उ	आ+उ=ओ
5. (साधु) मुनि	—	म्	ओ+म्=ओम्

इसी पंचपरमेष्ठी युक्त ओंकार के विषय में यह श्लोक सर्वविदित है—

"ओंकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः॥"

ओंकार को कई प्रकार से लिखा जाता है—

(1) ओम्, (2) ओ म्, (3) ॐ।

जैन परम्परा में तीसरा रूप (ॐ) ही प्रचलित है। ॐ का चन्द्रबिन्दु सिद्धों का प्रतीक है और अर्धचन्द्र है सिद्धशिला का प्रतीक। आशय यह हुआ कि ॐकार के नियमित स्तवन और जाप से भक्त स्वयंसिद्ध स्वरूप की प्राप्ति करता है।

असिआउसा—

णमोकार मन्त्र का यह एक संक्षिप्त रूप और है। संक्षेपीकरण इस प्रकार है—

अरिहन्त	—	अ
सिद्ध	—	सि
आचार्य	—	आ
उपाध्याय	—	उ
साधु	—	सा

भक्तों में इस बीजाक्षरी संक्षिप्त मन्त्र का भी खूब माहात्म्य एवं प्रचलन है। इसमें प्रत्येक परमेष्ठी का पहला अक्षर ज्यों का त्यों लेकर उसकी निर्विकारता की पूरी रक्षा का भाव है। अतः जिन भक्तों के पास समय और शक्ति की कमी है वे इस संक्षिप्त मन्त्र के द्वारा भी पूर्ण लाभ ले सकते हैं। □

णमोकार मन्त्र का माहात्म्य एवं प्रभाव

अनादि-अनन्त णमोकार महामन्त्र के महामन्त्र के माहात्म्य का अर्थ है उसकी महती आत्मा (आत्म-शक्ति) अर्थात् अंतरंग और मूलभूत शक्ति। इसी को हम उस मन्त्र का गौरव, यश और महत्ता कहकर भी समझते हैं। यह मूलत: आत्म-शक्ति का, आत्म-शक्ति के लिए और आत्म-शक्ति के द्वारा अपरिमेय काल से कालजयी होकर, समस्त सृष्टि में जिजीविषा से लेकर भुभुक्षा तक की सन्देश तरंगिणी का महामन्त्र है। इस मन्त्र की महिमा का जहां तक प्रश्न है वह तो हमारे समस्त आगमों में बहुत विस्तार के साथ वर्णित है। यह मन्त्र हमारी आत्मा की स्वतन्त्रता अर्थात् उसकी सहजता को प्राप्त कराकर उसे परमात्मा बनाने का सबसे बड़ा, सरलतम और सुन्दरतम साधन है। यही इसकी सबसे बड़ी महत्ता है। इसके पश्चात् हमारी समस्त सांसारिक उलझनें तो इस मन्त्र के द्वारा अनायास ही सुलझती चली जाती हैं। पारिवारिक कलह, शारीरिक-मानसिक रुग्णता, निर्धनता, अपमान, अनादर, सन्तानहीनता आदि बातें भी इस महामन्त्र के द्वारा अपना समाधान पाती हैं। आशय यह है कि यह मन्त्र मानव को धीरे-धीरे संसार में रहकर संसार को कैसे जीतना है यह सिखाता है और फिर मानव में ही ऐसी आन्तरिक शक्ति उत्पन्न करता है कि मानव स्वत: निर्लिप्त और निर्विकार होने लगता है। उसे स्वात्मा में ही परम तृप्ति का अनुभव होने लगता है। अत: इस महामन्त्र के भी शारीरिक और आत्मिक धरातलों को पूरी तरह समझकर ही हम इसकी सम्पूर्ण महत्ता को समझ सकते हैं।

आगमों में वर्णित मन्त्र-माहात्म्य—

णमोकार महामन्त्र द्वादशाङ्ग जिनवाणी का सार है। वास्तव में जिनवाणी का मूल स्रोत यह मन्त्र है ऐसा समझना न्यायसंगत है। यह

मन्त्र बीज है और समस्त जैनागम वृक्ष-रूप हैं। कारण पहले होता है और कार्य से छोटा होता है। यह मन्त्र उपादान कारण है।

प्राय: समस्त जैन शास्त्रों के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में प्रत्यक्षत: णमोकार महामन्त्र को उद्धत कर आचार्यों ने उसकी लोकोत्तर महत्ता को स्वीकार किया है, अथवा देव, शास्त्र और गुरु के नमन द्वारा परोक्ष रूप से उक्त तथ्य को अपनाया है। यहां कुछ प्रसिद्ध उद्धरणों को प्रस्तुत करना पर्याप्त होगा।

इस महामन्त्र की महिमा और उपकारकता पर यह प्रसिद्ध पद्य द्रष्टव्य है—

एसो पंच णमोकारो, सव्वपापप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढ़मं हवइ मंगलं॥

अर्थात् यह पंच नमस्कार-मन्त्र समस्त पापों का नाशक है, समस्त मंगलों में पहला मंगल है, इस नमस्कार मन्त्र के पाठ से समस्त मंगल होंगे। वास्तव में मूल महामन्त्र तो पंचपरमेष्ठियों के नमन से सम्बन्धित पांच पद ही हैं। यह पद्य तो उस महामन्त्र का मंगलपाठ या महिमा-गान है। धीरे धीरे भक्तों में यह पद्य भी णमोकार मन्त्र का अंग सा बन गया और इसके आधार पर महामन्त्र को नवकार मन्त्र अर्थात् नौ पदों वाला मन्त्र भी कहा जाता है।

इसी महत्त्वांकन की परम्परा में मंगलपाठ का और भी विस्तार हुआ है। चार मंगल, चार लोकोत्तर और चार का ही शरण का मंगल-पाठ होता ही है। ये चार हैं—अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली-प्रणीत धर्म। इसमें आचार्य और उपाध्याय को धर्म प्रवर्तक प्रचारक वर्ग के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया गया है अत: खुलासा उल्लेख नहीं है। कभी-कभी अल्पज्ञता और अदूरदर्शिता के कारण ऐसा भी कतिपय लोगों को भ्रम होता है कि आचार्य और उपाध्याय को संसारी समझकर छोड़ दिया गया है। वास्तव में ये दो परमेष्ठी धर्म की जड़ जैसी महत्ता रखते हैं; इन्हें कैसे छोड़ा जा सकता है। पाठ द्रष्टव्य है—

चार—मंगल : **चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं**
साहू मंगलं, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं॥

चार—लोकोत्तम : चत्तारि लोगोत्तमा, अरिहंता लोगोत्तमा, सिद्धा लोगोत्तमा;
साहू लोगोत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो लोगोत्तमा ।।

चार—शरण : चत्तारि शरण पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि;
साहू शरणं पवज्जामि, केवली पण्णत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि ।।

अर्थात्—चार-चार का यह त्रिक जीवन का सर्वस्व है।

चार मंगल हैं—अरिहन्त परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, साधु परमेष्ठी और केवली प्रणीत धर्म ।

चार लोकोत्तम हैं—अरिहन्त परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, साधु परमेष्ठी और केवली प्रणीत धर्म ।

चार शरण हैं—इस संसार से पार होना है तो ये चार ही सबलतम शरण रक्षा के आधार हैं।—अरिहन्त परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, साधु परमेष्ठी और केवली प्रणीत धर्म ।

एसो पञ्चणमोयारो—गाथा की व्याख्या आचार्य सिद्धचन्द्र गणि ने इस प्रकार की है—(**एषः पंचनमस्कारः प्रत्यक्षविधीयमानः पंचानामर्हदादीनां नमस्कारः प्रणामः ।**)

स च कीदृशः ? सर्वपाप प्रणाशनः। सर्वाणि च तानि पापानि च सर्वपापानि इति कर्मधारयः। सर्व पापानां प्रकर्षेण नाशनो विध्वंसकः सर्वपाप प्रणाशनः, इति तत्पुरुषः। सर्वेषां द्रव्यभाव भदभिन्नानां मङ्गलानां प्रथमिदमेव मङ्गलम् ।

पुनः सर्वेषां मङ्गलानां—मङ्गल कारकवस्तूनां दधिदूर्वाऽक्षतचन्दन-नारिकेल पूर्णकलश स्वस्तिकदर्पण भद्रासनवर्धमान मत्स्ययुगल श्रीवत्स नन्द्यावर्तादीनां मध्ये प्रथमं मुख्य मंगलं मङ्गल कारको भवति। यतोऽस्मिन् पठिते जप्ते स्मृते च सर्वाण्यपि मङ्गलानि भवन्तीत्यर्थः।

अर्थात्—यह पंच नमस्कार मन्त्र सभी प्रकार के पापों को नष्ट करता है। अधमतम व्यक्ति भी इस मन्त्र के स्मरण मात्र से पवित्र हो जाता है। यह मन्त्र दधि, दूर्वा, अक्षत, चन्दन, नारियल, पूर्णकलश, स्वस्तिक, दर्पण, भद्रासन, वर्धमान, मस्त्ययुगल, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त आदि मंगल वस्तुओं में सर्वोत्तम है। इसके स्मरण और जप से अनेक सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

स्पष्ट है कि इस परम मंगलमय महामन्त्र में अद्‌भुत लोकोत्तर शक्ति है। यह विद्युत तरंग की भांति भक्तों के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक संकटों को तुरन्त नष्ट करता है और अपार विश्वास और आत्मबल का अविरल संचार करता है। वास्तव में इस महामन्त्र के स्मरण, उच्चारण या जप से भक्त की अपनी अपराजेय चैतन्य शक्ति जाग जाती है। यह कुंडलिनी (तेजस् शरीर) के माध्यम से हमारी आत्मा के अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान और अनन्त वीर्य को शाणित एवं सक्रिय करता है। अर्थात् आत्म साक्षात्कार इससे होता है।

पंच परमेष्ठियों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए उनसे जन-कल्याण की प्रार्थना इस प्रसिद्ध शार्दूल विक्रीडित छन्द में की गयी है—

"अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र महिताः सिद्धाश्च सिद्धि स्थिताः।
आचार्याजिन शासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः॥
श्रीसिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः।
पंचते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तुनो मङ्गलम्॥"

जिनशासन में अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन पांचों की परमेष्ठी संज्ञा है। ये परम पद में स्थित हैं अतः परमेष्ठी कहे जाते हैं। चार घातिया कर्मों का क्षय कर चुकने वाले, इन्द्रादि द्वारा पूज्य, केवलज्ञानी, शरीरधारी होकर भी जो विदेहावस्था में रहते हैं, तीर्थंकर पद जिनके उदय में है, ऐसे अरिहन्त परमेष्ठी हमारा सदा मंगल करें। अष्ट कर्मों के नाशक, अशरीरी, परम निर्विकार सिद्ध परमेष्ठी हमारा सदा मंगल करें। जिनशासन की सर्वतोमुखी उन्नति जिनके द्वारा होती है और जो स्वयं शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार चरित्र पालन करते हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी तथा समस्त शास्त्रों के ज्ञाता

और श्रेष्ठतम प्राध्यापक परम गुरु उपाध्याय परमेष्ठी हम सब का सदा मंगल करें। समस्त मुनि संघ के ये सर्वोच्च अध्यापक होते हैं। रत्नत्रय (सम्यक् दर्शन—ज्ञान—चारित्र्य) की निरन्तर आराधना में लीन परम अपरिग्रही साधु परमेष्ठी हम सब का मंगल करें।

किसी भी व्यक्ति या वस्तु की महानता उसमें निहित गुणों के कारण ही मानी जाती है। फिर ये गुण जब स्व से भी अधिक पर कल्याणकारी अधिक होते हैं तभी उनकी प्रतिष्ठा होती है। इस कसौटी पर पंच परमेष्ठी बिल्कुल खरे उतरते हैं। जन्म, मरण, रोग, बुढ़ापा, भय, पराभव, दारिद्रय एवं निर्बलता आदि इस महामन्त्र के स्मरण एवं जाप से क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं। णमोकार मन्त्र के माहात्म्य वर्णन को समझ लेने पर फिर और अधिक समझने की आवश्यकता नहीं रह जाती है—

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितो पि वा।
ध्यातेत् पंच नमस्कारं, सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥1॥

अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥2॥

अपराजित मन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥3॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूत पन्नगा।
विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥4॥

मन्त्रं संसारं सारं त्रिजगदनुपमं सर्व पापारि मन्त्रं,
संसारोच्छेद मन्त्रं विषम विषहरं कर्म निर्मूल मन्त्रम्।
मन्त्रं सिद्धि प्रदानं शिव सुख जननं केवलज्ञान मन्त्रं,
मन्त्रं श्रीजैन मन्त्रं जप जप जपितं जन्म निर्वाण मन्त्रम् ॥5॥

आकृष्टिं सुर सम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यतां,
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमनंप्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं,
पायात् पंचनमस्कारक्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥6॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्ध चक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥7॥

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव मम।
तस्मात् कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वरः ॥8॥

× × ×

वंदों पांचों परम गुरु सुर गुरु वन्दन जास।
विघन हरन मंगल करन, पूरन परम प्रकाश ॥9॥

उक्त पद्यों का मथितार्थ यह है—

पंच नमस्कार महामन्त्र का स्मरण अथवा पाठ करने वाला श्रद्धालु भक्त पवित्र हो, अपवित्र हो, सोता हो, जागता हो, उचित आसन में हो, न हो फिर भी वह शरीर और मन के (बाहरी-भीतरी) सभी पापों से मुक्त हो जाता है। उसका शरीर और मन अद्भुत पवित्रता से भर जाता है। मानव का यह शरीर लाख प्रयत्न करने पर भी सदा अनेक रूपों में अपवित्र रहता ही है, प्रयत्न यह होना चाहिए कि हमारी ओर से पवित्रता के प्रति सावधान रहा जाए। इस शरीर से भी हजार गुना मन चंचल होता है और पाप प्रवृत्ति में लीन रहकर अपवित्र रहता है। केवल णमोकार मन्त्र की पवित्रतम शरण ही इस जीव को शरीर और मन की पवित्रता प्रदान करती है। यह मन्त्र किसी भी अन्य मन्त्र या शक्ति से पराजित नहीं हो सकता, बल्कि सभी मन्त्र इसके अधीन हैं। यह मन्त्र समस्त विघ्नों का विनाशक है। समस्त मंगलों में प्रथम मंगल के रूप में सर्व-स्वीकृत है। महत्ता और कालक्रम से इसकी प्रथमता सुनिश्चित है। इस मन्त्र के प्रभाव से विघ्नों का दल, शाकिनी, डाकिनी, भूत, सर्प, विष आदि का भय क्षण भर में प्रलय को प्राप्त हो जाता है।

यह मन्त्र समस्त संसार का सार है। त्रैलोक्य में अनुपम है और समस्त पापों का नाशक है। विषम विष को हरने वाला और कर्मों का निर्मूलक है। यह मन्त्र कोई जादू-टोना या चमत्कार नहीं है, परन्तु इसका प्रभाव निश्चित रूप से चमत्कारी होता है। प्रभाव की तीव्रता और अनुपमता से भक्त आश्चर्यचकित होकर रह जाता है। यह मन्त्र समस्त सिद्धियों का प्रदाता, मुक्ति सुख का दाता है, यह मन्त्र साक्षात् केवलज्ञान है। विधिपूर्वक और भाव सहित इसका जाप या स्मरण करने से सभी प्रकार की लौकिक-अलौकिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

इससे समस्त देव सम्पदा वशीभूत हो जाती है। मुक्तिवधू वश में हो जाती है। चतुर्गति के सभी कष्टों को भस्म करने वाला यह मन्त्र है। मोह का स्तम्भक और विषयासक्ति को समाप्त करने वाला है। आत्म-विश्वास को प्रबलता देने वाला तथा सभी स्थितियों में जीव मात्र का परम मित्र है। 'अर्हं' यह अक्षर युगल साक्षात् ब्रह्म है और परमेष्ठी का वाचक है। सिद्धियों की माला का सद्बीज है। मैं इसको मन, वचन और काय की समग्रता से प्रणाम करता हूं। हे जिनेश्वर रूप महामन्त्र मुझे आपके अतिरिक्त कोई अन्य उबारने वाला नहीं है। आप ही मेरे परम रक्षक हैं। इसलिए पूर्ण करुणा भाव से हे देव ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

महामन्त्र का प्रभाव—

हम महामन्त्र णमोकार के माहात्म्य को अथवा उसके उपकार को प्रभाव के रूप में समझ सकते हैं। अनेक शास्त्रभ्य प्रसंगों, कथाओं और उक्तियों द्वारा इस माहात्म्य का लोकोत्तर प्रभाव बताया गया है। अनेकानेक भक्तों ने अपने-अपने अनुभवों को भी इस मन्त्र के प्रभाव के रूप में प्रकट किया है।

यहां कुछ व्यक्तिगत अनुभवों को उद्धृत करके इस महामन्त्र के प्रभाव को स्पष्ट करना अधिक व्यावहारिक होगा।

इस मन्त्र के चमत्कारों और प्रभावों को तीर्थंकरों एवं मुनियों के जीवन में भी घटित होते देखा गया है। भगवान पार्श्वनाथ ने इस मन्त्र की आराधना से समस्त उपसर्गों को हंसकर सहा। कमठ तपस्वी जो पंचाग्नि तप करता था, उसकी धूनी में एक अधजला नाग था, उसको पार्श्वनाथ ने णमोकार मन्त्र सुनाकर नागकुमार देव पद प्राप्त कराया।

भगवान महावीर के जीवन में भी नयसार भव में एवं नौका-प्रसंग में णमोकार मन्त्र का साहाय्य रहा।

अंजन चोर, राजा श्रेणिक, राजा श्रीपाल, सेठ सुदर्शन, जीवन्धर स्वामी एवं श्वान आदि के प्रसंग सुविदित ही हैं। अर्जुन माली जैसे हत्यारे और मुग्दल सेठ की कथा भी प्रसिद्ध है ही। जैन धर्म की दिगम्बर-श्वेताम्बर सभी शाखाओं में अनेक कथाएं महामन्त्र के

प्रभाव पर हैं। पुण्यास्रव और आराधना कथाकोष के अतिरिक्त अनेक शास्त्रों और पुराणों में भी इस मन्त्र के प्रभाव को कथाओं द्वारा प्रकट किया गया है। मुनि श्री छत्रमल द्वारा रचित 'जैन कथाकोष' में प्रसिद्ध 220 कथाएं संग्रहीत हैं। इनमें अनेक कथाएं णमोकार महामन्त्र की महिमा पर आधारित हैं।

इन पौराणिक प्राचीन कथाओं के अतिरिक्त हमारे नित्यप्रति के जीवन में घटित मन्त्रमहिमा की अनुभूतियां तो हमसे बिल्कुल सीधी बात करती हैं। यहां अत्यन्त प्रसिद्ध कतिपय कथाएं संक्षेप में प्रस्तुत हैं—

अन्तकृतदशा-6

अर्जुन माली—

मगध देश की राजधानी राजगृही में अपनी पत्नी बन्धुमती सहित अर्जुन नामक एक माली रहता था। नगर के बाहर एक बगीचे में यक्ष-मन्दिर था। अर्जुन अपनी पत्नी सहित इस बगीचे के फूल तोड़ता, यक्ष-पूजा करता और फिर उन्हें बाजार में बेचकर जीविका चलाता था।

एक दिन अर्जुन यक्ष की पूजा में लीन था और उसकी पत्नी बाहर पुष्प बीन रही थी। सहसा नगर के छह गुण्डे वहां आ गए। बन्धुमती की सुन्दरता और जवानी पर वे मुग्ध हो गए। बस एकान्त देखकर उसके साथ बलात्कार करने पर तुल गए। अर्जुन को यक्ष की प्रतिमा से बांध दिया और वे बन्धुमती का शील भंग करने लगे। अर्जुन इस अत्याचार से तिलमिला उठा। उसने यक्ष से कहा, हे यक्ष, मैंने तुम्हारी जीवन भर सेवा-पूजा यही फल पाने के लिए की है। मेरी सहायता कर— मुझे शक्ति दे, या फिर ध्वस्त होने के लिए तैयार हो जा।

यक्ष का चैतन्य चमक उठा—उसने एक शक्ति के रूप में अर्जुन माली के शरीर में प्रवेश किया, बस, अर्जुन में अपार शक्ति आ गयी। उसने क्रोध में पागल होकर छहों गुण्डों की हत्या की। अपनी पत्नी को भी समाप्त कर दिया। फिर तो उस पर हत्या का भूत ही सवार हो गया। नगर के बाहर वह रहने लगा और जो भी उसे मिलता उसकी वह हत्या कर देता। नगर में आतंक छा गया। नगर के भीतर के लोग

भीतर और बाहर के लोग बाहर ही रहने लगे। सम्पर्क टूट गया। वहां से निकलने का किसी का साहस ही नहीं होता था।

उसी समय श्रमण भगवान महावीर बिहार करते हुए वहां पधारे। राजा श्रेणिक भगवान के दर्शन करना चाहते थे, पर विवश थे। सुदर्शन सेठ ने प्राण हथेली पर रखकर भगवान के दर्शन करने का निश्चय किया। बस राजा से अनुमति ली और चल पड़े। नगर के बाहर पैर रखते ही अर्जुन से उनका सामना हुआ। अर्जुन ने अपना कठोर मुद्गल सुदर्शन को मारने के लिए उठाया, पर आश्चर्य की बात यह हुई कि अर्जुन हाथ उठाए हुए कीलित होकर रह गया। यक्ष-शक्ति भी कीलित हो गयी। क्यों? सेठ सुदर्शन ने परम शान्तचित्त से महामन्त्र णमोकार का स्तवन आरम्भ कर दिया और ध्यानस्थ खड़े रहे। कुछ देर तक यही स्थिति रही। मन्त्र की संरक्षिणी देवियां सेठ की रक्षा के लिए आ गयी थीं। बस नमस्कार करके यक्ष भाग खड़ा हुआ और अर्जुन असहाय हो गया। उसे अपनी भूख-प्यास और असहायावस्था का बोध हुआ। उसने सेठ सुदर्शन से पूर्ण विनीत भाव से क्षमा मांगी। भगवान की शरण में जाकर मुनिव्रत धारण कर लिया। नगरवासियों को उसे देखते ही बहुत क्रोध आया और शब्दों के द्वारा तथा पत्थरों के द्वारा मुनि-अर्जुन का तिरस्कार हुआ। अर्जुन ने यह बड़े धैर्य के साथ सहा, वह अविचल रहा। सुदर्शन सेठ से उसने महामन्त्र को गुरुमन्त्र के रूप में ग्रहण कर लिया था। धीरे-धीरे लोगों की धारणा बदली। अर्जुन ने अन्ततः संल्लेखना धारण की और आत्मा की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त की।

निष्कर्ष—यह कथा स्पष्ट करती है कि महामन्त्र के प्रभाव से एक भक्त के प्राणों की रक्षा होती है और दूसरी ओर एक हत्यारा अपनी राक्षसीवृत्ति को त्यागकर आत्मकल्याण भी करता है। विश्वासः फलदायकः।—सही आदमी का सही विश्वास सब कुछ कर सकता है।

"नर हो न निराश करो मन को।"

एकपतित एवं अत्यन्त अज्ञानी व्यक्ति भी यदि महामन्त्र से जीवन की सर्वोच्चता प्राप्त कर सकता है तो विवेकशील श्रद्धावान् क्या नहीं पा सकता?

अंजन चोर की कथा —

दिगम्बर आम्नाय के कथा ग्रन्थों में अंजन चोर की कथा बहुत प्रसिद्ध है। महामन्त्र की महिमा ने एक अत्यन्त पतित व्यक्ति को किस प्रकार जीवन की महानता तक पहुँचाया—यह बात इस कथा द्वारा बड़ी प्रभाविकता से व्यक्त की गयी है।

ललितांग देव जो अत्यन्त व्यभिचारी चोर और हिंसक प्रवृत्ति का व्यक्ति था, वही बाद में अंजन चोर के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यह चोर कर्म में इतना निपुण था कि लोगों के देखते-देखते ही उनकी वस्तुओं का अपहरण कर लेता था।

यह स्वयं सुन्दर और बली भी था। इसका राजगृही नगरी की प्रधान नर्तकी-वेश्या से (मणिकांचना से) अपार प्रेम था। अंजन चोर अपनी इस प्रेमिका पर इतना अधिक आसक्त था कि उसके एक संकेत पर अपने प्राण भी दे सकता था—कुछ अतिमानवीय अथवा अन्यायपूर्ण कार्य करने को तैयार था। ठीक ही है—विषयासक्त व्यक्ति का सब कुछ नष्ट होता ही है।

"विषयासक्त चित्तानां गुणः को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्॥"

अर्थात् विषयासक्त व्यक्ति का कौन-सा ऐसा गुण है जो नष्ट नहीं हो जाता, सब कुछ नष्ट हो जाता है। वैदुष्य, मनुष्यता, कुलीनता तथा सत्यवादिता आदि सभी गुण नष्ट हो जाते हैं।

एक दिन मणिकांचना ने अंजन चोर से कहा, प्राणवल्लभ, प्रजापाल महाराज की रानी कनकवती के गले में ज्योतिप्रभा नामक हार आज मैंने देखा है। मैं उसे किसी भी कीमत पर चाहती हूं। आप उसे लाकर मुझे दीजिए। मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती। अंजन चोर ने प्रेमिका को समझाया कि दो-चार दिन में वह उक्त हार ला देगा। उसे कृष्ण पक्ष की विद्यासिद्ध है—उसका अंजन कृष्ण पक्ष में ही काम करता है,' अभी शुक्ल पक्ष समाप्ति पर है। थोड़ी-सी प्रतीक्षा कर लो।

प्रेमिका ने अंजनप्रेमी से कहा, मैं बस प्राण ही त्याग दूंगी। यही मेरे और आपके प्रेम की परीक्षा है। आप तुरन्त हार ला दें, अन्यथा कल मैं जीवित न रहूंगी।

अंजन प्रभाव में आ गया और हार चुराने के लिए अंजन (मंत्रित अंजन) लगाकर रात में निकल पड़ा। हार चुराने में वह सफल हो गया। परन्तु रास्ते में दो बातें प्रतिकूल बन पड़ीं। एक तो हार की ज्योति बाहर चमक उठी और शुक्ल पक्ष के कारण, अंजन भी अकिंचित्कर हो गया। और अंजन चोर भी प्रकट रूप से पहरेदारों को दिख गया। पहरेदारों ने पीछा किया। चोर भाग कर समीपवर्ती श्मशान में एक वृक्ष के नीचे शरण खोजता हुआ पहुंचा। उसने ऊपर देखा। वहाँ 108 रस्सियों का एक जाल लटक रहा था। नीचे विविध प्रकार के (32 प्रकार के) शूल, कृपाण, बरछी, भाला आदि शस्त्र ऊर्ध्वमुखी होकर गाड़े गये थे। एक व्यक्ति वहाँ णमोकार मन्त्र का जाप करता हुआ क्रमशः एक-एक रस्सी काटता जाता था। परन्तु उसका चित्त घबराहट से भरा हुआ था, वह कभी ऊपर चढ़ता तो कभी नीचे उतरता था। अंजन चोर ने उससे पूछा, भाई, तुम यह क्या कर रहे हो? उसने कहा मैं मन्त्र द्वारा आकाश-गामिनी विद्या सिद्ध कर रहा हूं। अंजन चोर यह सुनकर हंसने लगा और बोला, आप तो डरपोक हैं, आपका विश्वास भी कमजोर है, आपको विद्या सिद्ध नहीं हो सकती। आप मंत्र मुझे बता दीजिए मैं सिद्ध करूंगा। मुझे मरने का भी डर नहीं है। मैं यदि मरूँ भी तो अच्छे कार्य में ही मरना चाहता हूं। तब वारिषेण नाम के उस डरपोक साधक ने अंजन चोर को णमोकार मन्त्र बताया और मन्त्र सिद्धि की विधि भी बतायी। बस अंजन चोर ने पूरी श्रद्धा के साथ निर्भय होकर मन्त्र पाठ किया और एक-एक आवृत्ति पर एक-एक रस्सी काटता गया। अन्त में 108वीं रस्सी कटते ही, वह नीचे गिरे, इसके पूर्व ही, आकाश गामिनी विद्या ने प्रकट होकर उसे (अंजन चोर को) ऊपर उठा लिया। अंजन चोर को विद्या ने नमस्कार किया और कहा, मैं आपसे प्रसन्न हूं, आपके हर सत्कार्य में सहायता करूंगी।

अंजन चोर को इस घटना से ऐसी लोकोत्तर मानसिक-शान्ति मिली कि बस उसने तुरन्त सुमेरू पर्वत पर पहुंचकर दीक्षा ली और कठिन तपश्चर्या करके अष्टकर्मों का नाश किया तथा मोक्ष प्राप्त किया—अर्थात् समस्त संसार के बन्धनों से मुक्त होकर आत्मा की निर्मलतम स्थिति को प्राप्त किया।

एक पापी, दुराचारी व्यक्ति अपनी पूरी श्रद्धा के कारण महामन्त्र की सहायता से बन्धन मुक्त हो सका, जबकि श्रद्धाहीन वारिषेण ज्ञानी होकर भी कुछ न पा सका। श्रद्धाहीन ज्ञान से न व्यक्ति स्वयं को ऊपर उठा सकता है न दूसरों को। कहा भी है—"संशयात्मा विनश्यति" इसी प्रकार अनन्तमती की कथा, रानी प्रभावती की कथा भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

पशुओं पर भी प्रभाव

1. "णमोकार मन्त्र के प्रभाव से (स्मरण से) बन्दर ने भी आत्म कल्याण किया है। कहा गया है कि एक अर्धमृत बन्दर को मुनिराज ने दयाकर णमोकार-मन्त्र सुनाया। बन्दर ने भक्तिपूर्वक णमोकार मन्त्र सुना जिससे वह चित्रांगद नामक देव हुआ।"
2. "पुण्याश्रव कथा कोश के अनुसार कीचड़ में फंसा एक हथिनी को णमोकार मन्त्र के श्रवण के प्रभाव से नर पर्याय प्राप्त हुआ।"
3. "पार्श्व पुराण में भगवान पार्श्वनाथ ने जलते हुए नाग-नागिनी को महामन्त्र सुनाया और अत्यन्त शान्त चित्त से श्रवण के कारण वे नाग-नागिनी बाद में धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। यह कथा तो सभी जैन-वर्गों में प्रकारान्तर से प्रसिद्ध है।"
4. "जीवनधर स्वामी ने मरणासन्न कुत्ते को महामन्त्र णमोकार सुनाया था। मन्त्र की पवित्र ध्वनि तरंगों का कुत्ते के समस्त शरीर और मन पर अद्भुत सात्विक प्रभाव पड़ा। और उसने तुरन्त देव पर्याय प्राप्त की।

महामन्त्र के निरादर का फल

आठवें चक्रवर्ती सुभीम का रसोइया बड़ा स्वामीभक्त था। उसने एक दिन सुभीम को गरम-गरम खीर परोस दी। सुभीम ने गर्म खीर खा ली। उनकी जीभ जलने लगी। बस क्रोध में भर कर खीर का पूरा बर्तन रसोइये के सिर पर उंडेल दिया। इससे वह तुरन्त मरकर व्यंतर देव हुआ। लवण समुद्र में रहने लगा। उसने अवधि ज्ञान से अपने पूर्वभव की जानकारी प्राप्त की, उसके मन में चक्रवर्ती से बदला लेने की बात ठन गयी।

बस वह तपस्वी का वेष बनाकर और कुछ स्वादिष्ट फल लेकर चक्रवर्ती सुभौम के पास पहुंचा। उसने वे फल चक्रवर्ती को दिए। फल बहुत स्वादिष्ट थे। चक्रवर्ती ने और खाने की इच्छा प्रकट की। तपस्वी ने कहा, मैं लवण समुद्र के एक टापू में रहता हूं, वहीं ये फल प्राप्त होते हैं। आप मेरे साथ चलिए और यथेच्छ रूप से खाइए। चक्रवर्ती लोभ का संवरण न कर सके और उस तपस्वी (व्यंतर) के साथ चल दिये।

जब व्यंतर समुद्र के बीच में पहुंच गया तो तुरन्त वेष बदलकर क्रोधपूर्वक बोला, "दुष्ट चक्रवर्ती, जानता है मैं कौन हूं ? मैं ही तेरा पुराना पाचक हूं। रसोइया हूं। मैं तुझसे बदला लूंगा।"

चक्रवर्ती अत्यन्त असहाय होकर णमोकार मन्त्र का पाठ करने लगे। इस महामन्त्र की महाशक्ति के सामने व्यन्तर की विद्या बेकार हो गयी। तब व्यन्तर ने एक उपाय निकाला। उसने चक्रवर्ती से कहा, "यदि अपने प्राणों की रक्षा चाहते हो तो णमोकार मन्त्र को पानी में लिखकर उसे अपने पैर के अंगूठे से मिटा दो। चक्रवर्ती ने भयभीत होकर तुरन्त णमोकार मन्त्र को पानी में लिखकर पैर से मिटा दिया। बस व्यन्तर की बात बन बैठी। मन्त्र का प्रभाव अब समाप्त हो गया। तुरन्त व्यन्तर ने चक्रवर्ती को मारकर समुद्र में फेंक दिया और बदला ले लिया। अनादर करने पर महामन्त्र का कोई प्रभाव नहीं रहता, बल्कि ऐसे व्यक्ति का अपना शरीरबल एवं मनोबल भी क्षीण हो जाता है। णमोकार मन्त्र के अपमान के कारण चक्रवर्ती को सप्तम नरक में जाना पड़ा।

मन की पवित्रता, उद्देश्य की पवित्रता और शतप्रतिशत आस्था इस महामन्त्र के लिए परमावश्यक है। भक्त अज्ञानी हो, रुग्ण हो, उचित आसन से न बैठा हो, शारीरिक स्तर पर अपवित्र हो तो भी क्षम्य है। महामन्त्र ऐसे व्यक्ति की भी रक्षा करता है और उसे शक्ति प्रदान करता है। परन्तु जानबूझकर लापरवाही और निरादर करने वालों को मन्त्र-रक्षक देवी-देवता क्षमा नहीं करते।

"इत्थं ज्ञात्वा महाभव्याः कर्तव्यः परया मुदा।
सार पंचनमस्कारः विश्वासः शर्मदः सताम्।।"

श्रीपाल-मैना सुन्दरी—

समस्त जैन शाखाओं में श्रीपाल और उसकी पत्नी मैना सुन्दरी की कथा प्रसिद्ध है।

श्रीपाल की बाल्यावस्था में ही उसके पिता राजा सिंहरथ की मृत्यु हो गई। श्रीपाल के चाचा ने तुरन्त राज्य पर अधिकार कर लिया और श्रीपाल की मां मन्त्रियों की सहायता से अपनी और अपने पुत्र की जान बचाने के लिए निकल भागी। जंगलों में भटकते-भटकते श्रीपाल को कुष्ट रोग हो गया। किसी तरह उज्जैन नगरी में माता-पुत्र पहुंचे।

उज्जैन के राजा के दो पुत्रियां थीं—सुरसुन्दरी और मैना सुन्दरी। सुरसुन्दरी हर बात में अपने पिता का झूठा समर्थन करके लाभ उठा लेती थी; जबकि मैना सुन्दरी पिता का आदर करते हुए भी सत्य का ही समर्थन करती थी।

एक बार राजा ने भरी सभा में अपनी दोनों बेटियों को बुलाया और पूछा—"तुम्हें सब प्रकार के सुख देने वाला कौन है?"

सुरसुन्दरी ने उत्तर दिया, "पूज्य पिताजी, मैं जो कुछ भी हूं, आपकी ही कृपा से हूं। आप ही मेरे भाग्य विधाता हैं।" इस उत्तर से राजा का अहंकार तुष्ट हुआ और उसने हर्ष प्रकट किया।

अब मैना सुन्दरी को उत्तर देना था। उसने कहा, "पिताजी, मैं जो कुछ भी हूं, अपने पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों के कारण हूं। आप भी जो कुछ हैं अपने शुभ कर्मों के कारण हैं। मेरा और आपका पुत्री-पिता का नाता तो निमित्त मात्र है।"

इस उत्तर से पिता-राजा को बहुत गुस्सा आया। राजा ने सुरसुन्दरी का विवाह एक राजकुमार से किया और उसे बहुत अधिक धन-सम्पत्ति देकर विदा किया।

मैना सुन्दरी का विवाह कुष्ट रोगी श्रीपाल से किया गया और दहेज में कुछ नहीं दिया गया। राजा ने कहा—"मैना सुन्दरी अब देख अपने कर्मों का फल। अपनी किस्मत को बदलकर दिखाना।"

मैना सुन्दरी ने विनयपूर्वक अपने पिता से कहा, "पिताजी, मैं आपको दोष नहीं देती हूं। मेरे भाग्य में होगा तो अच्छा समय आएगा ही। मैं धर्म पर और महामन्त्र पर अटूट श्रद्धा रखती हूं।

बस मैना सुन्दरी ने अपने पति की पूरी सेवा करना प्रारम्भ कर दिया। वह नित्यप्रति महामन्त्र का जाप करने लगी और भगवान के गन्धोदक से पति को चर्चित भी करने लगी। पति के समीप बैठकर महामन्त्र का पाठ करती रही। धीरे-धीरे पति श्रीपाल का कुष्ट रोग समाप्त हो गया। वह परम सुन्दर व्यक्ति बन गया। उसके मन्त्रियों ने प्रयत्न करके उसका पता लगाया। अन्ततः श्रीपाल को उसका राजा पद प्राप्त हुआ।

महामन्त्र के विषय में निजी अनुभव—

अब तक हमने कतिपय पौराणिक कथाओं के आधार पर महामन्त्र णमोकार के माहात्म्य एवं प्रभाव कीए क भव्य झलक देखी। अब और अधिक प्रामाणिकता की तलाश में हम अपने ही युग के सहजीवी-समकालीन व्यक्तियों के कुछ महामन्त्र सम्बन्धी अनुभव प्रस्तुत कर रहे हैं—

1. घटना 13-11-1985 के प्रातःकाल की है। सम्पूर्ण तमिलनाडु गत दस दिनों से अतिवृष्टि की प्रलयंकारी चपेट में था। मद्रास नगर का लगभग एक चौथाई भाग जलमग्न था। मैं मद्रास नगर के ही एक भूखण्ड जमीन-पल्लवरम् में रहता हूं। 13-11-1985 को प्रातः होते-होते मेरा समस्त मुहल्ला खाली हो गया। लोग घर छोड़कर चले गए। सभी के घरों में 4-5 फुट पानी आ गया था। 3-4 किलोमीटर तक पानी ही पानी भरा हुआ था। मेरे घर में दरवाजे की चौखट तक पानी आ चुका था। सड़क से लगभग 4 फुट ऊंची मेरी नीव है। तीन-चार इंच पानी और बढ़ता तो मेरे घर में पानी आ जाता। मेरी पत्नी और पुत्री की घबराहट बढ़ती ही जा रही थी। मैंने कहा, थोड़ी देर तो धैर्य रखो, कुछ न कुछ होगा ही।

मैं चुपचाप भीतर के कमरे में बैठकर महामन्त्र णमोकार का पाठ करने लगा। लगभग 15 मिनट के बाद सहसा पानी बरसना बन्द हुआ। धीरे-धीरे भरा हुआ पानी भी घटने लगा। घर भर में अपार शान्ति छा गयी और उल्लास भी। यह मेरे जीवन में महामन्त्र का सबसे बड़ा उपकार है। समस्त मुहल्ले को राहत मिली। महामन्त्र के अतिरिक्त मानवीय शक्ति क्या कर सकती थी ?

2. 'जैन दर्शन' पत्रिका के वर्ष 3 अंक 5-6 जखोरा (ग्राम) जिला झांसी (उत्तर प्रदेश) निवासी अब्दुल रज्जाक मुसलमान ने महामन्त्र की महिमा का स्वानुभव प्रकाशित कराया है। इसका उल्लेख डॉ० नेमीचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य ने अपनी पुस्तक 'मंगल मन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन' में भी किया है।

वह अक्षरशः इस प्रकार है—"मैं ज्यादातर देखता या सुनता हूं कि हमारे जैन भाई धर्म की ओर ध्यान नहीं देते। और जो थोड़ा बहुत कहने-सुनने को देते भी हैं तो वे सामायिक और णमोकार मन्त्र के प्रकाश से अनभिज्ञ हैं। यानी अभी तक वे इसके महत्त्व को नहीं समझते हैं। रात-दिन शास्त्रों का स्वाध्याय करते हुए भी अन्धकार की ओर बढ़ते जा रहे हैं। अगर उनसे कहा जाए कि भाई, सामायिक और णमोकार मन्त्र आत्मा में शान्ति पैदा करने वाले और आए हुए दुःखों को टालने वाले हैं। तो वे इस तरह से जवाब देते हैं कि यह णमोकार मन्त्र तो हमारे यहां के छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं। इसको आप हमें क्या बताते हैं? लेकिन मुझे अफसोस के साथ लिखना पड़ रहा है कि उन्होंने सिर्फ दिखावे की गरज से बस मन्त्र को रट लिया। उस पर उनका दृढ़ विश्वास न हुआ और न वे उसके महत्त्व को ही समझे हैं। **मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि इस मन्त्र पर श्रद्धा रखने वाला हर मुसीबत से बच सकता है क्योंकि मेरे ऊपर से ये बातें बीत चुकी हैं।**

मेरा नियम है कि जब मैं रात को सोता हूं तो णमोकार मन्त्र को पढ़ता हुआ सो जाता हूं। एक मरतबा जाड़े की रात का जिक्र है कि मेरे साथ चारपाई पर एक बड़ा सांप लेटा रहा, पर मुझे उसकी खबर नहीं। स्वप्न में जरूर ऐसा मालूम हुआ जैसा कि कह रहा हो कि उठ सांप है। मैं दो-चार मरतबे उठा भी और उठकर लालटेन जलाकर नीचे ऊपर देखकर फिर लेट गया, लेकिन मन्त्र के प्रभाव से, जिस ओर सांप लेटा था, उधर से एक मरतबा भी नहीं उठा। जब सुबह हुआ, मैं उठा और चाहा कि बिस्तर लपेट लूं, तो क्या देखता हूं कि बड़ा मोटा सांप लेटा हुआ है। मैंने जो पल्ली खींची तो वह झट उठ बैठा और पल्ली के सहारे नीचे उतरकर अपने रास्ते चला गया। यह सब महामन्त्र णमोकार के श्रद्धापूर्ण पाठ का ही प्रभाव था जिससे एक विषैला सर्प भी अनुशासित हुआ।

दूसरे अभी दो-तीन माह का जिक्र है कि जब मेरी बिरादरी वालों को मालूम हुआ कि मैं जैन मत पालने लगा हूं, तो उन्होंने एक सभा की, उसमें मुझे बुलाया गया। मैं जखोरा से झांसी जाकर सभा में शामिल हुआ। हर एक ने अपनी-अपनी राय के अनुसार बहुत कुछ कहा-सुना और बहुत से सवाल पैदा किए, जिनका कि मैं जवाब भी देता गया। बहुत से महाशयों ने यह भी कहा कि ऐसे आदमी को मार डालना ठीक है। अपने धर्म से दूसरे धर्म में, यह न जाने पाए। अन्त में सब चले गए। मैं भी अपने घर आ गया। जब शाम का समय हुआ—यानी सूर्य अस्त होने लगा तो मैंने सामायिक करना आरम्भ किया और जब सामायिक से निश्चिन्त होकर आंखें खोली तो देखता हूं कि एक बड़ा सांप मेरे आस-पास चक्कर लगा रहा है और दरवाजे पर एक बर्तन रखा हुआ मिला, जिससे मालूम हुआ कि कोई इसमें बन्द करके छोड़ गया है। छोड़ने वाले की नीयत एक मात्र मुझे हानि पहुंचाने की थी।

लेकिन उस सांप ने मुझे नुकसान नहीं पहुंचाया। मैं वहां से डरकर आया और लोगों से पूछा कि यह काम किसने किया है, परन्तु कोई पता न लगा। दूसरे दिन जब सामायिक के समय पड़ोसी के बच्चे को सांप ने डस लिया तब वह रोया और कहने लगा कि हाय मैंने बुरा किया कि दूसरे के वास्ते चार आने देकर जो सांप लाया था, उसने मेरे बच्चे को काट लिया। बच्चा मर गया। पन्द्रह दिन बाद वह आदमी भी मर गया। देखिए सामायिक और णमोकार मन्त्र कितना जबरदस्त स्तम्भ है कि आगे आया हुआ काल भी प्रेम का बर्ताव करता हुआ चला गया।"

'तीर्थंकर' पत्रिका के णमोकार मन्त्र विशेषांक-2, जनवरी 1981 से कतिपय उद्धरण प्रस्तुत हैं। इन उद्धरणों से कुछ प्रामाणिक साधुओं, मुनियों, विद्वानों एवं गृहस्थों की प्रखर स्वानुभूतियों की जानकारी मिलती है--

1. **प्यास शान्त हुई**—स्व० गणेश प्रसाद जी वर्णी जब दूसरी बार सम्मेद शिखर की यात्रा पर गए, तब परिक्रमा करते समय उन्हें बड़ी जोर की प्यास लगी। उनका चलना मुश्किल हो गया। वे णमोकार मन्त्र का स्मरण करते हुए भगवान को उलाहना देने लगे कि प्रभो,

शास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि सम्मेद शिखर की वंदना करने वाले को तिर्यंच/नरक गति नहीं मिलती। प्यास के कारण यदि मैं आर्तभाव से मरूंगा तो तिर्यंच गति में जाऊंगा, मेंढक बनूंगा, क्या शास्त्र में लिखा मिथ्या हो जाएगा? थोड़ी देर बाद एक यात्री उधर से निकला और उसने बताया कि पास ही में एक तालाब है। वर्णीजी वहां गए, पास में छन्ना था ही, पानी छानकर पिया। प्यास शान्त हो गयी। याद आया कि पहले भी उन्होंने यहां परिक्रमा की थी, तब तो यह तालाब था नहीं। गौर से देखने पर न तो वहां आस-पास आगे-पीछे वह यात्री था, न तालाब, लेकिन प्यास अब बुझ गयी थी और परिक्रमा में उत्साह आने लगा था। —सिघई गरीब दास जैन (64 वर्ष) कटनी (म० प्र०)

2. णमोकार मन्त्र को मैं अपने जीवन का मूल-मन्त्र मानता हूं। जब कभी मुझे ऐसा लगता है कि मैं किसी कठिनाई में फंस गया हूं, उस समय यह मन्त्र मुझे बड़ी शक्ति देता है। मैं ऐसा मानता हूं कि जैसे कहीं कोई विद्युत् कौंध जाती हो, कोई इलेक्ट्रिक वेव आकर मिल जाती हो, उसी तरह से मेरे मानस पर भीतर और बाहर जब मैं देखता हूं, इस मन्त्र का ही प्रभाव मानता हूं।

—देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच (म० प्र०)

3. **अद्भुत प्रभाव/महान् लाभ**—इस मन्त्र का जाप करते समय अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। मैं एक सांस में जप करता हूं। मैंने जीवन के उन क्षणों में भी जप किया है जब विघ्न-बाधाओं की घटाएं उमड़-घुमड़कर छायी थीं। पर जाप करते ही दाक्षिणात्य पवन की तरह वे कुछ ही क्षणों में नष्ट हो गयी थीं।

जीवन में मैं शताधिक वार इस मन्त्र का अद्भुत प्रभाव देख चुका हूं। —देवेन्द्र मुनि शास्त्री (49 वर्ष), उदयपुर

4. **अनुभूति अभिव्यक्ति से परे**—इसके जाप से मन में शान्ति और एकाग्रता की जो अनुभूति होती है, वह अभिव्यक्ति से परे है। जब भी जीवन में बाधाएं आयीं, उस समय प्रस्तुत मन्त्र के जाप से वे उसी तरह नष्ट हो गयी और ऐसा लगा कि सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है। —राजेन्द्र मुनि (26 वर्ष) उदयपुर

5. **मन्त्रोच्चारण का प्रभाव**—मन्त्रोच्चार से चित्त में प्रसन्नता, परिणामों में मग्नता और निर्मलता आती है। पर्वत की चोटी पर,

एकान्त में, रात्रि के समय भय की परीक्षा हेतु मैंने इस मन्त्र का ध्यान-मनन-चिन्तन किया। परिणामस्वरूप मैंने अपार निर्भयता और शान्ति का अनुभव किया।

एक बार मेरे कमरे के पास एक कुत्ता मरणासन्न था, छटपटा रहा था, एक श्रावक ने मुझे बुलाया। मैंने उस कुत्ते के कान में 10 मिनट तक मन्त्रोच्चार किया, उस मरणासन्न कुत्ते की आंखें खुल गयीं। कुत्ता स्वस्थ होकर भाग गया।

इसी प्रकार 10-11 वर्षीय बालक को 105-106 डिग्री बुखार था। डाक्टर यह कहकर चले गए कि अब यह कुछ घण्टों का ही मेहमान है। मुझे मालूम हुआ। मैंने उस बच्चे के सिर पर हाथ फेरा, साथ ही बीस मिनट तक णमोकार मन्त्र का उच्चारण उसके कान में धीरे-धीरे करता रहा। बालक सहसा हंसने लगा। बच्चे का बुखार सहसा उतर गया। डाक्टर आश्चर्य में पड़ गये।

6. **एकाग्रता और शान्ति की प्राप्ति**—णमोकार मन्त्र के जाप से मुझे प्रायः एकाग्रता प्राप्त होती है। शान्ति भी, लेकिन वह कभी-कभी यन्त्रवत् होती है। मैंने इस मन्त्र का जाप रोग में, विपत्ति के समय, कभी-कभी गलत काम करने से उत्पन्न भय, बदनामी को टालने के लिए भी संकट के समय किया है जिसका फल निकला है—अब भविष्य में ऐसा काम नहीं करें।

दो विचित्र एवं विपरीत अनुभव—

7. **विघ्न निवारण इसका उद्देश्य नहीं**—मन्त्रोच्चार के क्षणों में मैं एकाग्रता चाहता हूं, पर मन अपना काम करता है और जीभ अपना काम करती है। दोनों में ताल-मेल नहीं रहता। विघ्न-बाधा, अस्वास्थ्य आदि के निवारण के उद्देश्य से मैंने कभी इसका जाप नहीं किया। इस मन्त्र का यह उद्देश्य है।

—डॉ देवेन्द्र कुमार जैन (55 वर्ष) इन्दौर

8. **दिशा-दर्शन**—इस मन्त्र के जाप से एकाग्रता और शान्ति का अनुभव होता है। हर कठिन परिस्थिति में यही सहारा रहा है। इससे मनोबल बढ़ा है। परिणाम की मन्त्र जाप से अपेक्षा नहीं की, क्योंकि यह दृढ़ विश्वास है कि सुख-दुःख पूर्व जनित कर्मों का फल है और वह भोगना ही है। इसके स्मरण से शान्ति के परिणामस्वरूप कार्य करने

की राह मिली। कुछ समय से नियमित जाप बन्द हो गया; फिर भी श्रद्धा के कारण यदाकदा जपता हूं। आश्चर्यजनक अनुभव हो रहा है कि जिस-जिस दिन मैं इस मन्त्र का जाप करता हूं, कोई न कोई अप्रत्याशित संकट आ जाता है। —डॉ० मांगीलाल कोठारी (51 वर्ष) इन्दौर

मथितार्थ—

इस सम्पूर्ण निबन्ध का आधार भक्तों का महामन्त्र णमोकार पर अटूट विश्वास है—तर्कातीत शंकातीत विश्वास है। उनके मन्त्र सम्बन्धी अनुभव तार्किकों और नास्तिकों को मिथ्या अथवा आकस्मिक लग सकते हैं।

मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि हम मनोविज्ञान और अध्यात्म को तो मानते ही हैं। कम से कम मानसिकता और भावनात्मकमा को तो मानते ही हैं। साहित्य के शृंगार, करुण, वीर, रौद्र आदि नव रसों को भी अपने जीवन में घटित होते देखते ही हैं। यह सब मूलत: और अन्तत: हमारे मनोजगत् के अर्जित एवं सर्जित भावों का ही संसार है।

मन्त्रों को और विशेषकर इस महामन्त्र को यदि हम पारलौकिक शक्ति से न भी जोड़ें तो भी इतना तो हमें मानना ही होगा कि हमें चित्त की स्थिरता, दृढ़ता और अपराजेयता के लिए स्वयं में ही गहरे उतरना होगा और दूसरों के गुणों और अनुभवों से कुछ सीखना होगा। बस महामन्त्र से हम स्वयं की शक्तियों को अधिक बलवती एवं चैतन्य युक्त बनाने की प्रेरणा पाते हैं। मन्त्र हमारा आदर्श है—हमारी भीतरी शक्तियों को जगाने और क्रियाशील बनाने वाला।

हम अपने नित्यप्रति के संसार में जब किसी बीमारी, राजनीतिक संकट, शीलसंकट, पारिवारिक संकट एवं ऐसे ही अन्य संकटों से घिर जाते हैं और घोर अकेलेपन का, असहायता का अनुभव करते हैं, तब हम क्या करते हैं? रोते हैं, चीखते हैं और कभी-कभी घुटकर आत्म-हत्या भी कर लेते हैं। या फिर राक्षस भी बन जाते हैं। पर ऐसी स्थिति में एक और विकल्प है अपने रक्षकों और मित्रों की तलाश। अपनी भीतरी ऊर्जा की तलाश। हम मित्रों को याद करते हैं, पुलिस की सहायता लेते हैं—आदि-आदि। इसी अकेलेपन के सन्दर्भ में सहायता और आत्म-जागरण की तलाश में हम अपने परम पवित्र ऋषियों,

मुनियों एवं तीर्थंकरों के महान् कार्यों और आदर्शों से प्रेरणा लेते हैं। मन्त्र तो अन्ततः अनादि अनन्त हैं। तीर्थंकरों ने भी इनसे ही अपना तीर्थ पाया है। जब हमें किसी मंगल की, किसी लोकोत्तम की शरण लेनी है, तो स्वाभाविक है कि हम महानतम को ही अपना रक्षक और आराध्य बनाएंगे और हमारा ध्यान—हमारी दृष्टि महामन्त्र णमोकार पर ही जाएगी।

स्वयं की संकीर्णता और सांसारिक स्वार्थपरता को त्यागकर हमें अपने ही विराट् में उतरना होगा—तभी महामन्त्र से हमारा भीतरी नाता जुड़ेगा। महामन्त्र तक पहुंचने के लिए हमें मन्त्र (शुद्ध-चित्त) तो बनाना ही होगा। अन्ततः इस महामन्त्र के माहात्म्य एवं प्रभाव के विषय में अत्यन्त प्रसिद्ध आर्षवाणी प्रस्तुत है—

"हरइ दुहं कुणइ सुहं, जणइ जसं सोसए भव समुद्दं।
इह लोए पर लोए, सुहाण मूलं णमुक्करो।।"

अर्थात् यह नवकार मन्त्र दुःखों को हरण करने वाला, सुखों का प्रदाता, यशदाता और भवसागर का शोषण करने वाला है। इस लोक और परलोक में सुख का मूल यही नवकार है।

"भोयण समये समणे, वि बोहणे-पवेसणे-भये-वसणे।
पंच नमुक्कारं खलु, समरिज्जा सव्वकालंपि।।"

अर्थात् भोजन के समय, सोते समय, जागते समय, निवास स्थान में प्रवेश के समय, भय प्राप्ति के समय, कष्ट के समय इस महामन्त्र का स्मरण करने से मन वांछित फल प्राप्त होता है।

महामन्त्र णमोकार मानव ही नहीं अपितु प्राणी मात्र के इहलोक और परलोक का सबसे बड़ा रक्षक एवं निर्देष्टा है। इस लोक में विवेकपूर्ण जीवन जीते हुए मानव अपना अन्तिम लक्ष्य आत्मा की विशुद्ध अवस्था इस मन्त्र से प्राप्त कर सकता है—यही इस मन्त्र का चरम लक्ष्य भी है।

"जिण सासणस्स सारो, चदुरस पुव्वाण जे समुद्धारो।
जस्स मणे नव कारो, संसारो तस्स किं कुणइ।"

अर्थात् नवकार जिन शासन का सार है। चौदह पर्व का उद्धार है। यह मन्त्र जिसके मन में स्थिर है संसार उसका क्या कर सकता है अर्थात् कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

महामंत्र णमोकार और चिकित्सा विज्ञान

मानव अनंत शक्तियों का अक्षय कोश है, वह अपनी साधना से स्वयं परमात्मत्व प्राप्त कर सकता है। वह आत्मा के स्तर पर चिर किशोर, अजर और अमर है। परंतु इस अंतिम सत्य के बावजूद अभी आत्मा कर्मबद्ध, संसारी और पराधीन है, दुर्बल है। उसे अपने आवरणों को हटाना और नष्ट करना ही होगा। इस कठोर और नग्न सत्य को ध्यान में रखकर हमें एक क्रमबद्ध एवं संतुलित जीवन पद्धति स्वीकार करनी ही होगी। हमें अपनी निजी क्षमता के साथ इतर मानवीय एवं दैवी सहायता पर निर्भर करना ही होगा। आहार, विद्या, स्वास्थ्य एवं उज्ज्वल मनोभावों के लिए हम विद्वान, डाक्टर एवं संतों से मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार दैवी शक्ति सम्पन्न मंत्रों और स्तोत्रों से भी हमें संरक्षण मिलता है। इस दिशा में महामंत्र णमोकार की महिमा अनुपम है, यह निर्विवाद है। इस अनाद्यनन्त महामंत्र के विषम में कुछ तथ्य ध्यातव्य हैं।

महामंत्र की अर्थ-चेतना अर्थात् सामान्य नमस्कार मूलक अर्थ से हमें आत्मोद्धार रूपी भाव चेतना में उतरना होगा और नित्य-प्रति अपने शरीर, वाणी और मन की गतिविधि को उदात्त बनाना होगा। पंच परमेष्ठी आत्मा के स्तर पर समान हैं, फिर भी अरिहंत और सिद्ध देव परमेष्ठी है तो शेष तीन परमेष्ठी गुरु परमेष्ठी हैं। ये मुक्ति के संकल्पी हैं। अभी संसारी हैं। संकल्प के धरातल पर समान हैं। सभी परमेष्ठी कर्मनाश, शत्रुनाश, संसारनाश और मुक्ति-लक्ष्य के स्तर पर समान है।

महामंत्र प्रमुख रूप से आध्यात्मिक उन्नयन का साधन है। वह गौण रूप से प्रभावी स्तर पर सांसारिक संतुलन-दाता और भक्तों का संकट-मोचक भी है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या पंच परमेष्ठी स्वयं भक्तों का कष्ट दूर करते हैं। उत्तर है कि नहीं। परमेष्ठियों के गुणों और कार्यों से प्रेरणा पाकर भक्त स्वयं में अपार बल और साहस का

अनुभव करता है। अरिहंत परमेष्ठी के अगरक्षक–भक्त देव भी भक्तों की रक्षा करते हैं। प्रत्येक तीर्थंकर के अंगरक्षक यक्ष–यक्षिणी है ही। हमारे सभी मंदिरों में तीर्थंकरों की सशरीर अरिहंत अवस्था की उपासना होती है। कहीं-कहीं यक्ष यक्षिणी अगल-बगल में होते हैं तो कहीं स्वतंत्र-कक्ष की वेदी पर।

महामंत्र के रोग-निवारक पक्ष पर चर्चा प्रारंभ करने से पहले मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हमें स्वयं में ईमानदार होना होगा। अर्थात् हम देव, देवांगना, यक्ष, यक्षिणी को संसारी मान कर उन्हें तुच्छ समझे, उनका सम्मान न करे, उन्हें मुक्ति-मार्ग में बाधा मानें और उनसे रोग निवारण, रक्षा और सहायता भी चाहे, तो यह हमारा दोगलापन ही होगा और कुछ नहीं। जीवन में पुलिस, मित्र, वकील, डाक्टर से सहायता पाकर हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं, एहसान मानते हैं।

निष्कर्ष यह है कि भौतिक पक्ष में संतुलन लाकर ही हम अध्यात्म प्राप्त कर सकते हैं, कोरी उड़ान भरने से नहीं। बुखार, सिर-दर्द, पेट-दर्द एवं भूख को जीतकर ही पूजन, भजन और अध्यात्म का सिलसिला चल सकता है। यह हमारा सहस्त्रों वर्षों का व्यक्तिगत एवं सामूहिक अनुभव है कि हम लोक में जीते हैं और परलोक का मृदंग पीटते हैं, यह आत्म-प्रवंचना है। हमें स्वयं में संतुलन लाना ही होगा। सरल होना बहुत कठिन है। हमारे सभी तीर्थंकर क्षत्रिय थे। वे लोक-जीवन एवं गृहस्थाश्रम में रहे और समय आने पर तुरंत उत्कृष्ट त्याग एवं साधना के साथ परम-पद प्राप्त किया।

1. रुग्णता या अस्वस्थता शारीरिक एवं मानसिक आघात या असंतुलन से संबंधित होती है। अपनी सहज शरीर एवं मन की स्थिति में न होना अस्वस्थता या रुग्णता है। मन शरीरस्थ इन्द्रियों और अंगों का राजा है, नियामक है अतः इसका सहज होना परम आवश्यक है। अस्वस्थता के उपचार के लिए एलोपैथी, होम्योपैथी, यूनानी, सिद्ध, आयुर्वेदीय आदि चिकित्सा पद्धतियाँ विश्व में प्रचलित है। दैवी, मंत्रपरक एवं स्तोत्रपरक विश्वास मूलक पद्धति भी प्रचलित

है। प्रायः देखा यह जाता है कि हम प्रभु, मंत्र या स्तोत्र से लाभ भी लेना चाहते हैं और विश्वास या श्रद्धा भी पूरी नहीं है। कभी-कभी हम डाक्टर या वैद्य से इलाज भी कराते हैं और मंत्र का लाभ लेने का उपक्रम भी करते रहते है। मन अर्ध-आस्तिक रहता है। संशयात्मा विनश्यति–यह जानते ही नहीं हैं। परंतु यह भी अनुभूत सत्य है कि मानव–आज का मानव खतरे (Risk) से बचकर जीना चाहता है।

2. महामंत्र की साधना से, नियमित जाप करने से आरूढ़ संकट से मुक्ति प्राप्त होती है। जाप या नियमित पाठ विशुद्ध मन से होना अनिवार्य है। यह नमस्कार मंत्र चमत्कारी तो है ही, **इसका** प्रत्येक, पद, प्रत्येक अक्षर ग्रह, तत्त्व, रंग एवं आकार **के आधार पर** समझे जाने पर भक्त पर प्रकट रूप से व्यापक प्रभाव डालते हैं। इसका बीज रूप ओम् है। प्रणव ओम् का पर्याय है। इसके द्वारा भी रोग-मुक्ति एवं सुरक्षा-प्राप्ति होती है।

3. ओम भारत के वैदिक, श्रमण (जैन) एवं बौद्ध धर्मों में तथा विश्व के अन्य बड़े धर्मों में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मान्य है। ओम् के उच्चरित, लिखित एवं अर्थपरक तीन-तीन रूप हैं। जैनों में तो तीर्थंकरों की दिव्यवाणी ही ओंकारात्मक होकर खिरती थी। अतः आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के समय से तो ओम् जैनों में है ही।

ओम के तीन रूप

लिखित रूप

1. **ॐ**–यह एकाक्षरी ओम् है। यह अनादि, स्वयंम्भू, ईश्वरवाची तथा यज्ञों और वेदों में मान्य है। इसी को प्रणव भी कहा गया है।
2. **ओम्**–यह व्याकरण सम्मत प्रकृति प्रत्यय प्रधान ओम है। यह भी एकाक्षरी है। यह अन्रक्षणे धातु से निष्पन्न 19 अर्थों वालो ओम् है।
3. **ओऽम्**–यह पृथक-पृथक् तीन अक्षरों से बना है–
   अ+उ+म्। यह ब्रह्मा, विष्णु, महेश वाची है।

उच्चरित रूप

1. **ओम्**—यह ऊकारात्मक उच्चारणयुक्त एवं कुडलिनी जागरण में सहायक। परंतु इसका उच्चारण भी ओकारात्मक ही किया जाता है जो ठीक नहीं है। यह उच्चारण ऋषियों, योगियों से ही संभव है। इसमें श्वास भी दीर्घता और सस्वरता अपेक्षित है।
2. **ओम्**—यह दीर्घ से प्लुत होता हुआ उच्चारण होगा। ओकारात्मक होगा। यही जैनों में मान्य है। यह लौकिक-पारलौकिक समृद्धि का प्रदाता है।
3. ॐ—यह दीर्घ उच्चारण वाला ओम् है। यह त्रिदेव वाची है।

ओम् के अर्थपरक रूप

1. अनादि, स्वयम्भू, ईश्वरवाची, यज्ञादि में प्रयुक्त। ऋषि, मुनि, योगी, आत्म-शुद्धि हेतु इसका पाठ करते है।
2. पूजन, भजन, जाप आदि में सामान्यतया प्रयुक्त 19 अर्थ। मूल अर्थ-संरक्षण-पोषण भक्त की आत्मा का—भक्त के जीवन का गृहस्थ का।
3. त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु, महेश वाची।

प्रणव—प्रणव शब्द ॐ के पर्यायवाची के रूप में प्रचलित एवं मान्य है। अनेक विद्वान् यह मानते हैं कि प्रणव ही मूल है और ओम् परवर्ती। प्रणवः अर्थात् प्रकर्षेण नूयते स्तूयते अनेन इति प्रणवः। पुथश्च प्रकर्षेण नवतां यात्रि अनेन-इति प्रणवः। अर्थात् जिससे प्रकर्षमय स्तुति हो और जो जपे-भजे जाने पर नवता किशोरत्त्व और शक्ति का संचार करे वह प्रणव हे। प्रणव-ईश्वरवाची है। प्रणव से 3 प्रकार की नवता प्राप्त होती है। 1 वैचारिक चिर यौवन 2. शारीरिक चिर यौवन 3. भावात्मक चिर यौवन। सभी प्रकार भी स्वस्थता—आत्मस्थता के लिए ॐ एवं प्रणव का अत्यधिक महत्त्व है। यह पद्य भी दृष्टव्य है—

"ओंकारं बिन्दु संयुक्त, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः।।"

अर्थात् बिन्दु सहित ओंकार का योगी निरन्तर ध्यान करते हैं।

यह संसार के सुख-और मोक्ष का प्रदाता है। ऐसे महान् को पुनः पुनः नमस्कार हो।

श्रमण सूक्त का 12वाँ पद्य ॐ को णमोकार महामंत्र का सार या बीज घोषित करता है–

"अरिहंता असरीरा, आइरिया उवज्झया मुणिणो।

पंचक्खर निप्पण्णो, ओंकारो पंच परमेट्ठी।।"

अर्थात् अरिहंत का अ, सिद्ध–अशरीरी का अ, आचार्य का आ, उपाध्याय का उ, साधु-मुनि का म्

सुझाव एवं स्पष्टीकरण–ॐ में पंच परमेष्ठी इतने सांकेतिक, संक्षिप्त एवं अति प्रतीकात्मक हो जाते हैं कि भक्त का ध्यान उनके गुणों और आकृति सौंदर्य पर नहीं जा पाता है और तादात्म्य या तन्मयता भी स्थिति नहीं बन पाती है। मनोजयी मुनि एवं योगी इसके अपवाद हो सकते है। अतः सामान्यतया महामंत्र का जाप ही श्रेयस्कर होगा। यह सुझाव व्यक्तिगत हो सकता है।

ॐ शब्द के 19 अर्थ (पाणिनि व्याकरण)

1. **रक्षा**–सम्पूर्ण विश्व की सभी प्रकार से रक्षा करने वाला।
2. **गति**–विश्व को गति देने वाला। (सर्वव्यापी अतः स्वयं स्थिर)
3. **कान्ति**–उज्ज्वलता, आभा-प्रदायक।
4. **प्रीति**–प्रेम, सद्भाव, आनंद-प्रदाता।
5. **तृप्ति**–भक्तों को कार्यों में इच्छित फल-प्रदाता।
6. **अवगम**–भक्तों-जीवों के मनोभावों का ज्ञाता।
7. **प्रवेश**–सर्वव्यापी, सूक्ष्म, सब में अंतःस्यूत।
8. **श्रवण**–दुखियों की पुकार सुनने वाला, सुनने की शक्ति देने वाला।
9. **स्वाम्यर्थ**–सृष्टि का नियामक, शासक।
10. **याचन**–प्रार्थनीय, प्रदाता।
11. **क्रिया**–सृष्टि रचना में लीन, निरन्तर क्रियारत।

12. **इच्छा**—स्वयं निष्काम परंतु भक्तों का हित करने वाला।

13. **दीप्ति**—ज्ञान-प्रकाश से भरपूर

14. **अवाप्ति**—सहज, सुलभ।

15. **आलिंगन**—विश्व को अपनापन देने वाला।

16. **हिंसा**—दुष्टों का दमन करने वाला।

17. **दान**—भक्तों को शक्ति, पुष्ट इन्द्रियाँ और बुद्धि देने वाला।

18. **भाग**—उचित वितरण करने वाला।

19. **वृद्धि**—प्रकृति का संवर्धक—रक्षक।

महामंत्र णमोकार प्रतीक शैली में है। अर्थात् महान् अर्थ एवं भाव को एक सामान्य जातिवाचक संज्ञा के रूप में सांकेतिक शैली में प्रस्तुत किया गया है। ध्यातव्य यह है कि ये प्रतीक आवश्यक संदर्भ के साथ फैलते हैं। उदाहरण के लिए रंग, ध्वनि एवं योग के सन्दर्भ में ये अपनी व्यापकता पृथक्-पृथक् प्रकट करते हैं। अब हम रंग विज्ञान के संदर्भ में इन्हें देखे। पंच-परमेष्ठी पाँच प्रतीक रंगों में प्रतिष्ठित हैं—

	परमेष्ठी	**प्रतीक रंग**	**प्रभाव (गुण)**
1.	अरिहन्त	श्वेत वर्ण	मानसिक पवित्रता निरोगता
2.	सिद्ध	लाल वर्ण	आवश्यक उष्णता, चैतन्य
3.	आचार्य	पीत वर्ण	हृदय रक्षाकारी
4.	उपाध्याय	नील वर्ण	चित्त-शांति
5.	साधु	श्याम वर्ण	अशुभ से संघर्ष की शक्ति

लाल और नीला ये दो रंग सृष्टि के मूल रंग हैं। इनके आनुपातिक मिश्रण से अन्य सभी रंग बनते हैं। ये रंग सुख, समृद्धि और चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रंग चिकित्सा का लाभ महामंत्र में निहित सम्बद्ध परमेष्ठी का जाप करने से बहुत अधिक होगा। रंगों के आधार से महामंत्र को समझने में सुविधा होती है। तो दूसरी ओर रंगों का भी पूरा महत्त्व ज्ञात हो जाता

है। इसी प्रकार ध्वनि और योग का धरातल भी है। रंग, ध्वनि एवं प्रकाश ये तीन अभिन्न हैं और इस सृष्टि की रचना और सञ्चालन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भी। वैसे महामंत्र मात्र का स्वतंत्र स्तवन या जाप करने से स्वतः भक्त के सभी शारीरिक एवं मानसिक कष्ट नष्ट हो जाते हैं, परंतु पूर्ण आस्था और प्रकट आधार की कमी के कारण ही रंग, रत्न, ध्वनि आदि को लिया जाता है। भौतिक सूक्ष्म आधार एकाग्रता में भी सहायक होता है। मंत्रनिष्ठ परमेष्ठी-उपासक रक्षक दैवी शक्तियाँ सदैव रक्षार्थ तत्पर रहती हैं।

"हमारी जिह्वा द्वारा उच्चरित भाषा की अपेक्षा दृष्टि में अवतरित रंगों और आकृतियों की भाषा अधिक शक्तिशाली है। महामंत्र में निहित रंगों की भाषा को स्वयं में उतारने-समझने में अद्भुत तदाकारता की स्थिति बनती है। पच परमेष्ठी के प्रतीकात्मक रंगों को क्रमशः ज्ञान, दर्शन, विशुद्ध आनंद और शक्ति के केन्द्रों के रूप में भी स्वीकृत किया गया है। ये परमेष्ठी पवित्रता, तेज, दृढ़ता, व्यापक मनीषा एवं सतत मुक्ति-संघर्ष के प्रतीक भी है। उक्त पाँच रंगों की न्यूनाधिकता से हमारा शरीर और मस्तिष्क बहुत अस्त-व्यस्त हो जाते हैं।...

प्राचीन ऋषियों, मुनियों और ज्ञानियों ने अपने ध्यान, मनन और अनुभव से इन रंगों का अनुसंधान किया है।" मंत्रों में रंग का विशेष महत्त्व है। रंग से एकाग्रता, ध्यान, समाधि और आत्मा तक सरलता से पहुँचा जा सकता है। रंग से इष्ट परमेष्ठी की छवि का संधान सुगम हो जाता है, निर्भ्रम हो जाता है। हमारे शास्त्रों में भी चौबीस तीर्थंकरों के रंग वर्णित है। रंग निहित शक्ति का द्योतक होता है। मंत्रस्थ रंगों का शरीर और मन पर प्रभाव पड़ता है। "णमो अरिहंताणं" का श्वेतरंग आपको रोगों से बचाता है और आपकी पाचन शक्ति को ठीक करता है। मानसिक निर्मलता और संरक्षण शक्ति भी इसी श्वेतवर्ण से प्राप्त होती है। सिद्ध परमेष्ठी का लाल वर्ण शक्ति, क्रिया और गति का द्योतक है—पोषक है। घनत्व और नियंत्रण शक्ति भी इससे ही बढ़ती है। आचार्य का पीत वर्ण संयम और आत्मबल का वर्धक हे। चारित्र्य का पोषक है। उपाध्याय का प्रतीक नीला रंग शरीर में शांति, समन्वय

हृदय और पसलियों को ठीक रखता है, बुद्धि को प्रखर रखता है। साधु परमेष्ठी का श्याम रंग कर्मठता, संघर्ष और साहस देता है। रंगों के माध्यम से मंत्र में उतरना और स्वयं को निरोग बनाने का अर्थ है—आकृति और दृष्टि-मूलक प्रयोग, नेत्रेन्द्रिय परक पद्धति।

आयुर्वेद चिकित्सा का आधार वात, पित्त और कफ है। इनके आधार पर रंगों को इस प्रकार रखा गया है। कफ का आसमानी रंग, वात का पीला रंग, पित्त का लाल रंग। लाल रंग की शरीर में कमी के कारण सुस्ती, अधिक निद्रा, भूख की कमी, कब्ज और पतले दस्त आते हैं। रक्त का रंग लाल है ही। आसमानी रंग की कमी से फेफड़ों में सूजन, थकान और चक्कर आते हैं। पीत रंग की कमी मस्तिष्क में शिथिलता मंदाग्नि और उदासीनता आती है। उक्त रंगों की माला लेकर पंचपरमेष्ठी का जाप करने से अवश्य ही लाभ होगा। एकासन और सात्त्विक भोजन आवश्यक है। रत्न चिकित्सा एवं किरण चिकित्सा को महामंत्र से जोड़कर लाभ लिया जा सकता है।

ध्वनि और महामंत्र

ध्वनि (कर्ण), रंग (नेत्र-आकृति) और योग (शरीर और मन) के माध्यमों से महामंत्र को साधा जा सकता है, अर्थात् इन साधनों के साथ महामंत्र का जाप या मानस पाठ, लोक-परलोक की सिद्धियों का प्रदाता हो सकता है। ध्वनि का महत्त्व तो सर्वविदित है। दो वस्तुओं के आपस में टकराने या घर्षित होने से जो श्रोतव्य प्रतिक्रिया होती है, वही ध्वनि है। वैज्ञानिक दृष्टि से वायुमण्डलीय दवाब (Atmospheric Pressure) में परिवर्तन या उतार-चढ़ाव का नाम ध्वनि है। यह परिवर्तन वायुकणों के दवाब या बिखराव के कारण होता है। यह तो भाषा विज्ञान के प्रसंग में ध्वनि की परिभाषा है जो पर्याप्त सीमित है। ध्वनि की महत्ता को हमारे ऋषियों, मुनियो और योगियों ने बहुत दूरदर्शिता से समझा। फलस्वरूप शब्द ब्रह्म, स्फोटवाद और शब्द शक्ति का विकास हुआ, आविष्कार हुआ। दिव्य ध्वनि और ओंकरात्मक दिव्य ध्वनि को इसी प्रसंग में समझा जा सकता है। बैखरी, मध्या, पश्यन्ती और परा-भाषा के स्थूल से सूक्ष्मतम रूप है। ध्वनि का

भौतिक-भाषापरक आणविक रूप के साथ एक शक्तिपरक एवं आध्यात्मिक रूप भी है। णमोकार महामंत्र के संदर्भ में इसको समझना आवश्यक है। ध्वनि इस जगत् का मूल हैं ध्वनि के अभाव में इस जगत् को नहीं जाना जा सकता।

महामंत्र का त्रिविध जाप–मानस जाप–योगी, ऋषि जितेन्द्रि होने के कारण महामंत्र का मानस जाप (अविचल होकर–चुप रहकर) कर सकते हैं। यह जाप शरीर और मन के समस्त रोगों को नष्ट कर भीतरी ऊर्जा को जागृत करता है। यह अनहत नाद होता है। संपूर्ण मंत्र अथवा ॐ द्वारा भी यह किया जा सकता है। यह जाप पद्मासन या खड्गास द्वारा किया जा सकता है। यह यदि ब्रह्म मूहूर्त में किया जाय तो अधिकाधिक सफल एवं श्रेयस्कर होगा। श्वेत वस्त्र हो और चन्द्रप्रभु की मूर्ति समक्ष हो तो उत्तम होगा। दिगंबर योगी इसके अपवाद हैं। यह उत्तयांगी प्रक्रिया है।

अर्धस्फुट जाप–महामंत्र के इस जाप में आवाज नहीं निकलती, परंतु ओष्ठ हिलते हैं। यह जाप व्रती गृहस्थ प्रमुख रूप से करता है–अनेक साधु भी इसे अपनाते हैं। इसे गणना के बिना लगभग दस मिनट एकाग्र चित्र से करें। इससे भावों में निर्मलता आती है और मस्तिष्क, मुख विवर तथा वक्षस्थल के सभी रोग-दोष दूर होते हैं। मनोबल अपराजेय होता है। महिलाएँ इससे पूर्णतया लाभान्वित हो सकती हैं। समय ब्राह्म मुहूर्त ही प्रमुख रूप से है। पद्मासन अपेक्षित है।

स्फुट जाप–यह सस्वर जाप है। इसमें भक्त मंद स्वर मध्यम स्वर एवं उच्च स्वर से अपनी इच्छा एवं शक्ति के अनुसार 10 से 15 मिनट तक एकांत स्थान में जाप कर सकता है। वस्त्र स्वच्छ, पवित्र एवं श्वेत वर्ण के हो तो श्रेयस्कर होगा। यह व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर भी किया जा सकता है। इसमें पाल्थी या पद्मासन हो तो श्रेयस्कर होगा। किसी कार्य के प्रारंभ में, संकट के समय इसका पाठ करें। इसमें मानसिक पवित्रता और ईमानदारी अनिवार्य शर्त है। यांत्रिक जपन उतना लाभकारी न होगा।

मन, वचन और शरीर की एकाग्रता के अभाव में भगवद् भक्ति या मंत्र, स्तोत्र पाठ लाभकारी न होगा। कल्याण मंदिर स्तोत्र (आचार्य सिद्धसेनकृत) का 38वाँ पद्य इस प्रसंग में उत्कृष्ट उदाहरण है–दृष्टव्य है–मननीय है, आचरणीय है–

"आकर्णितो महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसिमया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जन बांधव दुःख पात्रं,
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-शून्याः।।

अर्थात् हे प्रभु ! आपके विषय में सुना (प्रवचन आदि) आपकी पूजा की और आपके दर्शन भी किये। परंतु यह सब शुद्ध भक्तिभाव से नहीं किया केवल शरीर से एक नाटक किया। अतः मैं हे प्रभु जन्म जन्मांतर से दुःखों का पात्र हूँ। सच है–भाव शून्य आचरण फलदायी नहीं हो सकता।

भगवान् के साथ भी हम छल-कपट से नहीं चूकते। अर्धशंकित या शंकित मन से जाप करने से बस आंशिक लाभ ही होगा, पूर्ण लाभ नहीं। आज की भौतिक चकाचौंध में हम अपनी आस्था काफी छोड़ चुके हैं।, कभी-कभी शिष्टाचार या दिखावे के लिए ही मंत्रपाठ या पूजा आदि करते हैं और चाहते है फल। मानस मंत्रोच्चार से उत्पन्न ध्वनि संपूर्ण शरीर और आसपास के वातावरण को पवित्र करती है। अनेक डॉक्टर, वैद्य एवं गुरु अपना कार्य मंत्रजाप से प्रारंभ करते हैं। वे अपने रोगी के कानों में मंत्रोच्चार करते हैं या उससे ही बुलवाते हैं और फिर इलाज चालू करते हैं। उनका यह प्रयोग बहुत सफल हुआ है। मेरे बब्बा (पिता के पिता) अस्थिरोग चिकित्सक थे। वे सदा महामंत्र पढ़कर रोगी की चिकित्सा करते थे। उन्हें भरपूर सफलता मिलती थी। आशय यह है कि मंत्र और भौतिक चिकित्सा मिलकर भी लाभकारी सिद्ध हुए हैं। कुछ डॉक्टर मंत्र उच्चरित करके तो दूसरे डाक्टर मंत्र का मानस पाठ करके चिकित्सा आरंभ करते हैं। यह निजी अनुभव की बात है।

महामंत्र का सामूहिक सस्वर पाठ

महामंत्र के सामूहिक सस्वर पाठ का अनेक प्रकार से महत्त्व है। इससे मंत्र भी प्रभावना होती है। समाज के आबाल वृद्ध नर-नारियों में सह-अस्तित्त्व, सामाजिकता, समभाव और आध्यात्मिक रुचि का प्रस्फुटन एवं उन्नयन होता है। एक माह में एक बार एक जगह (जिनालय, निजीघर या धार्मिक भवन) सम्मिलित होकर मधुर स्वर में गेय-शैली में नर-नारी क्रमशः उच्चारण कर सकते हैं। इससे मन-शुद्धि, शरीर-शुद्धि एवं गृह-शुद्धि होती है। उदासीन लोगों में रुचि उत्पन्न होती है। उच्च-ध्वनि का और गेय-शैली का सामूहिक पाठ निश्चित रूप से हमारे शरीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक बल को सम्बर्धित करता है। हमारी आस्तिक भावना को तीव्र करता है। अनेक व्यक्ति अकेले कुछ नहीं कर पाते, उनका मन नहीं लगता। उनके लिए तो यह एक स्वर्णिम अवसर है। सामुदायिक अवसरों पर पूर्ण शांति बहुत आवश्यक है। जहाँ मंत्र-पाठ हो रहा है, वह स्थल उतनी देर के लिए जिनालय है। अतः कोई घरेलू चर्चा या कुविचार वहाँ मन में न लाएं क्योंकि–

"अन्य स्थाने कृतं पापं, जल रेखा भविष्यति।
देव स्थाने कृतं पापं, वज्र लेपो भविष्यति।"

अर्थात् किसी सामान्य स्थान में किया गया पाप जलरेखा के समान थोड़े प्रायश्चित्त से धुल जाएगा। परंतु, देवस्थान में किया गया पाप वज्ररेखा के समान अमिट होगा। इसका फल या दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा।

यह सामूहिक पाठ 45 मिनट का हो सकता है। 108 बार (एक माला) उच्चारण काफी है अपनी रुचि के अनुसार समय बढ़ाया भी जा सकता है। हाँ, एक बात पर ध्यान रहे कि किसी प्रकार पाप वृत्ति मन में न रहे। सामाजिक, सामूहिक अवसरों पर पुण्य के साथ-साथ पाप संचय की भी सुविधा लोग जुटा लेते हैं। यह पाप नरक गति का कारण है। सामूहिक मंत्र पाठ के बाद किसी ज्ञाता, अनुभवी विद्वान् से महामंत्र पर प्रवचन सुनना चाहिए। अर्थ और भाव की जानकारी और

फिर निजी तन्मयता में जो आनंद है वह लोकोत्तर है। ज्ञान भक्ति की आँख है और भक्ति ज्ञान का हृदय है। दौलत राम जी ने छहढाला (चौथी ढाल-दूसरा पद्य) में ज्ञान की महत्ता इस प्रकार स्पष्ट की है–

कोटि जन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माँहि त्रिगुप्ति ते सहज टरैं ते।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैबिक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।

सम्यग्दर्शन भक्ति की आत्मा है और है मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी। इसके बिना ज्ञान और चरित्र पूर्ण नहीं बनते। सम्यग्दर्शन का अर्थ है–यथार्थ की सही और पक्की परख। स्व और पर की भेद-बुद्धि।

सुदीर्घ साधना के पश्चात् किसी योगी या ऋषि की मूलाधार चक्र से उद्‌भूत एवं अनहत रूप में सहस्त्रार चक्र से प्रस्फुटित शब्दात्मक ध्वनिपिण्ड मंत्र बनता है। साधारण शब्दावली मंत्रपूत होकर अपार शक्तिशाली बन जाती है। मंत्र तो अनादि अनंत है, उसे समय-समय पर लोकवाणी में अवतरित होना पड़ता है।

णमोकार मंत्र का ध्वन्यात्मक विश्लेषण एवं निष्कर्ष

णमो ण–शक्ति प्रदाता। आकाश बीजों में प्रधान। उच्चारण स्थान मूर्धा–अमृत स्थल।

मो–सिद्धिप्रदायक। पारलौकिक सिद्धियों का प्रदाता। संतान प्राप्ति में सहायक। म–ओष्ठ, ओ–अर्धोष्ठ

अरिहंताणं अ अव्यय (अविनश्वर) व्यापक, आत्मा की विशुद्धता का सूचक, प्राण बी॰ का जनक। उच्चारण स्थान-कण्ठ।

तत्त्व–वायु, सूर्यग्रह, स्वर्णवर्ण, आकार-विशाल व्यापकता।

रि–शक्तिकेंद्र, कार्य साधक, समस्त प्रधान बीजों का जनक। उच्चारण स्थान-मूर्धा, अमृत केंद्र, अग्नि तत्त्व।

इ–शक्ति, गति, लक्ष्मी प्राप्ति। उच्चारण स्थान तालु, तत्त्व अग्नि।

ह–शांति, पुष्टिदायक, मंगलीक कार्यों में सहायक, उत्पादक। उच्चारण स्थान–कंठ

ता–आकर्षक बीज, सर्वार्थसिद्धि प्रदायक सारस्वत बीज युक्त। उच्चारण स्थान–दंत, तत्त्व–वायु।

णं–पीतवर्ण, सुख दायक, परमकुंडली युक्त शक्तिसूचक, मूर्धा, तत्त्व-आकाश।

निष्कर्ष–णमो अरिहंताणं-पद के शक्ति, तत्त्व, उच्चारण स्थान और ध्वनितरंगपरक विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि इसमें आकाशतत्त्व, शक्ति, लौकिक-पारलौकिक शक्तियों और सिद्धि बीजों की प्रधानता है। ध्वनितरंग मूर्धामय उच्चारण के कारण उक्त गुणों को अमृतमय कर देती है। इस पद के पाठ से भक्त अरिहंत परमेष्ठी का अपनी आत्मा में साक्षात्कार कर लेता है। यह ध्वनितरंग का स्फोटात्मक प्रभाव है।

णमो सिद्धाणं–यह पद भक्त की पूर्णनिष्ठा के साथ पूर्णता को ध्वनित करता है। इससे रक्त शुद्धि, वृद्धि और विचारों में अमृत तत्त्व भर जाता है।

णमो आइरियाणं–यह पद अनुशासन, धैर्य और आचार को अपराजेय बनाता है। भक्त में नेतृत्व की क्षमता भरता है। विरोधों को शमित करता है।

णमो उवज्झायाणं–यह पद विद्या और बुद्धि में अपार वृद्धि करता है। स्वाध्याय में अधिकाधिक रुचि उत्पन्न करता है। सत्-असत् को परखने की अद्भुत शक्ति प्रदान करता है। समस्याओं का सही समाधान सुझाता है।

णमो लोए सव्वसाहूणं–यह अनथक साधना का प्रतीक है। चारित्र्य, संयम एवं कर्म-शत्रुओं से संघर्ष इस पद की प्रमुखता है। साधु परमेष्ठी उत्कृष्ट तपस्वी और व्रती होते हैं। वे आदर्श जीवन जीते हैं। इस पद से भक्त में कर्मठता एवं धैर्य की प्रतिष्ठा होती है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह महामंत्र पारलौकिक एवं

लौकिक सिद्धियों का सहज प्रदाता है।

योग साधना महामंत्र चिकित्सा के संदर्भ में

पंचभूतमय भौतिक जगत् और अध्यात्मवाद का विरोधी संघर्ष बहुत पुराना है। एक दूसरे की महत्ता और आवश्यकता ये दोनों प्रायः स्वीकारते नहीं है, या फिर बहुल गौण रूप से मानते हैं। चार्वाक दर्शन नास्तिक दर्शन है। वह पंचभूतों के अलावा सृष्टि में और कुछ मानता ही नहीं है। तो चिकित्सा शास्त्र में शरीर को ही सर्वस्व माना गया है। उसी की रक्षा और पुष्टि को महत्त्व दिया गया है। चरक ने कहा—"सर्वमन्यत् परित्यज्य, शरीर मनु पालयेत्। अर्थात् सब कुछ छोड़कर शरीर की रक्षा करनी चाहिए। "शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनं" पहले शरीर फिर धर्म का पालन यह कथन भी है ही। यहाँ ध्यातव्य यह है कि चिकित्सा शास्त्र में आत्मा को गौण माना है, तो अध्यात्म में शरीर को गौण और एक साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। गौण का अर्थ उपेक्षणीय और त्याज्य न होकर द्वितीय महत्त्व की स्थिति समझना चाहिए।

योग शब्द का अर्थ

1. आत्मा का परमात्मा में निमज्जन योग है।
2. कर्म को कुशलतापूर्वक करना योग है।
3. संसार और कर्मों से मुक्त होकर शुद्ध स्वयं को पाना योग है।
4. केवल स्वयं में डूब जाना—सब कुछ से पृथक अयोगी होकर स्वयं को पाना योग है—अयोग ही योग है।
5. शरीर और आत्मा का मैत्रीपूर्ण संबंध योग है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि संसार के प्रपंचों (क्रोध, मान, माया, लोभ) से मुक्त होकर अपने मूल समभावी, शांत स्वरूप से जुड़ना योग है। यह योग हमें महामंत्र की साधना से सुलभ हो सकता है। ज्ञान और आचरण का योग हो।

मानव के दुःखों का मूल कारण चित्त की विकृति से उत्पन्न होने वाली अशांति है। शारीरिक कष्ट भी मन को प्रभावित करते हैं। हमारा

मन यदि स्वस्थ है तो वह बड़े-से-बड़े दुख के गम को सहज रूप से सह लेता है। योग हमारी मानसिक रूग्णता को रोकता है और उसे आंतरिक विकास की ओर अग्रसर करता है। "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" चित्त की चंचलता को रोकना योग है। जैन शास्त्रों में योग के लिए ध्यान शब्द का प्रयोग होता है। योग के 8 अंग माने गये हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। णमोकार महामंत्र का योग से गहरा संबंध है। योग साधना से हम शरीर और मन को सुस्थिर करके शांत चित्त से मंत्राराधना कर सकते हैं। योग-साधना और मंत्राराधना कामजयी व्यक्ति ही कर सकता है। योग से कामजय और कामजय से मंत्रसिद्धि संभव है।

प्रश्न आस्था का

जप के साथ जुड़ा एक प्रश्न है आस्था का।...ध्वनि में आज विज्ञान ने जो खोजे की हैं, निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं, जिन रहस्यों का उद्घाटन किया है, वे मनुष्य की आस्था को पुष्ट बनाने वाले हैं। संगीत इसके परिवार का ही एक सदस्य हे। संगीत भी एक ध्वनि का प्रकम्पन है। एक प्रकार का गीत गाया, लोग झूम उठे, दूसरे प्रकार का गया लोग उदास हो उठे—ध्वनि प्रकम्पनों का प्रयोग मस्तिष्क की धारा बदल देता है। शब्द और ध्वनि के महत्त्व को संगीत की स्वर लहरियों में पहचाना जा सकता है। मंत्र ध्वनि में संगीत से भी अधिक चमत्कारी प्रभाव होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा और महामंत्र णमोकार

यह सृष्टि पंचभूतों (तत्त्वों) से निर्मित है। ये पाँच तत्त्व जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश हैं। इन्हीं पंच तत्त्वों के आनुपातिक सम्मिश्रण से समस्त प्राणी-जगत बना है। जब यह अनुपात बिगड़ता है अर्थात् कोई तत्त्व कम और कोई अधिक हो जाता है, तब हम अस्वस्थ (रोगी) हो जाते हैं और हमारा शरीर और मन तरह-तरह से अवांछित आचरण करने लगते हैं। जब धीरे-धीरे हम पुनः प्राकृतिक अनुपात में आ जाते हैं तो स्वस्थ एवं पुष्ट-प्रसन्न हो जाते हैं। संसार के सभी प्राणी जब इन्द्रिय-लोलुपता और कुत्सितहीन स्तरीय मनोभावों

के शिकार हो जाते हैं, तो उनका प्राकृतिक संतुलन स्खलित हो जाता है और कभी-कभी इतना अधिक कि मृत्यु तक हो जाती है। अतः मानव को संयम (मन, वचन, काय का) और व्रत-उपवास आदि का अभ्यास कराया जाता है। संसार की अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ पर्याप्त कृत्रिम, खर्चीली हैं और विश्वसनीय नहीं है। परंतु मानव नगर-सभ्यता के विकास के साथ अपनी प्रकृति और प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति उपेक्षावान् होता जा रहा है। वह बहुत भटक चुका है। संभवतः आगामी शती प्राकृतिक चिकित्सा के पुनर्जागरण की होगी।

यदि मानव विवेकमय संतुलित जीवन जी लेता है तो उसे डाक्टर की जरूरत नहीं है और यही है प्राकृतिक चिकित्सा। एलोपेथी, आयुर्वेद और होम्योपैथी में यह मान्यता है कि जब हमारे ऊपर बाहरी जीवाणु आक्रमण करे और शरीर में प्रवेश कर लें तो हम बीमार हो जाते हैं। हमें इन कीटाणुओं को कृत्रिम उपायों से (दबा, इन्जेक्शन, आपरेशन) नष्ट करना होता है। तभी व्यक्ति स्वस्थ होता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार यदि हमारा शरीर संतुलित है तो बाहरी जीवाणु उस पर आक्रमण नहीं कर सकते। हाँ जब हमारा ही संतुलन बिगड़ता है तो हम स्वयं बीमार हो जाते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा में 3 बातें मुख्य है।

1. शरीर को स्वतः नीरोग रखना। उसमें बाहरी जीवाणुओं को न आने देना। आत्म-संयम से यह संभव है।
2. शरीर को बाहर-भीतर से शुद्ध रखना। यह नियत आहार-व्यवहार से संभव है। एकासन उपवास, ध्यान भी।
3. शरीर को व्यायाम, वायुसेवन, पौष्टिक संतुलित आहार से स्वस्थ रखना।

यहाँ तक अत्यन्त सार-रूप में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रारूप प्रस्तुत किया गया है। यह केवल महामंत्र से संदर्भ जोड़ने के लिए है। अब जहाँ तक महामंत्र और प्राकृतिक चिकित्सा का संबंध है, यह सुस्पष्ट है कि संपूर्ण महामंत्र में प्रकृति के पाचों तत्त्व भरपूर मात्रा में है। उनका उपयोग आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। प्रत्येक पद में प्राकृतिक तत्त्व कितनी मात्रा में है इसका विवरण प्रस्तुत है—

णमोकार महामंत्र के अक्षर और तत्त्व

	अक्षर	तत्त्व
1.	णमो	आकाश
	अ	वायु
	रि	अग्नि
	हं	आकाश
	ता	वायु
	णं	आकाश
2.	णमो	आकाश
	सि	जल
	द्धा	पृथ्वी
	णं	आकाश
3.	णमो	आकाश
	आ	वायु
	य	वायु
	रि	अग्नि
	या	वायु
	णं	आकाश
4.	णमो	आकाश
	उ	पृथ्वी
	व	जल
	ज्झा	पृथ्वी
	या	वायु
	णं	आकाश
5.	णमो	आकाश
	लो	पृथ्वी
	ए	वायु
	स	जल
	व्व	जल
	सा	जल
	हू	आकाश
	णं	आकाश

सम्पूर्ण मंत्र में पृथ्वी तत्त्व–4, जल तत्त्व–5, अग्नि तत्त्व–2 वायुतत्त्व–7 और आकाश तत्त्व–12 है। संपूर्ण महामंत्र के तत्त्वों की संख्या पर ध्यान दें तो सबसे अधिक संख्या (12) आकाश तत्त्व की है। (आकाश तत्त्व आध्यात्मिक उन्नयन में परम सहायक होता है। और निरंतर शारीरिक तथा मानसिक पवित्रता संचारित करता है। यह सभी पदों में है। प्रथम और अंतिम पद में इसकी संख्या 3-3 है। वायु तत्त्व भी पूरे मंत्र में कुल संख्या 7 है। यह तत्त्व सूक्ष्म और व्यापक है। शरीर में वायु तत्त्व की रक्षा और पूर्ति करता है। जल तत्त्व की मंत्र-पदों में कुल संख्या 5 है। यह तत्त्व आकाश और वायु की अपेक्षा स्थूल है और प्रवाह तथा शमन का प्रतीक है। शरीर में तेज, ऊष्मा एवं सहनशीलता और द्रढ़ता के प्रतीक है।

निष्कर्ष रूप में यह ज्ञातव्य है कि हमें प्राकृतिक चिकित्सा में जिस तत्त्व की आवश्यकता हो उसकी प्राप्ति महामंत्र के जाप से की जा सकती है। महामंत्र के पाँचों पदों में अरिहंत परमेष्ठी का प्रथम पद सर्वाधिक शक्तिशाली है। इसमें आकाश, वायु और अग्नि तत्त्व हैं और ये तत्त्व द्रुतगामी, परमशक्तिशाली, सूक्ष्म तथा आत्मा के अधिक निकट हैं। अतः केवल 'णमो अरिहंताणं' का या फिर 'ॐ अर्हन्' का जाप किया जा सकता है।

यदि हमारा मन मंत्र के प्रतिपूर्ण आश्वस्त नहीं है तो प्राकृतिक चिकित्सा के साथ मंत्र जाप को भी लें। इससे शारीरिक स्वास्थ्य और मनोबल बनेगा। पूर्ण विश्वास और समर्पण के अभाव में पूर्ण लाभ नहीं होगा। अतः चिकित्सा और मंत्राराधना को साथ-साथ चलने दें। व्याहारिकता यह है कि यदि किसी दैवी शक्ति या आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास पूरा न हो तो लौकिक उपाय के साथ-साथ उसे भी अपनाते रहने से आंतरिक बल बना रहेगा। पर धीरे-धीरे जब विश्वास पुष्ट हो जाए तो फिर पूर्णतया उस पर (मंत्र या दैवी शक्ति पर) निर्भर किया जा सकता है। क्योंकि "विश्वासः फलदायकः" और "संशयात्मा विनश्यति" यह भी लोगों का अनुभूत-सत्य है।

प्रसंग अनाथी मुनि का

उत्तराध्ययन सूत्र का प्रसंग है। अनाथी मुनि चक्षु रोग से आक्रांत हो गये। अनाथी मुनि के सभी परिवार जन चिंतित हो उठे। बहुत धन खर्च किया गया फिर भी मुनि स्वस्थ न हुए। उनकी वेदना असहय ही रही। तब अनाथी मुनि ने निश्चय किया—संकल्प किया कि मुझे अपनी समस्या का स्वयं समाधान खोजना चाहिए। उन्होंने संकल्प किया यदि प्रातः काल तक मेरी आँख वेदना ठीक हो जाए तो मैं मुनि बन जाऊँ।

एक चमत्कार हुआ। जो पीड़ा इतनी दवाओं और प्रयत्नों से न जा सकी, वह सहसा शांत हो गयी। संकल्प फला और अनाथी जगत् के संबंधों को तोड़ मुनि बन गये!" हमारे भीतर ऐसी शक्तियाँ हैं जो हमें बचा सकती है। संकल्प की शक्ति बहुत बड़ी शक्ति है। ■

महामन्त्र णमोकार पर आधारित

१०८ प्रश्न और उनके उत्तर

नोट : प्रथमत: प्रश्न का उत्तर संक्षिप्त, सन्तुलित और प्रतियोगिता के स्तर पर है। उसके बाद उस उत्तर पर स्पष्टीकरण दिया गया है।

प्रश्न १. परमेष्ठी शब्द का अर्थ बताइए।

उत्तर : जो परम पद में (आध्यात्मिक) स्थित हो उसे परमेष्ठी कहते हैं।

स्पष्टीकरण- सिद्ध परमात्मा तो परम पद प्राप्त कर ही चुके हैं। अरिहन्त परमात्मा सन्निकट भविष्य मे मोक्ष प्राप्त करेंगे यह सुनिश्चित है। वे चार घातिया कर्मों का क्षय कर चुके हैं। शेष तीन परमेष्ठी उक्त मार्ग में रत हैं (गुरु हैं अभी संसारी हैं) और मुक्ति प्राप्त करेंगे ऐसा पूर्ण निश्चय है अत: उन्हें भी परमेष्ठी कहा गया है। ये तीनों मुनि हैं। महामन्त्र के पाँचों पद परम पद माने गये हैं।

प्रश्न २. णमोकार मन्त्र को महामन्त्र क्यों कहा जाता है?

उत्तर

अ. इहलोक और परलोक का सुधारक है।

आ. समस्त जिनवाणी का सार है।

इ. इसमें गुणों का नमन है - व्यक्ति का नहीं, अत: यह सार्वदेशिक एवं सार्व कालिक है।

ई. यह नमन (विनय) प्रधान है और विनय (सद् भक्ति) सम्यग्दर्शन का मूल कारण है।

उ. मन्त्र प्राय: सीमित, लौकिक एवं व्यक्ति परक होता है।

प्रश्न ३. इस महामन्त्र का रचनाकाल क्या है?

उत्तर

अ. यह अनादि अनन्त महामन्त्र है (भाव के स्तर पर)

आ. भाषा के स्तर पर सुदीर्घ काल में इसमें परिवर्तन संभव हो सकता है। यह सूत्र अक्षर संयोजन है।

इ. शिला लेखों के आधार पर ई.पू. ३ री शती इसका समय है।

प्रश्न ४. इस महामन्त्र का पद-क्रम ठीक है क्या?

उत्तर पदक्रम ठीक है ।

स्पष्टीकरण- यह पदक्रम व्यावहारिक और लोकोपकारक धरातल पर किया गया है । वस्तुत: सिद्ध परमेष्ठी मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं अत: सर्वोत्तम हैं - जबकि अरिहन्त परमेष्ठी चारधातिया कर्मों का क्षय कर चुके हैं और सशरीर संसार में हैं । उनका मोक्ष गमन सुनिश्चित है । उनसे जन समुदाय को जिनवाणी श्रवण और प्रत्यक्ष चारित्र्य का सीधा लाभ होता है अत: उन्हें पद्क्रम में प्राथमिकता दी गयी है । इसी प्रकार साधु परमेष्ठी को पंचम स्थान पर स्थापित किया गया है, यद्यपि वे विशुद्ध मुनिव्रत का पालन करते हैं और संसार के रागद्वेष से पर्याप्त मात्रा में परे हैं । अत: उनका स्थान तीसरा हो सकता था । परन्तु आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठी समग्र मुनिसंध में चरित्र-पालन एवं जिनवाणी अध्ययन का निरन्तर सम्बर्धन करते हैं अत: उन्हें ३ और ४ थे पद पर रखा गया है । आचार्य एवं उपाध्याय परमेठी स्वत: मुनि होते हैं । वे विशुद्धात्मा होते हैं ।

प्रश्न ५. क्या सभी परमेष्ठी समान महत्व के हैं?

उत्तर : हाँ है ।

स्पष्टीकरण अरिहन्त और सिद्ध देव (परमात्मा) हैं और शेष तीन परमेष्ठी गुरु हैं । आरम्भ के दो निश्चयनय से और बाद के तीन संभावना परक निश्चय से समान महत्त्व के हैं ।

प्रश्न ६ जब हमारा जन्म और मरण पूर्वार्जित कर्म के अनुसार ही होता है, तब इस मन्त्र से क्या होगा? ''मणि मन्त्र तन्त्र बहु होइ, मरते न बचावे कोई''

उत्तर : आपका प्रश्न ठीक है, परन्तु कर्मों के फल को तपस्या, भाव निर्मलता और मन्त्रसाधन द्वारा काफी हल्का किया जा सकता है । अपनी आध्यात्मिक शक्ति के प्रकाश में कर्मों को परास्त किया जा

सकता है । मानव अकाल मृत्यु से बच सकता है । उसका मन्त्रार्जित भीतरी बल और संयम उसे अपराजेय बनाते हैं । वर्तमान जीवन भव्य हो सकता है और उज्जवल भविष्यत् की दृढ़ आधारशिला निर्मित होती है । मानव का पुरुषार्थ यदि शेर को श्रृगाल बनाता है तो यह एक उपलब्धि ही होगी ।

प्रश्न ७अ. इस मन्त्र का जाप कितने प्रकार से किया जा सकता है?

उत्तर : तीन प्रकार से

१. मानस जाप (मौन रहकर)

२. अर्धस्फुट जाप (इसमें केवल ओष्ठ (अन्तर्जल्प) उपांशु हिलते हैं ।

३. स्फुट - सस्वर पाठ (संजल्प)

आ. श्रेठ प्रकार कौनसा है और क्यों?

उत्तर मानसपाठ सर्वोत्तम हैं, परन्तु इसमें चित्त की एकाग्रता भंग होने की पूरी संभावना है । संसारी गृहस्थ यह पाठ नहीं कर पाता, मुनियों से ही संभव है । मानस पाठ से आध्यात्मिक निर्मलता त्वरित गति से आती है । इन तीनों से आध्यात्मिक उर्जा का क्रमशः शत, सहस्र एवं लक्ष गुणित उन्नयन होता है ।

प्रश्न ८अ. इस महामन्त्र को नवकार मन्त्र क्यों कहते हैं?

उत्तर इस महामन्त्र के मूल पाँच पद हैं । इसका चूलिका भाग जो चार पदों का है उसे मिलाकर कुल नौ पद हो जाते हैं । इसी से इसे नवकार महामन्त्र भी कहते हैं । अन्तिम चार पद वस्तुतः मूल महामन्त्र के फल का दिग्दर्शन कराते हैं ।

''ऐसो पंच नमोकारो सब्व पावप्प णासणो
मंगलाणं च सब्वेसिं पढमं हवई मगलं ॥''

प्रश्न ८आ नवकार मन्त्र के प्रथम ५ पद और अन्तिम चार पदों का अलग २ महत्व क्या है?

उत्तर : प्रथम पाँच पद तो मूल मन्त्र के हैं जो आध्यात्मिक ऊर्जा का जागरण कर भक्त को मोक्षमार्ग में लीन कर देते हैं।

बाद के चार पद भी कुछ भक्त मन्त्र का ही एक भाग मानते हैं। वस्तुः तः वह भाग चूलिका है, बाद में रचा गया है और मन्त्र का फल द्योतक है। व्यक्तिगत साधना में तो मूल पाठ ही श्रेयस्कर है। सामूहिक मंगलपाठ में चूलिका भाग भी पढ़ा जाता है - उत्साह और श्रेय का योग बनता है।

प्रश्न ९. मूल मन्त्र का पाठ करना चाहिए या चूलिका का भी?

उत्तर अध्यात्म की दृष्टि से मूल मन्त्र का एकाग्र भाव से पाठ करना चाहिए। चूलिका तो मन्त्र का सहज फल है जो प्राप्त होगा ही। चूलिका को मिलकर ही पूर्णमहामन्त्र बनता है ऐसी भी प्रतिष्ठित मान्यता है।

प्रश्न १० अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी में क्या अन्तर है?

उत्तर दोनों में योग्यता और भाव के धरातल पर कोई अन्तर नहीं है। दोनों परम पदस्थ हैं। सिद्ध परमेष्ठी आठों कर्मों का नाश कर अशरीरी मुक्तात्मा हो चुके हैं तो अरिहन्त परमेष्ठी अभी चार घातिया कर्मों का क्षय कर सशरीरी हैं। उनका अत्यल्प काल में मोक्ष सुनिश्चित है। दोनों में अन्तर केवल औपचारिक है - वास्तविक नहीं। [१]आप्तता के लिए वीतरागता, सर्वज्ञत्व और हितोपदेश अनिवार्य है। यह अरिहन्त में है। आत्मा के सभी गुण चार घातिया कर्मों के नष्ट होते ही प्रकट हो जाते हैं। अतः दोनों में गुणात्मक समानता है।

प्रश्न ११ आचार्य परमेष्ठी क्या करते हैं?

उत्तर आचार्य (साधु) परमेष्ठी स्वयं पाँच प्रकार के आचार (दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य) का पालन करता है। वह संध के सभी साधुओं से आचार पालन कराता है। दीक्षा देता है। व्रत भंग होने पर प्रायश्चिन्त का आदेश देता है। आचार्य मुनिसंध का प्रमुख होता है। साधुत्व सम्पन्न आचार्य ही गुरु है।

प्रश्न १२ उपाध्याय परमेष्ठी कौन हैं - क्या करते हैं?

उत्तर उपाध्याय परमेष्ठी जिनवासी के बारह अंगों का ज्ञाता और अध्यापन में दक्ष होता है। आचार्य के सभी गुण उपाध्याय में विद्यमान रहते हैं। उपाध्याय स्वयं सदाचार सम्पन्न होता है। वह शास्त्रों को ही पढ़ाता है, इतर कुछ नहीं।

प्रश्न १३ साधु परमेष्ठी की प्रतिनिधि विशेषताएं बताइए।

उत्तर

१. लंगोटी धारी एलक पद में सफलता के बाद दिगम्बर मुनि मुद्रा धारण की जाती है।
२. विषय वासना रहित, निरारम्भ, अपरिग्रही तथा ज्ञान-ध्यान में तत्पर तपस्वी साधु होते हैं।
३. साधु के २८ मूलगुण ५ महाव्रत ५ समिति, ५ इन्द्रियनिग्रह, ६ आवश्यक, केशलों च, अचेलकत्त्व, अस्थान, भूमिशयन, अदन्तधावन, खडे होकर भोजन, एक बार भोजन।
४. सच्चे साधु में आत्मिक पवित्रता और भीतरी सहजता अनिवार्य है।
५. 'साधु को मूलगुणों (२८) का निरति चार पालन अनिवार्य है' - इनके बिना साधुत्त्व नहीं।

---

१. आप्ते नोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेषिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत ।। रत्नकरण श्रावकाचोर ५

प्रश्न १४. अरिहन्त का प्रतीक रंग कौनसा है- उसका क्या महत्व है?

उत्तर णमोकार मन्त्र में प्रतीकात्मक पद्धति अपनायी गयी है इसीलिए अरिहन्त का रंग श्वेत है । यह इन्द्रधनुष वाले सात रंगों के आनुपातिक मिश्रण से बनता है । यह मूल रंग नहीं है ।

प्रभाव-

१. णमो अरिहन्त्राणं पद का श्वेतरंग हमें - श्वास, अस्थि एवं उदर के रोगों से बचाता है ।

२. पांचन क्रिया में सहायक है ।

३. संरक्षण शक्ति देता है ।

४. मानसिक सन्तुलन और निर्मलता देता है ।

५. श्वेतवस्त्र और श्वेतवर्ण की माला श्वेतरंग का कमरा सहायक तत्त्व है ।

६. णमो अरिहन्ताणं पद की १०८ बार माला फेरना (एक बार मात्र) उक्त सिद्धिदायक होगा । एक दिन में प्रातःकाल में एक माला-जाप सात दिन तक ब्रह्मचर्य पूर्वक ।

प्रश्न १५ सिद्ध परमेष्ठी का प्रतीक रंग कौन सा है? उसका महत्व क्या है?

उत्तर सिद्ध परमेष्ठी का प्रतीक रंग लाल है । महत्व- लालवर्ण जप के माध्यम से भक्त में शक्ति, क्रिया आरै गति की वृद्धि करता है ।

मन, वाणी और कर्म पर नियन्त्रण भी इस वर्ण से होता है । बाल रवि इसका प्रतीक है । शरीर में इसकी कमी हो तो प्रमाद, विक्षिप्तता और रक्तचाप का आक्रमण होता है । पद्मप्रभु और

---

१. ''मूल छित्ता समणो जो गिण्हादि य बाहिरं जोगं ।
बाहिर जोगा सब्बे मूल विहूणस्स किं करिस्संति ।। मू.आ. ४२०

वासुपूज्य तीर्थं करों का रंग लाल है । अतः इनके समक्ष बैठकर णमोसिद्धाणं का जप किया जा सकता है ।

प्रश्न १६ आचार्य परमेष्ठी का प्रतीक रंग कौनसा है? उसका महत्व क्या है?

उत्तर आचार्य परमेष्ठी का प्रतीक रंग पीला है ।

महत्त्व - यह रंग संयम और आत्मबल का पोषक है । चारित्रय का सम्बर्धक है ।

२४ में से १७ तीर्थकरोंका रंग स्वर्ण वर्ण अर्थात् पीला है ।

बौद्धिक उन्नति, भीतरी शुद्धता । पृथ्वीतत्त्व का पीला रंग हमारे शरीर में व्याप्त है ।

उक्त तत्त्वों की शरीर और मन को आवश्यकता हो तो पीले वस्त्र और पीतवर्णी माला द्वारा 'णमो आयरियाणं' पद का सात दिन-प्रतिदिन एक माला के हिसाब से जाप करें ।

प्रश्न १७ उपाध्याय परमेष्ठी का प्रतीक रंग कौन सा है? उसका क्या महत्व है?

उत्तर उपा. परमेष्ठी की प्रतीक रंग नीला है ।

महत्त्व - यह नील वर्ण शरीर और मन में शान्ति स्थापित करता है । मन, वाणी और कर्म में समन्वय पैदा करता है । हृदय, फेफड़े और पसलियों को भी यह ठीक करता है । (नीले वस्त्र द्वारा सिकाई (Fomantation) किये जानेवर । यह मौलिक रंग है - अतः अतिप्रभावक है । शरीर में इस वर्ण भी कभी व्यक्ति को क्रोधी एवं स्वार्थी बनाती है । कफ का रंग नील है । इस पर नियन्त्रण नील वर्ण के पुखराज से और चतुर्थपद के जाप से हो सकता है । यह वर्ण भाव विस्तार में सहायक है ।

नोट : वस्तुतः अरिहन्त परमेष्ठी की श्वेतांभा में सारे रंग गर्मित हैं - पंचपरमेष्ठी गर्मित हैं । जिसके मन में अरिहन्त भी श्वेतांभा का जन्म हो गया उसे अन्य चार परमेष्ठियों की वर्णाभा प्राप्त करना अत्यन्त सहज है । महामन्त्र णमोकार पृ. ९२-९३ डा. रवीन्द्र जैन

प्रश्न १८. साधु परमेष्ठी का प्रतीक रंग कौनसा है? उसका महत्त्व क्या है?

उत्तर साधु परमेष्ठी का प्रतीक रंग श्याम (घन-श्याम श्याम और नील रंग का मिश्रण)

महत्त्व - यह रंग आत्म-शोधन परक है। अपनी कमियों की ओर संकेत करता है। कर्म कालिमा को नष्ट करने का संकेत देता है। मानव को अध्यात्म केन्द्रित करता है। खुद को जय करो। यह वर्ण शरीर की निष्क्रियता और अकर्मण्यता दूर करता है। साधु-परमेष्ठी अनथक संघर्ष के प्रतीक हैं।

प्रश्न १९ पंचपरमेष्ठी रत्नत्रय (सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र के प्रतिनिधि हैं - बताइए कौन किसका प्रतिनिधि है?

उत्तर अरिहन्त-सिद्ध - सम्यग्दर्शन के प्रतिनिधि हैं।
आचार्य - उपाध्याय - सम्यग्यान के प्रतिनिधि हैं।
साधु - सम्यक् चरित्र के प्रतिनिधि है।

नोट - यह प्रधानता परक उत्तर है। सामान्यतया सभी परमेष्ठी रत्नत्रय हैं।

प्रश्न २० यह महामन्त्र कितनी साँसो में उच्चरित होना चाहिए और क्यों?

उत्तर यह महामन्त्र कुल तीन सह्ज साँसों में उच्चारित होना चाहिए।

प्रथम श्वास में प्रथम-द्वितीय परमेष्ठी, द्वितीय श्वास में तृतीय - चतुर्थ परमेष्ठी और तृतीय श्वास में पंचम परमेष्ठी का जपन उत्कृष्ठ है। गुणक्रम भी यही है। वैसे भक्त ५ श्वासों में अथवा एक श्वास में भी अपनी शक्ति के अनुसार करते हैं। तीन संख्या दर्शन, ज्ञान और चारित्र-परक भी है।

संख्यात्मक उच्चारण से मूलाधार से सहस्रार चक्र तक ऊर्जा तरंगित होती है - यह प्राण चेतना है।

प्रश्न २१. इस महामन्त्र में कुल कितने अक्षर हैं?

उत्तर इसमें १६ स्वर (सभी स्वर) और ३३ व्यंजन हैं। कुल अक्षर ३५ हैं। पूर्ण स्वर ४, पूर्ण व्यंजन ३१ = ३५

स्पष्टीकरण - ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार उच्चारण स्थान की एकता के कारण कोई भी वर्गाक्षर अपने वर्ग का प्रतिनिधि हो सकता है। महामन्त्र के सम्बन्ध में इस सिद्धान्त का ध्यान रखना आवश्यक है।

प्रश्न २२. मन्त्र शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर मन्त्र शब्द के ३ अर्थ हैं-

१. जिसके द्वारा स्वानुभव हो वह शब्द समूह मन्त्र है।

२. जिसके द्वारा आत्मा की शुद्धता पर विचार किया जाए।

३. जिसके द्वारा महान आत्माओं का सत्कार किया जाए।

जो मन को त्राण (रक्षा) और तृप्ति दे वह मन्त्र है।

प्रश्न २३ णमो पाठ शुद्ध है या नमो?

उत्तर णमो पाठ शुद्ध है नमो नहीं।

साम्य वैषम्य

ण	**न**
१. प्राकृत भाषा	१. संस्कृत भाषा
२. पीत वर्ण	२. लाल वर्ण
३. परम कुंडली (आकार)	३. आकार प्रलम्ब
४. सुखदायक	४. आत्म नियन्ता
५. आकाश तत्व	५. जल तत्त्वप्रधान
६. मूर्धन्य ध्वनि	६. दन्त्य ध्वनि
७. ऊर्ध्वगामी प्रकृति	७. अधोगामिता

निष्कर्ष - मन्त्र की भाषा प्राकृत है, परमकुंडली आकार है, आकाश तत्त्व है और मूर्धन्य ध्वनि के कारण आध्यात्मिक ऊर्जा के आस्फालन में परम सहायक है अतः ण पाठ ही शुद्ध है।

प्रश्न २४. इस महामन्त्र का सूत्रात्मक संक्षिप्त रूप क्या है?

उत्तर - १. संक्षिप्तता और सुकरता के कारण इस मन्त्र को ओंकारात्मक भी माना जाता है।

ओंकार में पंच परमेष्ठी इस प्रकार से गर्भित हैं -

१.	अरिहन्त (आरंभ अक्षर)	-	अ	
२.	अशरीरी (सिद्ध)	-	अ	अ + अ=आ
३.	आचार्य	-	आ	
४.	उपाध्याय	-	उ	आ + उ = ओ
५.	मुनि (साधु)	-	म्	ओ + म् = ओम्

ओंकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ॥

असिआ उसा

णमोकार महामन्त्र का एक संक्षिप्त रूप और है -

इस प्रकार है -

अरिहन्त	-	अ	सिद्ध	-	सि
आचार्य	-	आ	उपाध्याय	-	उ
साधु	-	सा			

इस संक्षेपीकरण की प्रमुखता इस बात में है कि इसमें सभी परमेष्ठियों के मूल नाम का अविकृत प्रथम अक्षर ज्यों का त्यों

नोट : प्रतीकात्मकता महामन्त्र का मूल है। वर्ण और रंग भी प्रतीकात्मक (व्यापक सत्य के संकेत चिन्ह) हैं। ये सब साधन हैं - साध्य नहीं।

लिया गया है । अतः इसे असंख्य भक्त बीजाक्षरी (दैवी शक्ति युक्त) मन्त्र मानकर इसका श्रद्धाभाव से जाप करते हैं ।

प्रश्न २५ ओम् शब्द का अर्थ और माहात्म्य बताइए ।

उत्तर -अर्थ - ओम् आत्मशक्ति जागरण का महामन्त्र है । इससे मूलाधार जागरण के माध्यम से भक्त में अपार तेज का उदय होता है ।

	वर्ण	आकार	महिमा	राशि	ग्रह	तत्त्व	स्थान
ओं	लाल	कुंडली	सिद्धि	सिंह	सूर्य	भूमि	अर्धोष्ठ
म्	,,	,,	,,	कुंभ	शनि	जल	ओष्ठ

निष्कर्ष - लाल (सुर्ख) तेजो लेश्या (कुंडली जागरण) और कुंडली आकार अपार धैर्य और शक्ति को प्रकट करते हैं । भूमि तत्व संसार और प्रवाह को तथा आकाश तत्त्व ऊर्ध्व गामिता और भाव विस्तार को ध्वनित करता है । स्थान (उच्चारण) में ओष्ठ बन्द होकर सांसारिक वृत्तियों का निषेध कर ऊर्ध्व चैतन्य को जगाते हैं । अतः ओम मूलाधार जागरण का महामन्त्र है ।

जीवात्मा का परमात्मा से साक्षात्कार
भूतत्त्व का आकाश तत्त्व में विलय
सांसारिकता का आध्यात्मिक जिजीविषा में विलय

प्रश्न २६. यन्त्र, तन्त्र और मन्त्र में क्या अन्तर है?

उत्तर :

१. यन्त्र मुख विवर है ।

२. तन्त्र उच्चारण प्रक्रिया और उच्चारित वाणी है ।

३. इनमें निहित अर्थ शक्ति मन्त्र है ।

मन्त्र वास्तव में उच्चारित शब्द समूह मात्र नहीं है । मन्त्र में निहित अत्यंत अध्यात्म शक्ति, परमेष्ठी शक्ति एवं दैवी शक्ति ही मन्त्र है ।

प्रश्न २७. यह महामन्त्र किस भाषा में है?

उत्तर यह महामन्त्र शौरसेनी प्राकृत भाषा में है।

प्रश्न २८. इसका पाठ या जाप करने का उत्तम समय कौन-सा है?

उत्तर : ब्राह्ममुहूर्त - अर्थात् प्रातःकाल साढ़े चार बजे से छः बजे के समय में कभी भी पाठ हो सकता है। ब्राह्म मुहूर्त मन, वाणी और कर्म की एकाग्रता के लिए उत्तम समय है। भक्त में पूरी ताज़गी इसी समय रहती है।

प्रश्न २९. इस मन्त्र का प्रतिदिन कितनी बार बार पाठ या जाप करना चाहिए? किस आसन में?

उत्तर प्रतिदिन संभव हो तो सूर्योदय हो तो सूर्योदय के पूर्व १०८ बार अर्थात् एक माला जपनी चाहिए। इससे आत्मिक निर्मलता बढ़ती है और सांसारिक कष्टों का निवारण होता है। केवल सोते समय और उठते समय पूरी निष्ठा के साथ नौ बार महामन्त्र का पाठ भी परम लाभकारी है।

आसन - पद्मासन अथवा खड्गासन उचित है। वैसे - "अपवित्रः पवित्रोवा सुस्थितो दुस्थितोऽपि वा।" ध्यायेत् पंचनमस्कारं सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥"

भक्त पवित्र हो, अपवित्र हो, अच्छी तरह स्थित हो या न भी हो, परन्तु यदि वह शुद्ध ध्यान पूर्वक पाठ करता है तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। मानसिक पवित्रता ही सब कुछ है।

प्रश्न ३० बीमारी में, शारीरिक अपवित्रता में और संकटकाल में भी क्या पाठ किया जा सकता है।

उत्तर : हाँ किया जा सकता है। यह महामंत्र अलौकिक है - इसमें भक्त का पवित्र ध्यान के अभाव में उम्र भर का जाप भी लाभकार नहीं होगा। मन्त्र केवल भक्त का सरल हृदय और निष्कपट रूप चाहता है, अन्य शरीर वस्त्रादि भी शुद्ध हो तो और भी श्रेयस्कर है।

प्रश्न -३१ इस मन्त्र के नियमित जाप से क्या सांसारिक कष्टों एवं कर्मबन्धन को भी परास्त किया जा सकता है?

उत्तर हाँ, इस महामन्त्र के नियमित ध्यानपूर्ण जाप से भक्त सांसारिक कष्टों को अपनी आत्मिक शक्ति उन्नयन के कारण न 'के बराबर कर सकता है। कर्मबन्धन सिद्धान्ततः फल देकर ही जाता है, कर्मों को भोगना ही पड़ता है। फर्क इतना है कि मन्त्र द्वारा अर्जित सहनशक्ति, विवेक और ऊर्जा के प्रभाव से शेर जैसे कर्म श्रृगाल बन जाते हैं। अगाध सागर बस घुटनों तक पानी वाला रह जाता है।

वर्तमान में मानव सन्तुलित विवेकमय जीवन जी सकता है। अपनी सहज बौद्धकता और संयम के कारण अकालमृत्यु से बच सकता है। उसका भविष्य तो उज्जवल होगा ही।

प्रश्न ३२ यह मन्त्र समस्त जिनवाणी का प्रतिनिधित्व करता है - सार है - कैसे?

उत्तर समस्त द्वादशाङ्ग जिनवाणी पंच परमेष्ठियों के गुणों और कार्यों का अवतरण है। मन्त्र में षड् द्रव्य, साततत्व, रत्नत्रय एवं स्याद्वाद आदि गर्भित है।

प्रश्न ३३ महामन्त्र णमोकार पर रचित एवं प्रकाशित किन्हीं पाँच स्तरीय पुस्तकों के नाम और लेखक बताओ।

उत्तर
१. मंगल मन्त्र णमोकार - डॉ. नेमीचन्द ज्योतिषाचार्य
२. नमस्कार मीमांसा - प.पू. भद्रंकर विजय जी
३. णमोकार महामंत्र - पं. रतन चन्द भारिल्ल
४. सर्वधर्मसार - पू. कान्ति मुख जी
५. महामंत्र णमोकार - डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन

प्रश्न -३४. णमोंकार मन्त्र पर अंग्रेज़ी में लिखित किसी एक पुस्तक और लेखक का नाम बताओ।

उत्तर : पुस्तक A Scientific Treatise on the Great Namokar Mantra.

लेखक - डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन

प्रश्न -३५. इस महामन्त्र में किसको नमन किया गया है ?

उत्तर - गुणों को नमन किया गया है - पंच परमेष्ठियों के गुणों को।

प्रश्न -३६. प्रत्येक परमेष्ठी के गुण बताइए।

उत्तर - पाँचों परमेष्ठियों के गुण इस प्रकार हैं -

दिगम्बर परम्परा		श्वेताम्बर मन्दिर मार्गी	परम्परा स्थानक वासी
४६	अरिहन्त	१२	१२
८	सिद्ध	८	८
३६	आचार्य	३६	३६
२५	उपाध्याय	२५	२५
२८	साधु	२७	२७
१४३		१०८	१०८

स्पष्टीकरण मुक्त आत्माएँ दो प्रकार की हैं -

एक - अरिहन्त - तीर्थंकर केवली

दो - सामान्य अरिहन्त केवली

सामान्य अरिहन्त केवली के तो अनन्त चतुष्टय (अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य) जो आत्मा के ४ गुण हैं, वे ही होते हैं। तीर्थंकर अरिहन्तों के ४६ गुणों में ३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य और ४ अनन्त चतुष्टय होते हैं। ४६ में से ४२ शरीराश्रित और पुण्याश्रित हैं जो मुक्त होते ही छूट जाते हैं।

प्रश्न ३७. इस महामन्त्र में समस्त देवनागरी वर्णमाला गर्भित है - कैसे ?

उत्तर - स्वर १६ ये संयोजन क्रिया से प्राप्त होते हैं - सीधे नहीं यथा ई, ऋ, लृ, ऐ, औ, अः - इन्हें इनके मूल ह्रस्व रूप से या बीजक रूप से प्राप्त किया जा सकता है। यथा इइ = ई। पुनरुक्त स्वरों को पृथक कर देने पर पूरे १६ स्वर मिलते हैं।

व्यंजन : ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार उच्चारण स्थान की एकता के कारण कोई भी वर्गाक्षर अपने पूरे वर्ग का प्रतिनिधित्व कर सकता है। व्यंजन ३३ हैं। क्ष,त्र,ज्ञ संयुक्त व्यंजन हैं। अतः गणना में नहीं लिया गया है। अंशान्वय से क्,त्,ज के रूप में ये भी मन्त्र में हैं ही।

प्रश्न ३८. इस मन्त्र में गुरु परमेष्ठी ३ हैं या ५ कैसे?

उत्तर : इस महामन्त्र में गुरु परमेष्ठी ३ है - आचार्य उपाध्याय और साधु। आरम्भ के दो परमेष्ठी तो देव (भगवान) हैं। देव देते हैं और शिक्षित करते हैं। देव परमेष्ठी भाव द्रव्य मोक्ष वाले हैं। शेष तीन अभी संसार में हैं, परन्तु वे मोक्ष पथ के पथिक हैं। प्रारम्भ के दो परोक्ष प्रेरणा देते हैं - शेष तीन प्रत्यक्ष प्रेरणा देते हैं। आदि के दो परम गुरु हैं। गुरुओं के भी गुरू हैं - गुरूणां गुरुः।

प्रश्न ३९. पंच परमेष्ठी - आरती की आरंभ की दो पंक्तियाँ बोलिए।

उत्तर : यह विधि मंगल आरति कीजे।
पंच परम पद भज सुख लीजे ॥

प्रश्न ४०. अरिहन्त परमेष्ठी किन घातिया कर्मों का क्षय कर चुके हैं?

उत्तर : चार घातिया कर्म - ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय।

प्रश्न ४१. इन्हें घातिया क्यों कहते हैं?

उत्तर : ये आत्मा के मूल चारों गुणों (अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य) को नष्ट करते हैं - घातते हैं अतः इन्हें घातिया कर्म कहते हैं।

प्रश्न ४२. मोहनीय कर्म सर्वाधिक शक्तिशाली क्यों है?

उत्तर : कर्मों का राजा है मोहनीय कर्म रूपी नृपति और उसके मन्त्री है - रागद्वेष। मोहनीय की शक्ति हड्डी के समान कठोर और अत्यधिक है। यह कर्म आत्मा की विवेक शक्ति को भ्रान्त करता है। इसके उदय में जीव का सत्यासत्य विवेक समाप्त हो जाता है। मोहनीय के क्षय से अक्षय चारित्र प्राप्त होता है। क्षायिक सम्यक्त्व जो मोक्ष का कारण है इसी कर्म के क्षय से प्राप्त होता है।

प्रश्न - ४३ अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी में समानता और अन्तर समझाइए।

उत्तर :

अरिहन्त	सिद्ध
१. भावमोक्ष	१. भाव एवं द्रव्य शरीर मोक्ष
२. ४ घातिया कर्म नष्ट	२. आठों कर्म नष्ट
३. सशरीर - संसार में	३. निराकार - मोक्ष में
४. संसारी जीवों को उपदेश श्रवण का प्रत्यक्ष लाभ	४. परोक्षतः प्रेरणा
५. भाव एवं व्यवहार के धरातल पर मन्त्र में प्राथमिकता	५. निश्चयतः सिद्ध परमेष्ठी ही प्रथम है।
६. मूल (आत्मिक) चार गुणों के धारक हैं।	६. मूल आठ कर्मों के क्षय से उदित आठ गुणों के धारक हैं।

प्रश्न ४४. आचार्य जयसेन ने महामन्त्र के द्वैत और अद्वैत ये दो भेद किये है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : इस महामन्त्र के सामान्यतया दो भाग हैं - प्रथम भाग ५ पदों वाला आध्यात्मिक भाग है। इसमें पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है। द्वितीय भाग पद्य बद्ध चूलिका (४ पद) है। इसमें इस मन्त्र के फल का वर्णन है।

जहाँ भक्त मन्त्र में डूब जाता है वहाँ अद्वैत भाव है जहाँ पृथकता (मैं और परमेष्ठी अलग अलग हैं) का भाव है वह द्वैत है।

प्रश्न ४५. णमो पद किस अर्थ का द्योतक है?

उत्तर : णमो पद पूजार्थक, भक्ति और विनय परक है।

प्रश्न ४६. द्रव्य नमस्कार और भाव नमस्कार में क्या अन्तर है?

उत्तर : द्रव्य का अर्थ है स्थूल, भौतिक एवं प्रकट। भाव का अर्थ है भावात्मक, आत्मिक एवं मानसिक यह प्रकट रूप से द्रष्टव्य नहीं है, शरीर के अंग प्रत्यंगों द्वारा, आरती, भजन, पूजन द्वारा जो भक्ति या नमन होता है वह द्रव्य नमन है। इसमें विशुद्ध भावों का योग नहीं होता, अतः यह प्रायः अकिंचित्कर ही रहता है। भाव नमस्कार ही उत्तम नमस्कार है। इसमें भक्त शुद्ध मन के साथ प्रभु का नमन करता है। यह और भी अधिक श्रेयस्कर होगा यदि द्रव्य-भाव मय नमन किया जाय। इससे प्रभावना, चित्त की एकाग्रता और प्रभावक वातावरण की सृष्टि होती है। भक्त संसारी है - चंचल मन वाला है इसे द्रव्य नमस्कार से पर्याप्त शक्ति और दिशा मिलती है।

प्रश्न ४७ निश्चय नय की दृष्टि से साधु परमेष्ठी का स्थान प्रथम है या आचार्य और उपाध्याय का?

अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी के पदक्रम में जो व्यावहारिक दृष्टि अपनायी गयी है, वही दृष्टि आचार्य - उपाध्याय और साधु परमेष्ठी के विषय में है।

स्पष्टीकरण - साधु परमेष्ठी पूर्ण मुनिव्रत का पालन करनेवाले परम आत्मान्वेषी हैं, जब कि आचार्य और उपाध्याय मुनि होकर भी मुनि संघ की व्यवस्था और अध्यापन में रत रहते हैं । उन्हें निजी साधना का अवसर कम प्राप्त होता है, कभी कभी कर्तव्यपालन के कारण उनमें राग द्वेष भी हो जाता है । इसलिए वे संघ-दायित्व से मुक्त होकर पुनः दीक्षा लेते हैं । वस्तुतः आचार्य और उपाध्याय मुनि होते हैं । उनमें विशुद्धता होती है । अतः उनका पद जो है, वह ठीक है । उनके ३६ गुण है जो साधु से अधिक है; यह भी पुष्ट मत है ।

प्रश्न ४८ णमोकार मन्त्र सर्वश्रेष्ठ क्यों है?

उत्तर :

१. यह मन्त्र गुण नमन का मन्त्र है ।

२. समस्त जिनवाणी का सार है ।

३. मूलतः आध्यात्मिक है ।

४. पूर्ण समभाव मय है ।

५. किसी प्रकार की कामना इसमें नहीं है ।

६. यह सहज ग्राह्य है ।

प्रश्न ४९ इस मन्त्र के प्रभाव से किसका कुष्ट रोग नष्ट हुआ था?

उत्तर : इस महामन्त्र के प्रभाव से राजा श्रीपाल का कुष्ट रोग दूर हुआ था ।

स्पष्टीकरण - श्रीपाल की बाल्यावस्था में ही उसके पिता राजा सिंह रथ की मृत्यु हो गयी । श्रीपाल के चाचा ने तुरन्त राज्य पर अधिकार कर लिया । श्रीपाल की माँ अपनी और अपने पुत्र की जान बचाने के लिए मन्त्रियों की सहायता से निकल भागी । जंगलों में भटकते भटकते श्रीपाल को कुष्ट रोग हो गया । किसी तरह माता - पुत्र उज्जैन नगरी पहुँचे ।

उज्जैन के राजा की दो पुत्रियाँ थीं - सुर सुन्दरी और मैना सुन्दरी । सुर सुन्दरी - हर बात में अपने पिता का झूठा समर्थन

करके लाभ उठा लेती थी, जब कि मैना सुन्दरी अपने पिता का आदर करते हुए भी सत्य का ही समर्थन करती थी। एक बार राजा ने भरी सभा में अपनी दोनों बेटियों को बुलाया और पूछा - "तुम्हें सब प्रकार के सुख देनेवाला कौन है?"

सुर सुन्दरी ने उत्तर दिया, "पूज्य पिताजी, मैं जो कुछ भी हूँ, आपकी ही कृपा से हूँ। आप ही मेरे भाग्य विधाता है।" इस उत्तर से राजा का अहंकार तुष्ट हुआ और उसने हर्ष प्रकट किया। अब मैना सुन्दरी को उत्तर देना था। उसने कहा, "पिताजी, मैं जो कुछ भी हूँ, अपने पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्मों के कारण हूँ। आप भी जो कुछ हैं अपने शुभ कर्मों के कारण हैं। मेरा और आपका पिता-पुत्री का नाता तो निमित्त मात्र है।"

इस उत्तर से पिता राजा को बहुत गुस्सा आया। राजा ने सुर सुन्दरी का विवाह एक राजकुमार से किया और दहेज में बहुत अधिक धन दिया।

मैना सुन्दरी का विवाह कुष्ट रोगी श्रीपाल से किया और दहेज में कुछ नहीं दिया। राजा ने कहा, "अब देख अपने कर्मों का फल। अपनी किस्मत को बदल कर दिखाना।"

मैना सुन्दरी ने विनयपूर्वक अपने पिता से कहा, "पिताजी, मैं आपको दोष नहीं देती हूँ। मेरे भाग्य में होगा तो अच्छा समय आएगा ही। मैं धर्म पर और महामन्त्र पर अटूट श्रद्धा रखती हूँ।"

बस मैना सुन्दरी ने अपने पति की पूरी सेवा करना प्रारम्भ कर दिया। वह नित्यप्रति महामन्त्र का जाप करने लगी और भगवान के गन्धोदक से पति को चर्चित भी करने लगी। पति के समीप बैठ कर महामन्त्र का पाठ करती रहती। धीरे-धीरे श्रीपाल का कुष्ट रोग समाप्त हो गया। उसके मन्त्रियों ने प्रयत्न करके उसका पता

लगाया । अन्ततः श्रीपाल को उसका राज्य प्राप्त हो गया । मैना सुन्दरी की धर्मनिष्ठा और महामन्त्र निष्ठा का जय जयकार हुआ ।

प्रश्न ५० शूली सिंहासन में किसके लिए बदली थी?

उत्तर : सुभद्रा सती और सुदर्शन सेठ के लिए शूली सिंहासन में बदली थी । ये दोनों महामंत्र के अड़िग विश्वासी थे । किसी भी प्रलोभन से इन्हें विचलित नहीं किया जा सका ।

प्रश्न ५१ अर्जुनमाली के जीवन में महामन्त्र के प्रभाव से क्या परिवर्तन आया?

उत्तर : अर्जुनमाली अपनी राक्षसीवृत्ति को त्यागकर महामन्त्र के प्रभाव से मुनि बना और आन्ततः मोक्षप्राप्ति की ।

स्पष्टीकरण - मगध देश की राजधानी राजगृही में अपनी पत्नी बन्धुमती सहित अर्जुन नामक एक माली रहता था । नगर के बाहर एक बगीचे में यक्ष मन्दिर था । अर्जुन अपनी पत्नी सहित इस बगीचे के फूल तोड़ता, यक्ष पूजा करता और फिर उन्हें बाज़ार में बेच कर जीविका चलाता था ।

एक दिन अर्जुन यक्ष की पूजा में लीन था और उसकी पत्नी बाहर पुष्प बीन रही थी । सहसा नगर के छह गुंडे वहाँ आ गए । बन्धुमती की सुन्दरता और जवानी पर वे मुग्ध हो गए । बस एकान्त देखकर उसके साथ बलात्कार करने पर तुल गए । अर्जुन को यक्ष की मूर्ति से बाँध दिया । गुंडे बन्धुमती का शीलभंग करने लगे । अर्जुन इस घोर - असत्य अत्याचार से तिलमिला उठा । उसने यक्ष से कहा, "हे यक्ष! मैंने तुम्हारी जीवन भर सेवा-पूजा यही फल पाने के लिए की है क्या? मेरी सहायता करो, मुझे शक्ति दो, या फिर ध्वस्त होने के लिए तैयार हो जा ।"

यक्ष का चैतन्य प्रज्वलिता हो उठा - उसने एक शक्ति के रूप में अर्जुन माली के शरीर में प्रवेश किया । बस अर्जुन में अपार शक्ति

आ गयी। उसने क्रोध में पागल होकर छहों गुंडों की हत्या की। अपनी पत्नी को भी समाप्त कर दिया। फिर तो उस पर हत्या का भूत ही सवार हो गया। वह नगर के बाहर रहने लगा। जो भी उसको दिखता उसकी हत्या कर देता। नगर में आतंक छा गया। नगर के भीतर के लोग भीतर और बाहर के बाहर ही रहने लगे। सम्पर्क टूट गया। वहाँ से निकलने का किसी का साहस ही नहीं होता था।

उसी समय श्रमण भगवान महावीर विहार करते हुए वहाँ पधारे। राजा श्रेणिक भगवान के दर्शन करना चाहते थे, पर वे विवश थे। तब सुदर्शन सेठ ने प्राण हथेली पर लेकर भगवान के दर्शन करने का निश्चय किया। बस राजा से अनुमति ली और चल पड़े। नगर के बाहर पैर रखते ही उनका अर्जुन से सामना हुआ। अर्जुन ने अपना कठोर मुद्गल सुदर्शन को मारने के लिए उठाया, पर आश्चर्य की बात यह हुई कि अर्जुन हाथ उठाए हुए कीलित हो कर रह गया। यक्ष शक्ति भी कीलित हो गयी। क्यों? सेठ सुदर्शन ने परम शान्त चित्त से महामन्त्र णमोकार का स्तवन प्रारम्भ कर दिया और ध्यानास्थ खड़े रहे। कुछ देर तक यही स्थिति रही। मन्त्र की संरक्षिणी देवियाँ सेठ की रक्षा के लिए आ गयी थी। बस नमस्कार करके यक्ष भाग गया। अब अर्जुन असहाय हो गया। उसे अपनी भूख-प्यास और असहायावस्था का तीव्र बोध हुआ। उसने सेठ सुदर्शन से अत्यन्त विनम्र भाव से क्षमा माँगी। भगवान की शरण में जाकर मुनिव्रत धारण किया। नगर वासियों को उसे देखते ही बहुत क्रोध आया। शब्दों और पत्थरों द्वारा मुनि अर्जुन का तिरस्कार हुआ। अर्जुन ने यह सब बड़े धैर्य के साथ सहा, वह अविचल रहा। सुदर्शन सेठ से उसने महामन्त्र को गुरु मन्त्र के रूप में धारण कर लिया था। धीरे-धीरे लोगों की धारणा बदली। अर्जुन ने अन्ततः सल्लेखना धारण की और आत्मा की सर्वोच्च अवस्था (मुक्ति) प्राप्त की।

निष्कर्ष - यह कथा स्पष्ट करती है कि महामन्त्र के प्रभाव से भक्त के प्राणों की रक्षा होती है, और दूसरी ओर एक हत्यारा अपनी राक्षसी वृत्ति को त्याग कर आत्मकल्याण (मोक्ष) प्राप्त भी करता है।

"विश्वासः फल दायकः" - सही आदमी का सही विश्वास सब कुछ कर सकता है।

यह महामन्त्र आत्म कल्याण का साधन है या साध्य?

यह महामन्त्र आत्म कल्याण का साधन है। इससे जागृति और प्रेरणा प्राप्त कर आत्मा अपने पुरुषार्थ से ही परमात्मा बनता है।

णमोकार मन्त्र का मूलाधार ध्वनि है। स्पष्ट कीजिए।

ध्वनि ही प्रकृति की ऊर्जा का मूल स्वरूप है। किसी वस्तु के दूसरी वस्तु से घर्षित होने से जो श्रव्य प्रतिक्रिया हो उसे ध्वनि कहते है। वैज्ञानिक दृष्टि से वायुमण्डलीय दवाव (Atmospheric Pressure) में परिवर्तन या उतार चढ़ाव ध्वनि है। ये दोनों ध्वनियाँ स्थूल और सीमित हैं। भाषा की महत्ता और सार्थकता को हमारे ऋषियों और मथियों ने अत्यन्त दूरदर्शिता से समझा था। अनुभव किया था। उसी के फल स्वरूप दिव्य ध्वनि, शब्द ब्रह्म, स्फोटवाद और शब्दशक्ति का आविष्कार हुआ। ओंकारात्मक निरक्षरी ध्वनि को इसी सन्दर्भ में समझना कठिन नहीं होगा। मूलाधार चक्र (कुंडलिनी) के सूक्ष्मतम स्पन्दन से वर्धमान होकर समस्त चक्रों को पार कर सहस्रार चक्र में प्रविष्ट हो एक सम्पूर्ण ध्वनि लहर बनती है - यह अनाहत होती है - मन्त्रात्मक होती है और अपार चैतन्य से भरकर आत्मा को निर्मल करती है। आशय यह है कि हम मन्त्र के सस्वर व्यक्तिगत या सामूहिक पाठ से स्वयं की मूलशक्ति को जागृत कर आत्म साक्षात्कार कर सकते हैं।

प्रश्न ५४ : मन्त्रों का प्रयोजन क्या है?

उत्तर : मन्त्रों का प्रयोजन यही है कि हम उच्चरित भाषा के स्थूल माध्यम (बैखरी) से सूक्ष्मतम परा रूप तक पहुंचे। शब्द से अर्थ - अर्थ से भाव और भाव स्वभाव (आत्म स्वरूप) तक पहुँचे। मन्त्रोच्चारण में स्पन्दनों की लय और ताल का बहुत महत्व है। लय और ताल ठीक होने पर ज्ञान और भाव में वृद्धि होगी।

प्रश्न ५५ : तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने णमोकार मन्त्र द्वारा कौन - सा चमत्कार दिखाया?

उत्तर : कमठ नामक मिथ्यात्वीं पंचाग्नि तप तप रहा था कि वहीं से भगवान पार्श्वनाथ विहार करते हुए निकले। उनकी दृष्टि आग के ढेर में जलते हुए एक नाग-नागिनी के जोड़े पर पड़ी। जोड़ा मरणासन्न था। तुरन्त प्रभु ने उसे आग में से निकाला और णमोकार महामन्त्र का तीन बार श्रवण कराया। नाग-नागिनी मरकर भवनवासी देव-देवांगना हुए और भगवान पार्श्वनाथ के चिर सेवक बने। यह है मन्त्र का चमत्कारी प्रभाव।

प्रश्न ५६ णमोमार महामन्त्र में प्रमुख भावना कौन सी है?

उत्तर :
१. आत्मा से परमात्मा बनने की।
२. बाहर से भीतर उतरने की।
३. द्रव्य से भाव बनने की।

प्रश्न ५७ णमो पद के अनेक अर्थ बनते हैं। कौन सा अर्थ इस मन्त्र की आत्मा से जुड़ता है?

१. णमो - कृतज्ञता प्रकाशन हेतु, (Gratitude)
२. णमो - पापों की स्वीकृति (Confession)
३. णमो - समर्पण भाव (Surrender)

४. णमो - आत्मिक गुणों के प्रति (Faith and Devotion)

सर्वोच्च आत्मिक गुणों के प्रति नमन भाव ही सर्वश्रेष्ठ नमन - अर्थ है ।

प्रश्न ५८ इस मन्त्र के ध्वनिमूलक उच्चारण की प्रक्रिया और लाभ समझाइए ।

उत्तर : मन्त्रपाठ - नेत्र के माध्यम से - रंगों के आश्रय से (प्रत्येक परमेष्ठी के प्रतीक रंग पर दृष्टि रखकर)

मन्त्रपाठ - कर्ण के माध्यम से ध्वनिपरक उच्चारण आत्मशुद्धि और शरीर शुद्धि हेतु

मन्त्रपाठ - योग ध्यान द्वारा मन के माध्यम से

ध्वनिमूलक उच्चारण व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर किया जाता है । उच्चारण २-२-१ के क्रम से तीन श्वासों में होना चाहिए ।

शरीर की बाह्य निर्मलता, स्फूर्ति और भीतरी निरोगता के लिए यह अचूक है ।

शारीरिक माध्यम से - चक्र परिक्रमा क्रम से मूलाधार ऊर्जा जागृत होकर आत्मिक अनाहत नाद में परिवर्तित होती है - यहीं से प्रकट ध्वनि मन्त्र बनती है ।

पवित्र आत्मा और निष्कलंक चरित्र वाले महात्मागाँधी के मुख से ९ आगस्त १९४२ को एक मन्त्र राष्ट्र के नाम स्फोटित हुआ - "करो या मरो" बस समस्त राष्ट्र स्वतन्त्रता आन्दोलन में पूर्ण समर्पण भाव से कूद पड़ा । १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ । श्रमण महावीर ने धर्म के नाम पर नर हत्या और पशुबलि का नारकीय दृश्य देखा और मानवता को मन्त्र दिया "अहिंसा परमो धर्मः" आज यह मन्त्र विश्वव्यापी है । आध्यात्मिक शक्ति लोकोत्तर होती है ।

प्रश्न ५९ महामन्त्र के रंगमूलक अध्ययन या जाप से क्या लाभ है?

उत्तर - नेत्र के माध्यम से शरीर एवं आत्मा की शुद्धि और ऊर्जा-जागरण।

स्पष्टीकरण : आज शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए ध्वनिविज्ञान, रत्न विज्ञान (Gem Therapy), सूर्यकिरण चिकित्सा और रंगीन रश्मि चिकित्सा या योग का वर्चस्व विज्ञान द्वारा भी प्रमाणित किया जा चुका है। भारतीय सन्तों और ऋषियों ने तो अपने सहस्रों वर्षों के अनुभव से इन चिकित्साओं को सहस्रों वर्ष पूर्व ही प्रतिपादित कर दिया था। रंग विज्ञान या रंग चिकित्सा का भी इस चिकित्साओं में महत्वपूर्ण स्थान है। बल्कि यह कहना अधिक समीचीन होगा कि इन चिकित्साओं का मूलाधार रंग चिकित्सा है।

महामन्त्र णमोकार की महिमा और गुणवत्ता का अनुसन्धान रंग विज्ञान के धरातल पर भी किया जा सकता है। इससे हमें सर्वथा नई समझ और दृष्टि भी प्राप्त हो सकती है। भौतिक शक्तियों पर नियन्त्रण करके उन्हें आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में एक साधन के रूप में स्वीकार करना ही होगा।

प्रतीकात्कता - णमोकार मन्त्र में प्रतीकात्मक पद्धति अपनार्य गई है। प्रतीक के बिना कोई मन्त्र महामन्त्र नहीं हो सकता। पाँचों परमेष्ठी प्रतीक है - अथन्त गुणों के। रंग भी प्रतीक हैं शक्ति के।

रंगों का सुख, समृद्धि और चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत महत्व है।

लाल रंग या प्रकाश धमनी के रक्त को उत्तेजित करता है।

लाल रंग में गर्मी होती है। इसका सेंक शीत और सूजन का शमन करता है। विचारों में घनत्व लाता है। यौन दौर्बल्य में प्रभावक है।

श्वेत रंग - मानसिक और शारीरिक पवित्रता और सत्य के प्रति निष्ठा का वर्धक है । यह रंग सात रंगों के (इन्द्र धनुषी) के आनुपातिक मिश्रण से बनता है अतः इसे सर्वोत्तम भी माना गया है ।

पीला रंग : हृदय रोग शमन कारी है, मानसिक प्रफुल्लता का सम्वाहक है । मानसिक उत्तेजना को दूर करता है ।

हरा रंग - नेत्र दृष्टि वर्धक एवं आह्लादकारी है । यह समभाव और विकास का संचालक है । फोड़ों या जख्मों को तुरन्त भरता है । पेचिश को शान्त करता है ।

नीला रंग - विचार - विस्तार में सहायक, स्मरणशक्ति वर्धक शरीर पीड़ा - हारी एवं मानसिक रुग्णता को दूर करने वाला है । शयन कक्ष का रंग नीला (हल्का नीला) हो तो अत्यन्त शुभ है । यह अपशकुनों से बचाता है ।

काला रंग - संघर्ष शीलता, त्याग और सेवा का प्रतीक है । यह रंग मानव की बाह्य वृत्तियों में संकोच पैदा करता है । तीर्थंकर मुनिसुव्रत, नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ के क्रमशः श्याम, श्याम एवं घनश्याम वर्ण हैं ।

प्रश्न ६० मन्त्र के योगमूलक अध्ययन से क्या लाभ है?

उत्तर : योग का अर्थ - स्थिर मन की मध्यस्थता से आत्मा का परमात्मा से जुड़ना - एकाकार होना । कर्म में कुशलता और चित्तवृत्तियों का निरोध योग है । अतः इस महामन्त्र के योग मूलक - (शुद्ध मनोमूलक) जाप से परमात्म की प्राप्ति होती है ।

वास्तव में मन की सहज निर्मलता से जो मन्त्र की आराधना की जाती है वह सर्वोत्तम तो है, पर गहरी सूक्ष्मता और अतीन्द्रियता के कारण बहुत कठिन है । परम योगी और ऋषि भी इसमें चूक

जाते हैं । अतः ध्वनि और रंग के स्थूल पार्थिव माध्यमों से मन्त्राराधना का क्रमिक विकास सामान्य मानव के लिए व्यावहारिक और सही बैठता है । पर अभ्यास से योगाभ्यास भी होता ही है । मानसिक रुग्णता सबसे बड़ी बीमारी है । इसी मन की भटकन या दिशान्तरण को रोकने में योग सबसे बड़ी भूमिका अदा करता है ।

प्रश्न ६१. साधु पद और सिद्ध पद में क्या अन्तर है?

उत्तर : साधु पद केवल साधना के लिए है ।
सिद्ध पद केवल सिद्धि के लिए है ।

प्रश्न ६२. ध्यान का क्या अर्थ है?

उत्तर : चित्त की एकाग्रता ध्यान है । विकल्प से संकल्प में मन का आना ध्यान है । जो एक लय से आत्मा का आत्मा के लिए आत्मा में ध्यान करता है, वही मोक्ष प्राप्त करता है ।

प्रश्न ६३. मन्त्र साधना में ध्यान का क्या महत्व है?

उत्तर : योग और ध्यान लगभग पर्यायवाची शब्द हैं । अतः ध्यानमूलक मन्त्र साधना आध्यात्मिक ऊर्जा के जागरण में परम सहायक है - इसका विकास ही परमपद से परिचित होना है । उत्कृष्ट ध्यान अत्यन्त विरल भी है ।

प्रश्न - ६४ सत्य तक पहुँचने के दो साधन हैं तर्क (ज्ञान) और अनुभव । इनमें अधिक शक्तिशाली और विश्वसनीय कौन है? क्यों?

उत्तर : किसी घटना अथवा विषय की सचाई को जानने के लिए देखना, समझना और महसूस करना ये तीन साधन है । इसी प्रकार घटना या सत्य को प्रत्यक्ष न देख पाना पर प्राप्त साधनों द्वारा परोक्ष रूप से सत्य तक पहुँचना भी होता है ।

तर्क बुद्धिपरक और विश्लेषणात्मक होता है। तब उसमें संश्लेषण और स्थिरता नहीं आ पाती। किन्तु जब तर्क संश्लेषण और अनुभव के साँचे में ढलता है तो वह सप्राण और विश्वसनीय तथा सार्वजनीय हो जाता है।

इसी प्रकार व्यक्तिगत अनुभव आंशिक हो और हम कल्पना और अतिरंजना से उसे बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत करें तो वह भी सत्य से दूर होगा। दूसरे व्यक्ति का अनुभव भिन्न भी हो सकता है। अतः अनुभव का साधारणीकरण अनिवार्य है। तथ्य से सत्य तक की यात्रा लम्बी होती है। अतः ज्ञान और अनुभव एक होकर सत्य को स्थायी रूप से पा सकते हैं।

तथ्य वस्तुपरक, स्थूल एवं भ्रमात्मक होता है। उसके माध्यम से तटस्थ भाव से सत्य (भावात्मक - इच्छापरक) तक पहुँचना होता है। किसी घटना के पीछे इच्छा की पक्की तलाश करना बहुत जरूरी है। मन्त्र का यही रहस्य है। संकल्प और सत्संकल्प आविष्कारक भी होता है।

प्रश्न ६५ णमो शब्द की पाँच तत्त्वों के आधार पर व्याख्या कीजिए।

उत्तर :

	तत्त्व	गुण
ण् -	आकाश तत्व	ऊर्ध्वगामिता, ऊर्जा जागरण
अ -	वायु तत्व	सिद्धिदाता गतिदाता
म् -	आकाश तत्त्व	ऊर्ध्वागामिता - ऊर्जा जागरण
ओ -	जल तत्त्व	बीजों का मूल - फल प्रद

निष्कर्ष - णमों महामन्त्र का मूल बीज है। तत्त्वों के आधार इसमें जलतत्त्व वायु और आकाश तत्त्वों के योग से सम्पूर्ण आध्यात्मिक ऊर्जा में परिणत हो जाता है। केवल णमो का पाठ भी श्रेयस्कर है।

प्रश्न ६६ णमो शब्द की ध्वनि तत्व के आधार पर व्याख्या कीजिए।

उत्तर : वर्ण - उच्चारण स्थान

ण् - मूर्धा

अ - कंठ

म् - ओष्ठ

ओ - अर्धोष्ठि (आधा खुला मुँह)

निष्कर्ष - मूर्धा और अर्धोष्ठ ध्वनियाँ शारीरिक ऊर्जा से आरम्भ होकर आत्मिक ऊर्जा में बदलती है। भक्त का मन परम शान्त अवस्था में आ जाता है। कंठ और ओष्ठ मध्यस्थिति में रह कर सहस्रार चक्र गामिनी मूर्धन्य ध्वनि का साथ देते हैं। मन्त्र ध्वनियों के उच्चारण से उनकी विशिष्टता के कारण सम्पूर्ण शरीर में पवित्र स्पन्दन होता है और कर्ममल नष्ट होता है।

प्रश्न ६७. महामन्त्र में कितने स्वर और कितने व्यंजन हैं?

उत्तर : स्वर ३४ और व्यंजन ३० = ६४ (वर्ण)

स्वर ३५ और व्यंजन ३३ = ६८

मन्त्र में कुल ३५ अक्षर हैं

बीजाक्षर ६८ हैं।

स्पष्टीकरण - ६४ वर्णों के विषय में ध्यातव्य है कि प्रथम पद के णमों के बाद के अ का लोप।

संयुक्त व्यंजन भी १ ही चार नही

अ और संयुक्त व्यंजनों को मान लेने से स्वर	३५
और व्यंजन	३३
	६८

प्रश्न ६८ इस मन्त्र के प्रतीकात्मक रंगों के माध्यम से हमारे अन्दर कैसी प्रतिक्रिया होती है?

उत्तर : मन्त्रस्थ रंगों के माध्यम से हम प्रकृति से जुड़कर सहज हो जाते हैं। व्यापक हो जाते हैं। फिर स्वयं में लीन होकर अलौकिक शान्ति का अनुभव करने लगते हैं। सिद्धिपथ के लिए रंग साधन हैं। शब्द (ध्वनि) से रंग, रंग से ध्यान और प्रकाश (एकाग्रता) और यह एकाग्रता ही तप रूप होकर - आत्मोपलब्धि कराती है।

इस महामन्त्र के रंगमूलक अध्ययन (जाप) से अनेक लाभ है - उदाहरणार्थ कतिपय ये हैं -

१. प्रकृति से निकटता - स्वयं में प्रकृति के समान व्यापकता (आत्मा का सहजता में निमज्जन)

२. शब्द से शब्दातीत होने में रंग सहायक है।

३. रंग साधन मात्र है - सिद्धि की अवस्था में ये स्वतः उपलब्ध हो जाते हैं।

४. तीर्थंकरों के देह रंग प्रतीकात्मक शैली में बताए गये हैं। ध्यान के लिए आकृति और रंग आवश्यक है।

५. रंग चिकित्सा का महत्व तो है ही। णमोकार मन्त्र से सम्बन्धित पद के जाप से शरीर के रंगों की कमी पूरी की जा सकती है। रंगों की शुद्धि से निर्मलता आएगी।

६. अ. इन्द्र धनुष के सात रंगों का महत्व

आ. रंग चिकित्सा (Colour therapy) का महत्व

इ. मणि चिकित्सा द्रुश्व Therapy का महत्व

स्व. डॉ. नेमीचन्द ज्योतिषाचार्य का मत भी यही है।

ई. सूर्य चिकित्सा

उ. रश्मि चिकित्सा

प्रश्न ६९. पंच परमेष्ठी में द्रव्य लक्षण कैसे घटित होता है?

उत्तर :

१. अरिहन्त, आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठी क्रमशः दिव्य ध्वनि, अनुशासन और विद्यादान का उत्पादन करते हैं।

२. साधु परमेष्ठी कर्मनाश के रूप में व्यय प्रक्रिया पूरी करते हैं।

३. सिद्ध परमेष्ठी मोक्ष के माध्यम से आत्म की ध्रुवता स्थापित करते हैं।

प्रश्न ७०. महामन्त्र प्राकृत भाषा में हैं। इसमें कितने स्वर और कितने व्यंजन होते हैं। क्या इस मन्त्र में उन सब का प्रयोग हुआ है?

उत्तर : प्राकृत भाषा के व्याकरण के अनुसार चारों मूल स्वर (अ,इ,उ,ए) तथा बारह व्यंजन - (ज,झ,ण, त,द,ध,य,र,ल,व,स,ह) इस महामन्त्र में सम्मिलित हैं। संस्कृत की सम्पूर्ण वर्णमाला भी पूर्णतया इस मन्त्र में (प्रतिनिधि रूप से) गर्भित है। अतः वर्णमाला के स्तर पर भी यह मन्त्र द्रव्यश्रुत के रूप में समस्त जिनवाणी का प्रतिनिधित्व करता है। इसका पाठ समस्त मन्त्रित जिनवाणी का पाठ है। पूर्ण प्राकृत वर्णमाला में ६४ वर्ण हैं। संस्कृत में ६३।

प्रश्न ७१ सामान्य अरिहन्त केवली और तीर्थंकर अरिहन्त केवली में समानता असमानता किन किन विषयों में है?

उत्तर : मोक्ष में सभी केवली समान हैं।

सभी अष्ट कर्मों का नाश कर अष्टगुण सम्पन्न है।

असामनता	अरिहन्त अवस्था में सामान्य केवली में घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न अनन्त चतुष्ट्य (शुद्धात्मा के गुण) मात्र होते हैं ।
	तीर्थंकर केवली में अनन्त चतुष्ट्य के अतिरिक्त ४२ अतिशयमूलक गुण भी माने जाते हैं । ये सभी ४२ गुण देवकृत, पुण्यकृत एवं शरीरज हैं जो संसार समाप्ति के साथ समाप्त हो जाते हैं ।

४६ गुणों में -			
	अतिशय	३४	(१० जन्म के, १० केवल ज्ञान के १४ देवकृत)
	प्रातिहार्य	८	(ये भी बाह्य विभूतियाँ हैं ।)
	अनन्त चतुष्ट्य	४	(आत्मा के निजी गुण हैं)
		४६	

प्रश्न ७२ पंच नमस्कार मन्त्र में चूलिका का क्या महत्त्व है?

उत्तर : महामन्त्र का चूलिका भाग इसके फलात्मक महत्व को प्रतिपादित करता है - वह है -

ऐसो पंचणमोक्कारों सब्ब पावरप्पणासणो ।
मंगलाणं च सब्बेसिं पढ़मं हवइ मंगलम् ॥

अर्थात् यह पंच नमस्कार महामन्त्र सब पापों का नाश करनेवाला है । समस्त मंगलों में पहला मंगल है । यहाँ एक सचाई (जीवन की प्रतिक्षण अनुभूत वास्तविकता) पर ध्यान जाना आवश्यक है । यह मन्त्र मूलतः आध्यात्मिक है यह सच है, परन्तु इससे भक्त के सांसारिक कष्ट, संकट और पाप भी छूटते कटते हैं - कटे हैं । इसके सैंकड़ों उदाहरण हमारे पुराणों में हैं और हमारे जीवन में भी हैं । भक्त स्वस्थ शरीर, स्वस्थमन और स्वस्थ वातावरण में रहकर ही साधना कर सकता है । हम संसार में रहकर उसमें जीकर उसे गाली देकर अपनी शान बधारते हैं - आत्म प्रवंचना करते हैं । हमें संसार से नहीं संसारिकता से विरक्ति रखना है । कितना अन्तर्विरोध है हमारे जीवन में । आत्मा की विशुद्धि के नाम पर हम अपने मूल चरित्र को त्याग को अनुपादेय कह कर त्याग रहे हैं

और प्रकारान्तर से भोगों का लाइसेन्स ले रहे हैं । अतः यह महामन्त्र भक्त का मनोबल जगाकर, रक्षक देव-देवाङ्गनाओं के माध्यम से या निजी भीतरी ऊर्जा के द्वारा भक्त की हर प्रकार से रक्षा करता है, यह प्रकट - व्यावहारिक तथ्य हमें मानना ही होगा । अव्यावहारिक आदर्शवाद आत्मघाती होता है । मन्त्र विरोधियों को गुरिल्ला प्रवृत्ति त्यागनी होगी ।

भक्त भगवान से या मन्त्र से भोग विलास, डकैती, दुराचार आदि कभी नहीं माँगता । बस वह तो संसार के अत्याचारों और अन्यायों से रक्षा चाहता है, न्याय चाहता है । यह माँग अत्यन्त सहज है - किसी भी धर्म का प्राण है ।

"इक गाँव पति जो हो वे,
सो भी दुखिया दुःख खोवे;
तुम तीन भुवन के स्वामी
दुख मैटो अन्तर्यामी ।"

इन पक्तियों में निहित जीवन का कटु सत्य हम केवल सिद्धान्त की, शास्त्र की और निश्चय की बात कहकर झुठला नहीं सकते । भक्ति का प्राण तत्व भजन और भक्त का समर्पण भाव है जो उसे अभय देता है ।

प्रश्न ७३. ओम् शब्द में पंच परमेष्ठी कैसे गर्भित हैं - सिद्ध कीजिए ।

उत्तर : अरिहन्त अशरीरी (सिद्ध) आचार्य उपाध्याय मुनि (साधु)

अ + अ + आ = आ + उ = ओ + म् = ओम्

ओम् परमात्मा शक्ति बीज है । यह सार्वदेशिक सार्वकालिक अपराजेय शक्ति विशेष है । यह उच्चरित हो प्राण को जागृत कर सुषुम्ना मार्ग से सहस्रार तक ले जाती है । - फिर दिव्य चेतना में विलीन हो जाती है ।

पतंजलि - प्रकर्षेण नूयते स्तूयते अनेन इति प्रणवः (ओम्)
तस्य ईशस्य वाचकः प्रणवः ।

प्रश्न ७४ णमोकार मन्त्र की मूल ऊर्जा कुंडलिनी जागरण में हैं क्योंकि णं का प्रारम्भ ही कुंडलिनी जागरण से होता है । क्या आप इससे सहमत है, यदि हाँ तो कैसे?

उत्तर : णं ध्वनि मूर्धामूलक है, आकाश तत्त्वमय है अतः वह सहज ही बीजध्वनि के रूप में मूलाधार (कुंडलिनी) में स्पन्दन पैदा कर सम्पूर्ण चक्र मण्डल में व्याप्त हो जाती है ।

इस प्रकार का विचार कुछ अन्तर के साथ अनेक प्राचीन और वर्तमान आचार्यों का है । हेमचन्द्राचार्य से लेकर मुनि सुशील कुमार जी तक में इस तथ्य को परखा जा सकता है । हमारा सीमित ज्ञान अब नये खोज - क्षितिज खोज रहा है तो हमें उसे समझना चाहिए न कि परिबद्ध मस्तिष्क हो कर विरोध करना चाहिए ।

कुंडलिनी (मूलाधार चक्र) - स्वरूप और गुण

मनुष्य स्थूल शरीर तक ही सीमित नहीं है । वह सूक्ष्म शरीर एवं स्वप्न शरीर आदि भेदों से आगे बढ़ता हुआ समाधि की ओर गतिशील हो जाता है । शरीर के इन सभी रूपों को पाँच शरीर भी कहा गया है - अन्नमय शरीर, प्राणमय शरीर, मनोमय शरीर, विज्ञानमय शरीर और आनन्दमय शरीर । इसी प्रकार औदारिक, वैक्रियक, तैजस, आहारक और कामणि के रूप में जैन शास्त्रों में भी शरीरों का वर्णन है । इनसे परे आत्मा है । इन शरीरों की ऊपरी सतह पर ईथर शरीर (आकाश वायु शरीर) है । ईथर के भंडार स्थान शरीर चक्र कहलाते हैं ।

	चक्र	स्थान
१.	मूलाधार चक्र	मेरुदंड के नीचे मूल में
२.	स्वाधिष्ठान चक्र	गुप्तांग के ऊपर
३.	मणिपुर चक्र	नाभि के ऊपर
४.	अनाहत चक्र	हृदय के ऊपर
५.	विशुद्ध चक्र	कंठ में
६.	आज्ञा चक्र	दोनों भौहों के नीचे
७.	सहस्रार चक्र	मस्तक के ऊपर

ये चक्र सदैव क्रियाशील रहते हैं और अपने मुख छिद्र में दिव्य शक्ति (प्राण वायु) भरते रहते हैं । इस शक्ति के अभाव में स्थूल शरीर जीवित नहीं रह सकता ।

कुंडलिनी - मूलाधार चक्र :

यह मानव - मानवी के मेरुदंड के नीचे विद्यमान एक विकासशील शक्ति है । यही जीवन का मूलाधार है । यह हमारी रीढ़ के नीचे सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है । इसको ठीक समझने और उपयोग करने की शक्ति प्रायः मानव में नहीं होती । यह शक्ति लाभकारी भी है और नाशकारी भी । यदि पूर्ण जानकारी न हो तो इसे न छेड़ना ही उचित है । अनेक मनुष्यों में कभी कभी अद्भुत, अतिमानवीय एवं अतिप्राकृतिक दैवी एवं दानवी क्रियाएँ देखी जाती है । यह सब अज्ञात रूप से जागी कुंडलिनी का ही कार्य है । यह आंशिक कार्य है । कुंडलिनी जागरण में बहुत सी बातें घटित होती हैं - जैसे सोते-सोते चलना, रात्रि में स्वप्न दर्शन, अति निद्रा या अनिद्रा । किसी गहरी जटिल समस्या का त्वरित समाधान मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध जाना भी इसका ही चमत्कार है । मूलाधार में शक्ति एकत्र होती है । वहीं से सभी चक्रों में वितरित

होती है। कुंडलिनी जागृत होने पर बर्छी की नौक की तरह ऊपर को चढ़ती हुई अन्ततः जीवात्मा में प्रवेश करती है और लोकोत्तर चैतन्य उत्पन्न करती है।

प्रश्न ७५ रत्नविज्ञान (रत्न चिकित्सा) Gem Therapy के माध्यम से महामन्त्र में किस प्रकार उतरा जा सकता है?

उत्तर : रंग विज्ञान का ही एक अंग रत्न विज्ञान है। रंग से आकृति और आकृति से तादात्म्य होने पर आराध्य परमेष्ठी के गुणों का साक्षात्कार होगा और भक्त की आत्मा में ऊर्जा और निर्मलता आएगी। इस रंग चिकित्सा में इन्द्रधनुष का महत्व सर्वोपरि है, परन्तु इन्द्र धनुष के रंगों को सीधा तो प्राप्त करना संभव नहीं है अतः सूर्य किरण, चन्द्र किरण अथवा रत्नरंग द्वारा यह कार्य किया जा सकता है। अमीप्सित परमेष्ठी के रंग के वस्त्र और मणि धारण कर मन्त्र जाप करना अवश्य ही लाभ दायक होगा। प्रसिद्ध सात रत्नों के नाम, रंग, ग्रह और चक्र इस प्रकार है -

	रत्न	वर्ण	ग्रह	चक्र
१.	लाल	लाल	सूर्य	मूलाधार
२.	मोती	नारंगी	चन्द्र	सहस्रार
३.	मूंगा	पीला	मंगल	आज्ञा
४.	पन्ना	हरा	बुध	मणिपुर
५.	पुष्प राग	नीला	बृहस्पति	विशुद्ध
६.	हीरा	जामुनी	शुक्र	स्वाधिष्ठान
७.	नीलम	आसमानी	शनि	अनाहत

इन रत्नों के विषय में कुछ मूलभूत बातें ये हैं -

१. ये रत्न सदा अपना एक शुद्ध रंग ही रखते हैं और वह भी बहुत अधिक मात्रा में रखते हैं । इनमें मिश्रणों की संभावना नहीं है ।

२. ये सभी रत्न अत्यधिक चमकीले होते हैं और अपनी रंगीन किरण को सदा प्रकट करते हैं ।

३. ये रत्न अल्कोहल, स्पिरिट और पानी में डाले जाने पर अपनी किरणों का प्रकाश विकीर्ण करते हैं । इनमें न्यूनता या थकान नहीं आती ।

४. इन रंगों की विश्वसनीयता के लिए तिकोना शीशा (भृद्गग्रश्व) भी काम में लाया जाता है ।

हमारी जिह्वा द्वारा उच्चारित भाषा की अपेक्षा दृष्टि में अवतरित रंग और आकृतियों की भाषा अधिक शक्तिशाली है । महामन्त्र में निहित रंगों की भाषा को स्वयं में उतारने से अद्भुत तदाकारता की स्थिति बनती है ।

प्रश्न ७६ मंगल पाठ में अरिहन्त, सिद्ध और साधु परमेष्ठियों की शरण ली गयी है । आचार्य एवं उपाध्याय परमेष्ठियों को क्यों छोड़ा गया है?

उत्तर : मंगल पाठ में साधु परमेष्ठि में आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठी गर्भित हैं क्योंकि अन्तिम तीन परमेष्ठी साधु (मुनि) हैं । पूर्णतया साधुपद में लीन होने के कारण साधु परमेष्ठी का विशिष्ट स्थान है । आचार्य और उपाध्याय यद्यपि मुनि हैं परन्तु संघ व्यवस्था और अध्यापन के दायित्व के कारण कभी कभी उनमें रागद्वेष की संभावना बनती है, फिर उन्हें निजी साधना के लिए समय भी कम मिलता है । यही कारण है कि ये अन्तिम समय में पुनः दीक्षा लेते हैं । आचार्य - उपाध्याय सदा निर्विकार हैं - यह भी मत है ।

प्रश्न ७७. अर्ह, अर्हम्, अर्हन्, अर्हद्, अर्हा, अरिहन्त, अरहन्त, अरुहन्त-इनमें से कौन सा शब्द अरिहन्त परमेष्ठी के गुणों का प्रतिनिधित्व करता है?

उत्तर : णमोकार महामन्त्र में प्राकृत भाषा के अनुरूप अरिहन्त और अरहन्त ये दो रूप ही बनते हैं और सभी ग्रन्थों में इनका ही उल्लेख है । ये दोनों शुद्ध हैं । फिर भी अरिहन्त शब्द अधिक गुणात्मक और शक्तिशाली हैं । इ स्वर तालु द्वारा उच्चरित है और ऊर्ध्वगामिता में सहायक भी । अन्य रूप तो व्यक्तिशः मुखविवर के कारण चल पड़े हैं या मन्त्रगत न हो कर एक स्वतन्त्र इकाई हैं ।

प्रश्न ७८. नमस्कार महामन्त्र में नमन मुख्य है । यह नमन चैतन्य (शुद्धात्माओं) को है । समझाइए ।

उत्तर : णमो पद भक्त की विनय, लघुता और जिज्ञासा का द्योतक है । यह पद आराध्य की गुणात्मक सर्वोच्चता और गुरुता का उद्घाटक है ।

णमोपद के व्यावहारिक नमन (शारीरिक नमन) का नहीं अपितु व्यंग्यार्थ परक आध्यात्मिक - भीतरी नमन का महत्व है ।

नमन जिन्हें किया गया है वे सभी - परमेष्ठी संसार से विरक्त शुद्ध चैतन्य में लीन हैं । अतः भक्त का शुद्ध भावात्मक नमन ही अपेक्षित है । जड़ जगत् से विरक्ति और शुद्ध परमात्मत्त्व में अनुरक्ति इस नमन का प्राण तत्त्व है ।

प्रश्न ७९. णमोकार महामन्त्र में तीन पद ७-७ अक्षरों के हैं । क्या ७ संख्या का कोई विशेष महत्व है?

उत्तर : संख्या विज्ञान की दृष्टि से अंक ९ और सात का विशेष महत्व है । ये अंक जब आयु में जुड़ते हैं तो उस वर्ष कुछ न कुछ चमत्कार होता है ।

संगीत के सात स्वर, सप्तर्षि, सात दिन, सात चक्र, सात नय आदि ७ संख्या का महत्व सूचित करते हैं। मन्त्र में कुल अक्षर ३५ हैं। इससे भी ७ x ५ का क्रम बनता है। पाँचवें पद के लोए अथवा सब्ब पद को णमो सिद्धांत में मिला देने से यह ७-७ का क्रम बनता है। अतः सप्ताक्षरी मन्त्र पाठ को (णमो अरिहंताणं) ऋषियों और विद्वानों ने विशेष महत्व दिया है। अरिहन्त परमेष्ठी का प्रतीक रंग (श्वेत) प्रसिद्ध सात रंगों से बनता है।

प्रश्न ८०. इस महामन्त्र के रचयिता कौन हैं?

उत्तर : यह महामन्त्र अनाद्यनन्त है अतः इसके रचयिता का प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता। मन्त्र शब्दों में निहित दिव्य शक्ति होती है, भाषा का स्थान उसमें द्वितीय और गौण होता है। अतः यह महामन्त्र अर्थ और भावशक्ति के आधार पर अनादि अनन्त है। सभी तीर्थंकर अपने अपने युग में इसका मनन करते हैं। इसकी भाषा युग युगान्तर में बदलती रहती है, पर वह भी मन्त्रात्मक और ऋषिकृत होती है। पूर्णतया जागृत मूलाधार चेतना का पुरुषोत्तम ही इसकी भाषा का सृजन कर सकता है। ऋषि मुनि प्रायः विज्ञापन से दूर रहते हैं अतः भाषाकार तो कोई रहा होगा, पर अज्ञात है। प्राकृत भाषा वैदिक काल के आस-पास की मानी जाती है। अतः यह मन्त्र भाषा के स्तर पर ५००० वर्ष पुराना तो है ही और रचयिता उसी काल का कोई महान् ऋषि रहा होगा।

प्रश्न ८१. इस मन्त्र को कितनी राग-रागिनियों में सस्वर प्रस्तुत किया जा सकता है?

उत्तर : यह मन्त्र संगीत की ५२ राग रागिनियों में गाया जा चुका है। मध्य प्रदेश के सागर जिले के शाहपुर गाँव के एक जैन सज्जन यह चमत्कार दिखा भी चुके हैं।

प्रश्न ८२. ऋषि द्वारा किस दशा में स्फुटित ध्वनि नाद मन्त्र बनता है?

पूर्ण रूप से जागृत मूलाधार शक्ति जब सहस्रार चक्र पर्यन्त अनहत नाद के रूप में प्रकट होती है तो वही मन्त्र बनती है। यही परावाणी है। यह ओंकारात्मक दिव्य ध्वनि के समान है।

प्रश्न ८३. णमोकार महामन्त्र समस्त मन्त्रों और (विद्याओं का बीज है - कैसे)?

उत्तर : सभी मन्त्र परमात्मा की उपासना रूप हैं। नवकार में परमात्मा के पाँचों स्वरूपों का नमन है, अतः यह समस्त मन्त्रों और विद्याओं का बीज बनता है। सभी मन्त्रों तथा विद्याओं में बीज रूप में यह मन्त्र अनुस्यूत है। (नमस्कार मीमांसा से साभार)

प्रश्न ८४. ईश्वर सम्बन्धी जैन मान्यता क्या है? अन्य प्रमुख धर्मों से इसमें क्या मतभेद है?

उत्तर : ईश्वर सम्बन्धी जैन मान्यता इस प्रकार है -

१. सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी, आवागमन रहित, समस्तकर्मनाशक, अशरीरी, प्रत्येक मुक्त आत्मा परमात्मा है। जैन परमात्मा सृष्टि के जनक, रक्षक और नाशक नहीं है।

२. अन्य धर्मों में ईश्वर एक ही है। वही पुनः पुनः अवतार लेता है। संकटकाल में भक्तों की रक्षा करता है और दुष्टों का नाश करता है। ईश्वर सृष्टि का जनक रक्षक और ध्वंसकर्ता है।

प्रश्न ८५. जैन कर्म सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्राणी का जीवन मरण, सुख-दुख निज कर्मानुसार ही होता है। तब इस महामन्त्र की शक्ति का क्या महत्व है?

उत्तर : सिद्धान्ततः यह सच है कि हमारा जन्म मरण कृत कर्मानुसार होता है फिर भी हम अपने पवित्र आचरण, तप और मन्त्र साधना से अपने मनोबल को पर्याप्त बढ़ा कर कर्मों को क्षीण कर सकते हैं - उनके प्रभाव को न के बराबर कर सकते हैं। सर्प दंश यदि चींटी दंश में बदल जाए तो यह बहुत बड़ी उपलब्धि ही है।

फिर मन्त्राराधना से भविष्य तो उज्जवल होगा ही और वर्तमान में हम एक गौरवमय, शान्त और पवित्र जीवन जी सकेंगे। मन्त्राराधना से हममें मानसिक संतुलन, धैर्य और सत्संघर्ष की अपार शक्ति आ जाती है। हम अकाल मृत्यु से बच सकते हैं। सच तो यह है कि मन्त्र भक्त में मृत्यु का डर लाता ही नहीं है।

प्रश्न ८६. इस महामन्त्र की महिमा बताइए -

उत्तर : इस महामन्त्र की महिमा नित्य पूजा की पीठिका में इस प्रकार वर्णित है -

"अपवित्रः पवित्रों वा सुस्थितों दुस्थितोऽपि वा
ध्यायेत पंच नमस्कारं सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥
अपराजित मन्त्रोऽयं सर्व विघ्न विनाशकः
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥"

अर्थात् भक्त भले ही शरीर से अपवित्र हो या पवित्र, उचित आसन में हैं या नहीं, परन्तु यदि वह इस पंच नमस्कार मन्त्र का ध्यान (मन से स्मरण) करता है तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। यह महामन्त्र अपराजित (अपराजेय) और सर्व विघ्न विनाशक है और सर्वश्रेष्ठ मंगल है।

प्रश्न ८७. अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी के पदक्रम में व्यावहारिक लोकपक्ष को महत्व दिया गया है, आचार्य और उपाध्याय को भी इस धरातल पर साधु परमेष्ठी से ऊपर स्थापित किया गया है । इसी प्रकार तीर्थंकर अरिहन्त केवली में ४६ गुण माने गये हैं और उनमें से ४२ को मानकर भी अन्ततः पुण्योश्रित कहकर अमान्य कर दिया गया है । इस व्यावहारिक लोकपक्ष के धरातल पर क्या महामन्त्र अकिंचित्कर है?

उत्तर : यह महामंत्र अपने लक्ष्य में आध्यात्मिक है । परन्तु इसे व्यवहार मार्ग के माध्यम से लक्ष्य तक पहुँचाया गया है । यह महामन्त्र परोक्षतः (देव-देवाङ्गनाओं के माध्यम से) हमारी आध्यात्मिक - यात्रा में बाधा रूप लौकिक समस्याओं का समाधान करता है । हम निजी अनुभव के धरातल पर प्रायः आत्मा, स्वर्ग और मोक्ष के विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं । हमारी पूरी जानकारी शास्त्रों और पंडितों के माध्यम से विश्वास मूलक है - ज्ञानमूलक नहीं । दूसरी ओर जो हमारा जन-सेवा, जन-जीवन, पूजन-भजन, देवदर्शन और मुनिवन्दना का प्रत्यक्ष अनुभव है - जो हमें तृप्ति प्रदान करता है, उसे हम मिथ्यात्व कहने लगे हैं । व्रतारम्भ को व्यर्थ मानने लगे हैं । तब हमारे इस अन्तर्विरोध का क्या इलाज़ है? इस आत्म प्रवञ्चना से कैसे बचा जाए! स्थूल से साकार से, इन्द्रिय गोचर से, सहज ग्राह्य से सूक्ष्म, निराकार, अतीन्द्रिय और मानस ग्राह्य अलौकिक शक्ति की और बढ़ना उचित और सहज होगा । जो जीवन हम जीते हैं, अनुभव करते हैं और जो हमारा सामूहिक अनुभव है उसे हम कैसे तुच्छ और हेय कहें? इस पृथ्वी पर ही हम स्वर्ग और मोक्ष की अवतारणा क्यों नहीं कर सकते? निष्कर्ष यह है कि हम व्यावहार को जीवन की सर्वोच्च वास्तविकता में क्यों न स्वीकारे?

प्रश्न ८८. सांसारिक भोगों की इच्छा लेकर महामन्त्र का पाठ या जाप करना कहाँ तक उचित है?

उत्तर : मूलतः यह महामन्त्र गुणात्मक एवं आध्यात्मिक है । सभी आराध्य भी वीतरागी हैं । अतः लौकिक कामना के साथ उपासना करना उचित नहीं है । लौकिक राग युक्त भक्ति में कषायों की रागात्मक तीव्रता होगी और उससे पापबन्ध ही होता है, पुण्य बन्ध नहीं । वीतरागी सर्वज्ञ हमारा भला बुरा कुछ भी नहीं करते । बस हम उनके गुणों से प्रेरित होकर स्वयं में एक गहरी जागृति का शंखनाद अनुभव करते हैं ।

साथ ही यह भी एक अकाट्य सचाई है कि मानव घोर शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक तथा आर्थिक कष्टों में रहकर (रहते हुए) इन सबको भूलकर कैसे भक्ति (आत्मोद्धारपरक) करेगा । बस इसका समाधान यही है कि भगवान के गुणों से प्रेरित होकर भक्त अपने मनोबल को इतना अपराजेय बनाले कि उसे पीड़ा और पराभव का अनुभव न हो । ऐसी मानसिकता का निर्माण करना भक्त की बहुत बड़ी उपलब्धि है । पीड़ा प्रायः मानसिक होती है और मनोन्नयन से धुल जाती है । इस प्रकार परोक्ष रूप से या प्रकारान्तर से भक्त की लौकिक पीड़ा का शमन हो जाता है । विश्व के अन्य धर्म किसी न किसी प्रकार भगवान का प्रत्यक्ष सक्रिय साहाय्य भक्तों की रक्षार्थ स्वीकार करते हैं । यह एक प्रत्यक्ष एवं विश्वसनीय व्यावहारिक प्रयोग है । सहसा इसको तर्क बल से झुठलाना कहाँ तक कार्य कर होगा? अतः भक्तों के लौकिक कष्टों का निवारण चाहे परोक्ष प्रेरणा से हो । चाहे भगवान के अंगरक्षक देवों द्वारा हो और चाहे स्वयं भगवान के अवतार द्वारा हो, होना ही चाहिए, यह किसी धर्म की साख के लिए अत्यन्त महत्व पूर्ण है ।

प्रश्न ८९. अरिहन्त परमेष्ठी के मूल गुण तो ४ ही हैं फिर ४६ क्यों कहे गये हैं?

उत्तर : सभी अरिहन्तों के मूल गुण तो आत्मिक होते हैं और वे चार घातिया कर्मों के क्षय से होते हैं, परन्तु तीर्थंकर अरिहन्तों के ४२ गुण अधिक होते हैं जो पुण्याश्रित होते हैं - अतिशयात्मक होते हैं और संसार समाप्त होते ही अर्थात शरीर नष्ट होते ही नष्ट हो जाते हैं। ये ३४ अतिशय और ८ प्रातिहार्य हैं।

प्रश्न १०. सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप क्या है? उनके ८ आत्मिक गुण गिनाइए।

उत्तर : सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप -

जो आठ कर्मों के नाश कर्ता, आत्मिक ८ गुणों से युक्त, सर्वोत्कृष्ट, लोकाग्र में स्थित और नित्य हैं, वे सिद्ध हैं। सिद्धों के आठ (आत्मिक गुण) -

	कर्म	गुण
१.	ज्ञानावरणी कर्म के क्षय से	- अनन्त ज्ञान
२.	दर्शनावरणी	- अनन्त दर्शन
३.	मोहनीय	- क्षायिक सम्यम्त्व घातिया कर्मों के क्षय से
४.	अन्तराय	- अनन्तवीर्य
५.	वेदनीय	- अन्याबाधत्त्व (इन्द्रियजसुख-दुख का अभाव)
६.	आयु	- अवगाहनत्व (जन्म मरण रहितता)
७.	नाम	- अशरीरत्व
८.	गोत्र	- अगुरुलघुत्व (ऊंचनीच का अभाव)

(५ से ८ तक अघातिया कर्म हैं इनका क्षय शरीर छोड़ने से कुछ समय पूर्व होता है)

प्रश्न ९१. सिद्धावस्था क्या है?

उत्तर : चार घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने पर शुद्धात्मा की प्राप्ति हो जाती है - यह भाव मोक्ष है । जीवन्मुक्त अरिहन्त भाव मोक्ष के निमित्त से चार अघातिया कर्मों का नाश करके (अशरीरी होकर) द्रव्य मोक्ष प्राप्त करते हैं । यह अष्टकर्मों के क्षय से उत्पन्न अशरीरी अवस्था ही सिद्धावस्था है ।

आयु के अन्तिम समय में अर्हिन्तों का शरीर स्वतः कपूर की तरह उड़ जाता है और आत्म प्रदेश ऊर्ध्वगामी स्वभाव के कारण लोकाकाश पर स्थित हो जाते हैं - यही सिद्धावस्था है ।

प्रश्न ९२. सिद्ध परमेष्ठी अशरीरी होने पर चैतन्य मात्र रह जाते हैं, निर्गुण हो जाते हैं या शून्य हो जाते हैं?

उत्तर : सिद्ध न तो निर्गुण है और न ही शून्य या जड़ । वे अणुरूप या सर्वव्यापक भी नहीं । वे तो ज्ञान शरीरी अर्थात् ज्ञान चैतन्य से युक्त हैं वे सर्वज्ञ हैं ।

प्रश्न ९३. क्या महामन्त्र बीज मन्त्र है और सब मन्त्र इसी का अंश हैं या विस्तार हैं?

उत्तर : इस अपराजेय महामन्त्र में सभी अक्षर आध्यात्मिक ऊर्जायुक्त होने के साथ साथ दिव्य शक्तिमय बीजाक्षर भी हैं । ये कुल ६८ अक्षर हैं । यह अनादि महामन्त्र सम्पूर्ण जिनवाणी का बीज है । इसमें आत्मा की सर्वोच्च अवस्था अन्तर्हित है । यह सभी मन्त्रों का मूल बीज भी है । शेष मन्त्र इसी का प्रकारान्तर से विस्तार या अनुकरण हैं । यह प्रकट वीर्य महामन्त्र है । मन्त्र शक्ति और प्राणवायु की एकता सहस्रार में पहुँचकर पूर्ण मन्त्र बनती है ।

मन्त्र किसी ऋषी सा अज्ञात शक्ति की दीर्घ कालीन साधना का परिणाम या फल होता है । सामान्य मन्त्र निष्कामिता मूलक होता

है और बीजमन्त्र दिव्यशक्ति द्वारा प्रतिष्ठित शक्ति गर्भित होता है। इसे संकल्पी व्यक्ति ही भज सकता है।

प्रश्न ९४. भव्य जीव द्वारा किये गये पंच नमस्कार नमन से (भक्त में) लोकोत्तर शक्ति प्रकट होती है। कैसे?

उत्तर : भव्यजीव अर्थात् सम्यग्दृष्टि सम्पन्न निर्मल आत्मा जब णमोकार महामन्त्र का पाठ करता है तो उसमें आन्तरिक दृष्टि का विस्तार होने लगता है, वह परमगुरु और गुरु कृपा से धीरे धीरे सब कुछ देखने समझने लगता है। महान् आत्मा से निर्मल आत्मबल भक्त का साक्षात्कार अविलम्ब होता है। भक्त की शारीरिक मानसिक एवं आत्मिक निर्मलता में दिव्य एकाग्रता सहज एवं अविलम्ब पनपती है। विकृत चित्त एवं सांसारिकता में लिप्त चित्त में सहजता और आध्यात्मिक एकाग्रता दुर्लभ है।

प्रश्न ९५. मन्त्र विज्ञान से क्या तात्पर्य है?

उत्तर : मन्त्र विज्ञान से तात्पर्य है मन्त्र को समझने और हृदयंगम करने की विशिष्ट ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक प्रक्रिया। यह प्रक्रिया बंधे विश्वास और परम्परा को त्याग कर ही आगे बढ़ती है। इस विज्ञान का कार्य है मन्त्र के पूर्ण स्वरूप और प्रभाव को प्रयोग के धरातल पर घटित करके उसकी वास्तविकता स्थापित करना। जब तक अध्येता तटस्थ एवं रचनात्मक दृष्टि सम्पन्न नहीं है तब तक वह इस प्रक्रिया में सफल नहीं हो सकता। हमें सर्व प्रथम पंच परमेष्ठियों के पूर्ण स्वरूप को गुणों को पूर्णतया समझना चाहिए और अपनी संकल्पात्मक मनस्थिति मन्त्राराधना के प्रति बनानी चाहिए। हमारा ज्ञान अनुभव में ढलकर एवं प्रमाणित होकर ही पूर्णज्ञान (सिद्धि) बनता है। अन्ध श्रद्धा नहीं अपितु विवेक सम्मत श्रद्धा ही मन्त्राराधना में कार्यकर होगी। मन्त्र विज्ञान विश्लेषण से संश्लेषण की प्रक्रिया है। अहं का (अहंकार का) अर्हम् में विलय मन्त्र विज्ञान द्वारा स्पष्ट होता है।

प्रश्न ९६. मन्त्र शास्त्र या मन्त्र विद्या के प्रमुख कितने सम्प्रदाय भारत में प्रचलित हैं?

उत्तर : सम्पूर्ण मन्त्रों की संख्या सात करोड़ मानी गयी है। मन्त्र शास्त्रों में तीन मन्त्र मार्गों का उल्लेख है - दक्षिण मार्ग, वाम मार्ग और मिश्र मार्ग। दक्षिण मार्ग - सात्त्विक देवता की सात्त्विक उद्देश्य से की गई उपासना दक्षिण या सात्विक उपासना कहलाती है। वाम मार्ग इसमें पंच मकार (मदिरा, मांस, मैथुल, मत्स्य, मुद्रा - इनके आधार पर भैरवी चक्रों की योजना होती है। मिश्र मार्ग - इसमें परोक्ष रूप से पंच मकार तथा राक्षस मार्ग की उपासना पद्धति को स्वीकार किया गया है। वास्तव में यह मार्ग व्यर्थ ही रहा। मार्ग तो दो ही रहे।

मन्त्र शास्त्र में प्रमुख तीन सम्प्रदाय हैं - केरल, कश्मीर, गौण। वैदिक परम्परा केरल सम्प्रदाय के आधार पर चली। बौद्धों में गौड़ सम्प्रदाय मान्य रहा। जैनों का अपना स्वतन्त्र मन्त्र शास्त्र है, परन्तु कश्मीर परम्परा का जैनों से पर्याप्त साम्य रहा।

प्रश्न ९७ मातृका का क्या अर्थ है?

उत्तर : अ से ह तक के वर्ण सामान्यतया मातृका कहलाते हैं। वर्ण, शक्ति के कारण मन्त्रों की मातृका शक्ति कहलाते हैं। वर्ण रूप से भाव में परिणत हो कर ही मातृका शक्ति बनता है। यह बात पवित्र चेतना के व्यक्ति में घटित होती है।

उत्तम जल की सुरक्षा के लिए उत्तम पात्र भी उतना ही आवश्यक है। अतः वर्ण और भाव संयुक्त होकर ही शक्ति बनते हैं। समस्त ज्ञान विज्ञान का मूल ध्वनि, नादमय मातृका शक्ति है। मातृका (वर्णमातृका) की उपादेयता में हमारे स्वस्थ मुख विवर (ध्वनि यन्त्र) का बहुत महत्व है।

इन वर्णात्मक मातृकाओं में लौकिक एवं पारलौकिक अनन्तफल देने की अपार शक्ति है। जब ये मातृकाएँ मन्त्रों में परिणत हो जाती हैं तो इनमें अपार ऊर्जा भर जाती है। इसका लाभ अज्ञानी और कुपात्र को नहीं होता। उदाहरणार्थ एक अज्ञानी और बुद्धि हीन जंगली व्यक्ति को एक करोड़ रुपये की कीमत वाला हीरा मिल भी जाए तो वह तो उसे एक काँच का टुकड़ा ही समझेगा। हमारे लाखों जैन भाई महामन्त्र को जपते हैं - ऊपर ऊपर से जानने का नाटक भी करते हैं, परन्तु उन्हें उसका पूर्णज्ञान, उसकी शक्ति और महिमा की जानकारी नहीं होती। श्रद्धा भी नहीं होती। अतः वे सब कभी लाभान्वित नहीं हो पाते।

प्रश्न ९८ मन्त्र विज्ञान को समझने के कितने स्तर हैं?

उत्तर - चार स्तर हैं - भाषा, अर्थ, ध्वनि (अभिप्रेतार्थ) एवं सम्मिश्रण। फलितार्थ -

स्पष्टीकरण - सर्वप्रथम किसी वाक्य, शब्द या श्लोक का भाषात्मक रुख पाठक के सामने आता है। उसके बाद वह उसके स्थूल अर्थ को ग्रहण करता है। तीसरी स्थिति में यदि ध्वनि या व्यंग्यार्थ है तो वह मस्तिष्क में उतराता है। प्रत्येक पाठक धवनिग्राही होता ही नहीं है। चौथी अवस्था है निष्कर्ष या फलितार्थ की। इस प्रकार किसी भाषा के गद्य या पद्य को समझने का क्रम है जो अनजाने में ही घटित होता रहता है। यदि किसी सूत्र या मन्त्र को समझना है तो यह और भी कठिन होगा। परन्तु अध्येता या भक्त यदि निर्मल मानसिकता का है तो उसे कठिनता का बोध नहीं होगा।

वर्ण मातृका शक्ति को उच्चारण और अर्थ ध्वनियों के आधार पर चार प्रकार से वर्गीकृत किया गया है -

१. बैखरीस्थूल मातृका (कर्ण सम्पृक्त भाषा)

२. मध्यमा सूक्ष्म (मानसिक स्तर)

३.	पश्यन्ती	सूक्ष्मतर (व्यंजनात्मक स्तर)
४.	परा भाषा	सूक्ष्मतम मातृका (नादात्मक अवस्था)

परावाणी के स्तर पर ही आत्म साक्षात्कार होता है। इसे ही वेदान्त में नाद ब्रह्म की संज्ञा दी गयी है।

उक्त विवेचन का मथितार्थ यह है कि मातृकाशक्ति की पूर्णता स्थूल रूपात्मकता से भावात्मक सात्त्विक अवस्था प्राप्त करने में है।

प्रश्न ९९. इस मन्त्र की वैज्ञानिकता को अहं और अर्हम् शब्दों के विश्लेषण द्वारा समझाइए।

णमोकार महामन्त्र की वैज्ञानिकता को समझने के लिए उदाहरण स्वरूप हम अरिहन्त परमेष्ठी वाची अर्हम् को ले लें। अहं मूल शब्द था। अहं में अ प्रपंच जगत् का प्रारंभ करनेवाला है और ह उसकी लीनता का द्योतक है। अहं में अन्त में है बिन्दु (०) यह लय का प्रतीक है। बिन्दु से ही सृजन और बिन्दु में ही लय है। अब प्रश्न यह उठता है कि सृजन और मरण भी यह यान्त्रिक क्रिया है इसमें जीवन शक्ति का अभाव है अर्थात् जीवन को चैतन्य देनेवाली शक्ति का अभाव है। अतः हमारे मन्त्र दृष्टा ऋषियों ने अहं को अर्हं का रूप दिया - उसमें अग्नि-शक्ति धारक 'र' को जोड़ा। इससे जीवात्मा को ऊर्ध्वगामी होकर निजी परमात्मत्त्व तक पहुँचने की शक्ति प्राप्त हुई। अतः अर्हं का विज्ञान बड़ें सुखद आश्चर्य प्रदान करनेवाला सिद्ध हुआ। 'अ' प्रपंच जीव का बोधक - बन्धन बद्ध जीव का बोधक और 'ह' शक्तिमय पूर्ण जीव का बोधक है। लेकिन 'र्' क्रियमान क्रिया से युक्त उद्दीप्त और उच्चस्थान में स्थित परमात्म तत्त्व का बोधक है। अब स्पष्ट है कि जीव में अहं मूलक सांसारिकता के कारण उसकी ऊर्ध्वगामिता और अग्निमयता अवरुद्ध रहती है। अहं में 'र्' जुड़ते ही और उसके अर्हं बनते ही सब कुछ चैतन्यमय हो जाता है।

प्रश्न१०० सिद्ध परमेष्ठी का प्रतीक रंग लाल है। इसके आधार पर उनकी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध कीजिए।

उत्तर : जिन सिद्धों ने अपने शुक्ल ध्यान की अग्नि द्वारा समस्त कर्मरूपी ईंधन को समाप्त कर दिया है - भस्म कर दिया है और जो अशरीरी हो गए हैं - उन सिद्धों को नमस्कार हो। जिनका वर्ण तप्त स्वर्ण के समान लाल हो गया है और जो सिद्ध शिला के अधिकारी है उन सिद्धों को नमस्कार हो। सिद्ध परमेष्ठी के नमन के समय हमारे मानस पटल पर वह चित्र उभरना चाहिए जब कि सिद्ध परमेष्ठी अष्ट कर्मों का दहन कर निर्मल रक्तवर्ण कुन्दन की भांति दैदीप्यमान हो उठते हैं। हमारे शरीर में रक्त की कमी हो अथवा रक्त में दोष आ गया हो तो णमोसिद्धांण का पंचाक्षरी जाप करना चाहिए। बालसूर्य जैसा लाल वर्ण। लाल वर्ण हमारी आन्तरिक दृष्टि को जागृत कर हममें अक्षय ऊर्जा भरता है।

सिद्दों के सम्बन्ध में एक तथ्य और है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सामान्यतया प्रमुख सात रंग माने जाते हैं। उनमें भी लाल, नील और पीला - ये तीन रंग मौलिक माने जाते हैं। शेष रंग इनके आनुपातिक मिश्रण से बनते हैं। यों तो मिश्रण से फिर सहस्रों रंग बनते हैं। असली तीन रंगों में भी लाल रंग ही मूल है - प्रमुख है। वही ऊष्मा और जीवन का रंग है। इस स्तर पर की सिद्धों भी सर्वोपरि महत्ता सिद्ध होती है।

प्रश्न १०१ मूलाधार चक्र अथवा कुंडलिनी शक्ति क्या है, शरीर में कहाँ स्थित है और इसका महामन्त्र की साधना से क्या सम्बन्ध है?

उत्तर : मानव शरीर में स्थूल शरीर के नीचे सूक्ष्म शरीर भी है। यह सूक्ष्म शरीर स्वप्न शरीर आदि के रूप में अद्भुत क्रियाएँ करता रहता है। इन शरीरों की ऊपरी - सतह पर ईथर (आकाश वायु शरीर)

है । ईथर के भंडार शरीर चक्र कहलाते हैं । मानव - मानवी के मेरुदण्ड के नीचे - गुदा स्थान में एक विकास शील शक्ति है । यही कुंडलिनी या मूलाधार चक्र है । साधना अथवा ध्यान की गहरी अवस्था में कुंडलिनी (मन की सुपुप्त शक्ति) जागृत होती है । यह लोकोत्तर शक्ति है । जागृत कुंडलिनी वाला व्यक्ति प्रखर मेधावी, कवि, ऋषि अथवा वैज्ञानिक होगा । कुंडलिनी जागरण किसी गहरी साधना या ध्यानावस्था का फल है । दिव्य ऊर्जा इस कुंडलिनी शक्ति के जागरण से ही प्रस्फुटित होती है । सामान्य प्राण महाप्राण में कुंडलिनी जागरण से परिणत होता है । आत्मा परमात्मा बनता है । कुंडलिनी जागरण के प्रभाव के सम्बन्ध में अनेक साधकों और सन्तों ने समय समय पर अपने अनुभव प्रकट किये हैं ।

श्री रामकृष्ण परमहंस कुंडलिनी उत्थान का वर्णन करते हुए लिखते हैं - "कुछ झुनझुनी सी पाँव से उठकर सिर तक जाती है । सिर में पहुँचने के पूर्व तक तो होश रहता है, पर उसके सर में पहुँचने पर मूर्च्छा आ जाती है । आँख, कान अपना काम नहीं करते । बोलना भी संभव नहीं होता । एक विचित्र निःशब्दता एवं समत्व की स्थिति उत्पन्न होती है । कुंडलिनी जब तक गले में नहीं पहुँचती, तब तक बोलना संभव है । जो झन झन करती हुई शक्ति ऊपर चढ़ती है वह एक ही प्रकार की नहीं है, उसकी गति भी एक ही प्रकार की नहीं है । शास्त्रों में उसके पाँच प्रकार हैं -

१. चींटी के समान ऊपर चढ़ना ।

२. मेंढक के समान दो ती छलांग जल्दी जल्दी भरकर फिर बैठ जाना ।

३. सर्प के समान सरसराहट और वक्रगति से चलना ।

४. पक्षी के समान ऊपर की ओर चलना।

५. बंदर के समान छलांग भर कर सिर में पहुँचना।

कुंडलिनी- जागरण या चैतन्य स्फुरण ही योग का लक्ष्य होता है।

प्रश्न १०२ अर्हं के ध्यानमूलक उच्चारण से क्या होता है?

उत्तर : अर्हं के पवित्र - शुद्ध ध्यानमूलक उच्चारण का प्रयोजन सुषुम्ना (वक्षस्य - वक्ष मध्यस्थ नाड़ी) को स्पन्दित करना है। इसमें अ चन्द्रशक्ति का बीज है। 'ह' सूर्य शक्ति का और 'र' अग्नि - शक्ति का बीज है। ये वर्ण क्रमशः इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना को प्रभावित करते हैं। इस प्रभाव से कुंडलिनी जागृत होती है और वह ऊर्ध्व गमन के लिए तैयार होती है।

प्रश्न १०३. महामन्त्र णमोकार का जिनके जीवन पर चमत्कारी प्रभाव पड़ा, ऐसे किन्हीं दो प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम और सम्बद्ध घटनाएँ बताइए।

उत्तर : स्वर्गीय गणेश प्रसाद जी वर्णी जब दूसरी बार श्री सम्मेद शिखर जी की यात्रा पर गये, तब परिक्रमा करते समय उन्हें बड़ी जोर की प्यास लगी। उनका चलना मुश्किल हो गया। वे पर्याप्त वयोवृद्ध तो थे ही। वे महामन्त्र का स्मरण करते हुए भगवान को उलाहना देने लगे कि प्रभो, शास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि सम्मेद शिखर जी की वन्दना करनेवाले को तिर्यन्च-नरक गति नहीं मिलती। प्यास के कारण यदि मैं आर्तभाव से मरूँगा तो तिर्यंच गति में जाऊँगा। क्या शास्त्र में लिखा मिथ्या हो जाएगा। थोड़ी देर बाद एक यात्री उधर से निकला और उसने बताया कि पास में ही एक स्वच्छ तालाब है। वर्णीजी वहाँ गए। पास में छन्ना था ही। पानी छान कर पिया। प्यास शान्त हो गयी। याद आया कि पहले भी यहाँ परिक्रमा की थी, तब तो यह तालाब था नहीं। गौर से देखने पर न तो वहाँ आस-पास, आगे-पीछे वह यात्री था, न तालाब।

लेकिन प्यास अब बुझ गयी थी और परिक्रमा में उत्साह आने लगा था।

(सिंघई गरीब दास जैन (६४ वर्ष) कटनी म. प्र.)

घटना नं. २ - यह एक मुसलमान (णमोकार महामन्त्र - भक्त) के जीवन में घटित चमत्कार है। -

'जैन दर्शन' पत्रिका के वर्ष ३, अंक ५-६ जखौरा (ग्राम) जिला झाँसी, उत्तर प्रदेश निवासी अब्दुल रज्जाक (मुसलमान) ने महामन्त्र की महिमा का स्वानुभव प्रकाशित कराया है। इसका उल्लेखन डा. नेमीचन्द जी ज्योतिषाचार्य ने अपनी पुस्तक 'मंगल मन्त्र णमोकार - एक अनुचिन्तन' में भी किया है।-

वह स्वानुभव अक्षरशः इस प्रकार है -

''मैं ज्यादातर देखता या सुनता हूँ कि हमारे जैन भाई धर्म की ओर ध्यान नहीं देते। जो थोड़ा बहुत कहने-सुनने को देते भी हैं तो वे सामायिक और णमोकार मन्त्र के प्रकाश से अनभिज्ञ हैं। यानी अभी तक वे इसके महत्व को समझते ही नहीं हैं। रात-दिन स्वाध्याय करते हुए भी अन्धकार की ओर बढ़ते जा रहे हैं। अगर उनको कहा जाए कि भाई, सामायिक और णमोकार मन्त्र आत्मा में शान्ति पैदा करनेवाले और आये हुए दुःखों को टालनेवाले हैं। तो वे इस तरह से जवाब देते हैं कि यह मन्त्र तो हमारे छोटे छोटे बच्चे भी जानते हैं। इसको आप हमें क्या बता रहे हैं? लेकिन मुझे अफसोस के साथ लिखना पड़ रहा है कि उन्होंने सिर्फ दिखाने की गरज़ से बस मन्त्र को रट लिया है। उस पर उनका दृढ़ विश्वास नहीं है और न ही वे उसके महत्व को समझे हैं।

मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस मन्त्र पर श्रद्धा रखनेवाला हर मुसीबत से बच सकता है क्यों कि मेरे ऊपर से ये बातें बीत चुकी हैं।-

मेरा नियम है कि जब मैं रात को सोता हूँ तो णमोकार मन्त्र को पढ़ता हुआ सो जाता हूँ। एक मरतबा, जाड़े की रात का जिक्र है कि मेरे साथ चारपाई पर एक बड़ा सांप लेटा रहा, पर मुझे उसकी खबर नहीं। स्वप्न में ज़रूर ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कि कह रहा हो कि उठ सांप है। मैं दो चार मरतबे उठा भी और उठकर लालटेन जलाकर नीचे ऊपर देखकर फिर लेट गया, लेकिन मन्त्र के प्रभाव से, जिस ओर साँप लेटा था, उधर से एक बार भी नहीं उठा। जब सुबह हुआ, मैं उठा और चाहा कि बिस्तर लपेट लूँ, तो क्या देखता हूँ कि बड़ा मोटा साँप लेटा हुआ है। मैंने जो पल्ली खींची तो वह झट उठ बैठा और पल्ली के सहारे नीचे उतर कर अपने रास्ते चला गया। यह सब महामन्त्र णमोकार के श्रद्धापूर्ण पाठ का ही प्रभाव था जिससे एक विषैला साँप भी अनुशासित हुआ।

दूसरे अभी दो तीन माह का जिकर है कि जब मेरी बिरादरी वालों को मालूम हुआ कि मैं जैनमत पालने लगा हूँ, तो उन्होंने एक सभा की, उसमें मुझे बुलाया गया। मैं जखौरा से झाँसी जाकर सभा में शामिल हुआ। हर एक ने अपनी राय के अनुसार बहुत कुछ कहा-सुना और बहुत से सवाल पैदा किये, जिनका कि मैं जवाब भी देता गया। बहुत से लोगों ने यह भी कहा कि ऐसे आदमी को मार डालना ही ठीक है। अपने धर्म से दूसरे धर्म में यह न जाने पाये। अन्त में सब चले गये। मैं भी अपने घर आ गया। जब शाम का समय हुआ - यानी सूर्य अस्त होने लगा तो मैंने सामायिक करना आरम्भ किया और जब सामायिक से निश्चिन्त होकर आँखें खोली तो देखता हूँ कि एक बड़ा साँप मेरे इर्द गिर्द चक्कर लगा रहा है और दरवाजे पर एक बर्तन रखा हुआ मिला, जिससे मालूम हुआ कि कोई इसमें बन्द करके इस सांप को छोड़ गया है। छोड़ने वाला मुझे मारना चाहता था।

लेकिन उस साँप ने मुझे नुकसान नहीं पहुँचाया। मैं वहाँ से डर कर आया और लोगों से पूछा कि यह काम किसने किया है? परन्तु पता न लगा। दूसरे दिन जब सामायिक के समय पड़ौसी के बच्चे को सांप ने डस लिया तब वह रोया और कहने लगा कि हाय मैंने बुरा किया कि दूसरे के वास्ते चार आने दे कर जो सांप लाया था, उसने मेरे बच्चे को काट लिया। बच्चा मर गया। पन्द्रह दिन बाद वह आदमी भी मर गया। देखिए सामायिक और णमोकार मन्त्र के प्रभाव से आया हुआ काल भी प्रेम का बर्ताव करता हुआ चला गया।

प्रश्न १०४. इस पद्य का अर्थ समझाइए -

"अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म, वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्ध चक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणमाम्यहम्॥"

उत्तर : अर्हम् अक्षर (अविनश्वर) ब्रह्म है, परमेष्ठी का प्रतिपादक है, सिद्ध चक्र का सद्बीज है, मैं सम्पूर्ण रूप से (मन-वचन-काय से) इस ब्रह्म को प्रणाम करता हूँ।

इस पद्य में अर्हम् शब्द की सार्वभौमता, आध्यात्मिक महिमा और लौकिक सिद्धि-कारकता को स्पष्ट किया गया है।

प्रश्न १०५. इस पद्य का अर्थ कीजिए और इसके आधार पर जिन भक्ति (स्तुति) का महत्व बताइए।

"विघ्नौधाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी भूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥"

उत्तर : जिनेश्वर के श्रद्धापूर्वक किये गये स्तवन से विघ्न समुदाय का नाश होता है। चुड़ैल, भूत और सर्पों का भी विघ्न दूर होता है। विष निर्विष हो जाता है।

प्रश्न १०६. महामन्त्र णमोकार के निरादर का क्या फल होता है? किसी पौराणिक उदाहरण के माध्यम से उत्तर दीजिए।

उत्तर : महामन्त्र के निरादर का फल -

आठवें चक्रवर्ती सुभीम का रसोइया बड़ा स्वामी भक्त था। उसने एक दिन सुसीम को गरम गरम खीर परोस दी। सुमीम ने गर्म खीर खा ली। उनकी जीभ जलने लगी। बस क्रोध में भरकर खीर का पूरा बर्तन रसोइए के ऊपर उंडेल दिया। इससे वह तुरंत मरकर व्यन्तर देव हुआ। लवण समुद्र में रहने लगा। उसने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव की जानकारी प्राप्त की। उसके मन में चक्रवर्ती से बदला लेने की बात ठन गयी। बस वह तपस्वी का वेष बनाकर और कुछ स्वादिष्ट फल लेकर चक्रवर्ती सुमीम के पास पहुँचा। उसने वे फल सुसीम चक्रवर्ती को दिये। फल बहुत स्वादिष्ट थे। चक्रवर्ती ने और खाने की इच्छा प्रकट की। तब तपस्वी ने कहा, "मैं लवण समुद्र के एक टापू में रहता हूँ, वहीं ये फल प्राप्त होते हैं। आप मेरे साथ चलिए और यथेच्छ रूप से खाइए। चक्रवर्ती लोभ का संवरण न कर सके और उस तपस्वी (व्यंतर) के साथ चल दिये।

जब व्यन्तर सुमीम को लेकर समुद्र के बीच में पहुँच गया, तो तुरन्त वेष बदल कर क्रोध पूर्वक बोला, "दुष्ट चक्रवर्ती! जानता है मैं कौन हूँ? मैं ही तेरा पुराना पाचक हूँ, रसोइया हूँ। मैं तुझसे बदला लूँगा।" चक्रवर्ती अत्यन्त असहाय होकर णमोकार मन्त्र का पाठ करने लगे।

इस महामन्त्र की महाशक्ति के सामने व्यंतर की विद्या बेकार हो गई। तब व्यन्तर ने एक उपाय निकाला। उसने चक्रवर्ती से कहा, यदि अपने प्राणों की रक्षा चाहते हो तो णमोकार मन्त्र को पानी में लिखकर उसे अपने पैर के अंगूठे से मिटा दो। चक्रवर्ती ने भयभीत होकर तुरन्त णमोकार मन्त्र को उंगली से पानी में

लिखकर पैर से मिटा दिया। बस व्यन्तर की बात बन बैठी। मन्त्र का प्रभाव तुरंत समाप्त हो गया। तुरन्त व्यन्तर ने चक्रवर्ती को मारकर समुद्र में फेंक दिया। इस तरह उसने बदला ले लिया। अनादर करने पर महामन्त्र का प्रभाव नष्ट हो जाता है। बल्कि ऐसे व्यक्ति का अपना शरीर बल और मनोबल भी क्षीण हो जाता है। णमोकार मन्त्र निरादर के कारण चक्रवर्ती को सप्तम नरक में जाना पड़ा।

मन की पवित्रता, उद्धेश्य की पवित्रता और आस्था इस मन्त्र के लिए परमावश्यक है। भक्त अज्ञानी हो, रुग्ण हो, उचित आसन से न बैठा, शारीरिक स्तर पर अपवित्र भी हो तो भी क्षम्य है। महामन्त्र ऐसे व्यक्ति की भी रक्षा करता है, और उसे शक्ति प्रदान करता है। परन्तु जानबूझकर उपेक्षा, और निरादर करनेवालों को मन्त्र-भक्त रक्षक देवी-देवता कदापि क्षमा नहीं करते। मन्त्र सिद्धि और साधना में परमावश्यक है भीतरी ईमानदारी सच्ची श्रद्धा और विशुद्ध एकाग्र ध्यान।

"इत्थं ज्ञात्वा महा भव्याः, कर्तव्यः परया मुदा।
सारः पंच नमस्कारः, विश्वासः शर्मदः: सताम् ॥"

प्रश्न १०७. महामन्त्र णमोकार की साधना का मूल भक्ति है और भक्ति ही सम्यग्दर्शन की जननी है - समझाइए।

उत्तर : भक्ति मूल रूप में और अन्तिम रूप में मुक्ति का कारण है। आराध्य (परमात्मा) के रूप और गुणों की वंदन, नमन, स्मरण, भजन, कीर्तन एवं अर्चना द्वारा स्वयं में अवतारणा करना भक्ति है। सच्चे देव में अडिग, पूर्ण श्रद्धा सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन भक्ति से ही सम्पन्न होता है। स्पष्ट है कि सम्यग्दर्शन मोक्ष की पहली सीढ़ी है। इस सीढ़ी तक भक्ति द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। इस पारमार्थिक भक्ति से दर्शन मोहनीय का नाश होता है। यह भी स्पष्ट है कि सम्यग्दर्शन के अभाव में सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र

आ ही नहीं सकते । अब यह बात साफ है कि अडिग प्रभुविश्वास सम्यग्दर्शन है और इसकी पुष्टि भक्ति द्वारा होती है, तो प्रकारान्तर से इसी तथ्य को इस प्रकार भी समझ लें कि भक्ति के माध्यम से ही सम्यग्दर्शन का सुषुप्त बीज अंकुरित होता है । अतः भक्ति सम्यग्दर्शन की जननी है ।

प्रश्न १०८. ध्वनि का दूसरा नाम नाद है - अथवा ध्वनि की विकसित अवस्था नाद है । नाद आहतनाद और अनाहत नाद के रूप में दो प्रकार का होता है । समझाइए ।

उत्तर : हमारा जीवन हमारे भीतर से ही उत्पन्न की गयी ऊर्जा से चलता है । श्वासोच्छ्वास के माध्यम से उसे अधिक गतिशील बनाते हैं । यही ऊर्जा ध्वनि और शब्दों में पहले ऊर्जा (Energy) सुषुम्ना से होती हुई मूलाधार को स्पर्श करती है । फिर वहाँ से एक प्रकम्पन का रूप लेती हुई आगे बढ़ती है । स्वाधिष्ठान चक्र से उसको और गति प्राप्त होती है । इसके पश्चात् मणिपुर चक्र से अग्नितत्व ग्रहण करती है और हृदय चक्र से टकराती है । यहाँ उसे वायुतत्व प्राप्त होता है । वायु तत्व के प्राप्त होते ही यह ध्वनि नाद बनती है । यह नाद कंठस्थान में आकर (विशुद्धि चक्र में आकर) आकाश तत्व को प्राप्त करता है । आकाश तत्व से मिलने के बाद कंठ और ओष्ठ के बीच के अवयवों के सहयोग से नाद विभिन्न वर्णों और शब्दों के रूप में बाहर प्रकट होता है । यह नाद हमारे मुख विवर के अनेक हिस्सों से टकरा कर तैयार होता है अतः आहत नाद कहलाता है । यही नाद जब विभिन्न स्थानों से टकराए बिना सीधा ही ऊपर सहस्रार चक्र तक चला जाता है, तब यह नाद अनाहतनाद कहलाता है । यही अनाहत नाद शब्द ब्रह्म है, मन्त्र है और जागृत मूलाधार की सर्वोच्च अवस्था है ।

महामंत्र णमोकार : वैज्ञानिक अन्वेषण आज तक लिखे गये णमोकार मंत्र संबंधी सभी ग्रंथों में श्रेष्ठ है। इसमें जितना अध्ययन मंत्र का दिया गया है, उससे अधिक भाषा-विज्ञान का, दोनों के तालमेल ने ग्रंथ को अभूतपूर्व बना दिया है। यह अच्छा ही नहीं, असाधारण है।

आचार्य अशोक सहजानन्द, दिल्ली

महामंत्र णमोकार : वैज्ञानिक अन्वेषण में महामंत्र णमोकार का, मंत्र शास्त्र का इतिहास, ध्वनि/रंग विज्ञान, चिकित्सा/योग/ध्यान आदि दृष्टियों से व्यापक, गहन, संतुलित अध्ययन किया गया है।

डॉ. नेमिचंद जैन, इंदौर

महामंत्र णमोकार : वैज्ञानिक अन्वेषण कृति एक अद्‌भुत एवं अनूठी कृति है। यह कृति न केवल जैन धर्मावलंबियों वरन् मंत्रशास्त्र में रूचि रखनेवाले अन्य धर्मावलंबियों के लिए भी विशेष उपयोगी है।

पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल (कादम्बिनी), गाजियाबाद

महामंत्र णमोकार : वैज्ञानिक अन्वेषण नामक कृति णमोकार मंत्र के बारे में तार्किक, प्रमाणिक और सुसम्बद्ध चेतनापरक सामग्री का अनूठा उदाहरण है।

डॉ. संजीव भानावत, जयपुर

लेखक परिचय

नाम : डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन। **जन्म :** 15.12.1925, झांसी (उ.प्र.)। **शिक्षा :** सिद्धांत शास्त्री, काव्यतीर्थ, एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), डी. लिट्. । **शैक्षिक सेवा :** आगरा, पंजाब, तिरूपति विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध, 28 वर्ष अध्यापन। 1970 से 1985 तक द.भा. हिन्दी प्रचार सभा के शोध संस्थान में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष। **शोध निर्देशन :** आपके निर्देशन में 35 शोधकों ने पी.एच.डी. एवं 50 ने एम.फिल्. उपाधियाँ प्राप्त कीं। **कृतित्व :** आपकी 16 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। तथा शोध-समीक्षापरक 250 निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। आपने एक निष्णात अध्यापक, कुशल वक्ता, योग्य प्रशासक एवं सुकवि के रूप में अपार ख्याति अर्जित की है।

मूल्य : 100 रुपये

मेघ प्रकाशन

239, दरीबाकलाँ, दिल्ली-110006

दूरभाष : 3278761, 2170794